प्रगतिशील हिन्दी कविता में अभिव्यक्त श्रम-सौन्दर्य

शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन एवं मुक्तिबोध के विशेष सन्दर्भ में

(Asthetic of Labour as Depicted in Progressive Hindi Poetry with Special Context-Shamsher, Kedarnath Agarwal, Nagarjun, Trilochan and Muktibodh)

(पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

शोध-निर्देशक

डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार संतोष

शोधार्थी

यशवन्त प्रजापति

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान,

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

2022

Dated: 12 / 05/2022

Declaration

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled **"Pragatisheel Hindi Kavita Mein Abhivyakt Shram-Saundary (Shamsher, Kedarnath Agarwal, Nagarjun, Trilochan Avam Muktibodh Ke Vishesh Sandarbh Mein)" [Asthetic of Labour as Depicted in Progressive Hindi Poetry With Special Context-Shamsher, Kedarnath Agarwal, Nagarjun, Trilochan and Muktibod]** submitted by me is the original research work. It has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarised in my Thesis, I will be solely responsible for the act.

Yashvant Prajapati
Name of Students

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 12 /05 /2022

Certificate

This is to certify that the Mr. Yashvant Prajapati, a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Languages, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled "**Pragatisheel Hindi Kavita Mein Abhivyakt Shram-Saundary (Shamsher, Kedarnath Agarwal, Nagarjun, Trilochan Avam Muktibodh Ke Vishesh Sandarbh Mein)**" **[Asthetic of Labour as Depicted in Progressive Hindi Poetry With Special Context-Shamsher, Kedarnath Agarwal, Nagarjun, Trilochan and Muktibod]**

This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

Dr. Gyanendra Kumar Santosh
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. Omprakash Singh
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

अध्यक्ष / Chairperson
भारतीय भाषा केन्द्र / CIL
भा. भा. एवं स. अ. सं. / SLL & CS
ज. ने. वि. / J.N.U
नई दिल्ली / New Delhi-110067

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217;
Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

समर्पण

मेरे प्राथमिक विद्यालय के

आदरणीय मास्टर साहब श्री कन्हैयालाल यादव जी को

जिनकी इच्छा और कामना थी कि मैं पीएच-डी. करूं

तथा

दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के

आदरणीय और श्रद्धेय गुरु

प्रो. कमलेश कुमार गुप्त जी

को

जिनके बिना इस मुकाम तक पहुँचना

नामुमकिन था।

भूमिका

"कसे-कसाए भाव अनूठे

ऐसे आएं जैसे किला आगरे में जो

नग है, दिखलाता है पूरे ताजमहल को।"

त्रिलोचन द्वारा रचित इस काव्यांश में सॉनेट छंद की महत्त्वपूर्ण विशेषता को अभिव्यक्त किया गया है। ये काव्य-पंक्तियाँ भूमिका के सन्दर्भ में भी बहुत सटीक बैठती हैं। मसलन, सॉनेट छंद में एक बड़े और विस्तृत भाव व्यापार को मात्र चौदह पंक्तियों में अभिव्यक्त किया जाता है। अपने छोटे आकार के बावजूद इनमें विस्तृत अर्थों और भावों का दिग्दर्शन कराने की क्षमता होती है। जैसे आगरे के किले में जटित वह छोटा सा नग़ पूरे ताज़महल का दीदार करा देता है। किसी भी शोध ग्रंथ की भूमिका इसी 'नग़' के समान होती है जो अपने आकार और प्रकार में छोटी होने के बावजूद पूरे शोध-ग्रंथ पर प्रकाश डालने की क्षमता से युक्त होती है।

कविता के प्रति मेरी रूचि बचपन से ही रही है, लेकिन स्नातक की पढ़ाई पूरी होने तक मैंने सोचा भी नहीं था कि कविता की दुनिया मेरी इतनी प्रिय बन जाएगी कि मैं उसमें शोध कार्य भी करूँगा। मेरे न सोचने के पीछे शायद मेरी पृष्ठभूमि जिम्मेदार रही है। मेरी यह रूचि परास्नातक में बढ़ी। परास्नातक में छायावाद को विशेष रूप से पढ़ा। यहीं से कवियों और उनकी कविताओं को पढ़ने में मेरी रूचि बढ़ी। इसी दौरान छायावादोत्तर काल के कुछ प्रमुख कवियों और उनकी प्रमुख काव्य-कृतियों से थोड़ा-बहुत परिचय हुआ। यूजीसी द्वारा आयोजित नेट / जेआरएफ और जे.एन.यू. में एमफिल. प्रवेश परीक्षा की तयारी के दौरान मैंने थोड़ा गहराई से अध्ययन किया। जिससे मेरी कविता के प्रति टूटी-फूटी समझ बनी। इस दौर में छायावादोत्तर काल की ऐतिहासिक परिस्थितियों, प्रवृत्तियों और रचनाओं को ठीक

से जानने तथा समझने की जिज्ञासा बराबर मन में बनी रही। जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में एम.फिल. में नामांकन के छह महीने उपरांत जब मैंने अपने शोध निर्देशक प्रो. गोबिन्द प्रसाद का चुनाव किया, तब से उनका सानिध्य मिलना शुरू हुआ। आप हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, अरबी-फारसी भाषाओं के विद्वान हैं। आपके सानिध्य के कारण आधुनिक कविता के प्रति रूचि बढ़ने लगी परिणामस्वरूप थोड़ी समझ बन पायी। दरअसल, यह उनके उदार और छात्र-हितैषी दृष्टि का परिणाम है। वे इस बात में विश्वास करते हैं कि सीखने-सिखाने, पढ़ने और पढ़ाने के लिए केवल कक्षाएं ही अनिवार्य स्थान नहीं है। छात्रों को अध्यापकों से कक्षाओं के बाहर भी सीखने के लिए पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। आपसे से कोई भी जिज्ञासु छात्र सहज ही ज्ञान प्राप्त कर लेता है। आपसे छात्र अपना ज्ञानवर्धन ऑफिस, ढाबा, आवास, रास्ते चलते-फिरते कभी भी और कहीं भी कर लेते हैं। आप कविता और ग़ज़ल की जटिल और गूढ़ गुत्थी को सुलझाने और उसके जर्रे-जर्रे को विश्लेषित कर अपने छात्रों का सदैव ज्ञानवर्धन करते रहे हैं। कविता पढ़ाने और समझाने के क्रम में भी आप विभिन्न भाव स्थलों पर ग़ज़लों से उदाहरण देकर पुष्ट करते हैं। इसी प्रक्रिया से गुज़रकर मेरे भी भीतर आधुनिक काल के कवियों और उनकी रचनाओं के विषय में थोड़ी और समझ बढ़ी तथा कविता विधा में ही शोध करने की हिम्मत आई। इस काल के कवियों एवं उनकी रचनाओं के विषय में थोड़ा-बहुत अध्ययन अपने एम.फिल शोध-कार्य के दौरान किया। दरअसल मैंने अपना एमफिल. में लघु शोध प्रबंध “त्रिलोचन की छोटी कविताओं का आलोचनात्मक अध्ययन ‘अरघान’ के विशेष संदर्भ में” विषय पर किया था। आम जन जीवन से जुड़े इस साहित्य अध्ययन के उपरांत मन प्रगतिशील कवियों के कविताओं में लगने लगा था।

इस तरह समय के साथ-साथ नागार्जुन-केदार-त्रिलोचन त्रयी के कवियों की रचनायें पढ़ने में रुचिकर लगती रहीं। इन कविताओं के मर्म को थोड़ा ठीक से समझने के क्रम में मार्क्सवाद और समाजवाद के सिद्धांतों को पढ़ने का अवसर मिला। सामाजिक संरचना का वैज्ञानिक नजरिये से की गयी तार्किक और लौकिक व्याख्या आकर्षक लगी और अध्ययन के लिए प्रेरित किया। इन कवियों का उद्देश्य समाज को ही शोषण मुक्त, समानता आधारित और न्यायपरस्त बनाना है। उनके इस सपने से परिचित होना मेरे लिए नयी अनुभूति से गुजरना था। हर मनुष्य को उसके जाति, धर्म, लिंग, संप्रदाय, निवास से परे मानकर बराबरी का दर्जा देना, मनुष्य के चेतना का निर्माण दैवीय न मानकर सामाजिक मानना मेरे लिए बिल्कुल नया और जिज्ञासा को और बढ़ाने वाला था। समाज के जिस समुदाय से मेरा सम्बन्ध रहा है; उसमें गरीबी और जहालत इत्यादि को पुनर्जन्म से सम्बंधित कर या पिछले जन्म में बुरे कर्म किये जाने का फल से जोड़ कर देखा जाता रहा है। इस तरह इन कवियों के काव्य-संसार पर शोध करना रोचकता से युक्त लगा।

वस्तुतः इन कवियों की कविताओं में समाज का शोषण करने वाली शक्तियों के विरुद्ध एकजुटता और संघर्ष का भाव है। शोषण और अत्याचारों के विविध रूपों का उद्घाटन है। उनमें एकता स्थापित कर शोषण मुक्त और समानता आधारित समाज के बनाने का स्वप्न है। श्रम में आस्था और विश्वास को उद्घाटित किया गया है। इसमें किसानों-मजदूरों के कठिनाई भरे जीवन, गरीबी और जहालत में जीने की विवशता, ग्रामीण और कस्बाई परिवेश का रहन-सहन, जीवन शैली का चित्रण है। समाज के सबसे निचले पायदान के व्यक्ति को काव्य-नायक का स्थान देना उसके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, राग विराग को महत्व देना मुझे आकर्षित कर रहा था। इस तरह 'कला कला के लिए' सिद्धांत के विरुद्ध 'कला समाज के लिए' सिद्धांत से प्रेरित ये रचनाएँ

अपने अंतर्वस्तु और शिल्प के स्तर पर जनधर्मी हैं। इसी समय मेरे शोध निर्देशक प्रो. गोबिन्द प्रसाद ने प्रगतिशील कवियों पर शोध करने का सुझाव दिया। उनके बहुमूल्य सुझाव और अपनी रूचि के अनुरूप विषय जानकर और समझकर पीएचडी हेतु शोध-विषय चुनने का भी निश्चय किया। इस समझ को बढ़ाने और रूचि को जगाने में बीच-बीच में होने वाले कुछ सेमिनार, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्टों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सरकारों के थोड़े बहुत प्रयासों के बावजूद हर वर्ष होती किसान-आत्महत्याएँ, मजदूरों की बढ़ती दुर्दशायें, कमजोर होते श्रम कानून, दुनियाभर में श्रमिक जन की बदहाल होती स्थिति, बहुआयामी गरीबी इत्यादि की चर्चा ने मुझे श्रम-सौन्दर्य से सम्बंधित कविताओं पर शोध करने के लिए प्रेरित किया है।

दूसरे प्रगतिशील कविता का आन्दोलन जिस ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थियों में शुरू हुआ, वह अपने आप में काफी उथल-पुथल और नवीन मूल्यों, मान्यताओं के बनने-बिगड़ने का समय था। बंग-भंग आन्दोलन से लेकर, काकोरी कांड, साइमन कमीशन, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, गाँधी-इरविन समझौता, गोलमेज सम्मलेन, गाँधी जी का सक्रिय राजनीति ने अलग होने इत्यादि जैसी घटनायें बेहद महत्वपूर्ण हैं। कांग्रेस के भीतर से ही समाजवाद का पौधा उग रहा था। इसी समय समाजवादी पार्टी का गठन हुआ। इन सभी घटनाओं का साहित्य में पड़ने वाला प्रभाव रोचकता से युक्त जान पड़ा।

शोध कार्य हेतु चयनित इन पाँचों कवियों के चयन के पीछे भी कुछ कारण हैं। मेरी रूचि सभी प्रमुख प्रगतिशील कवियों के अध्ययन में थी, न कि किसी एक या दो कवियों में। पूरी प्रगतिशील कविता के अध्ययन-विश्लेषण से एक मुक्कमल समझ बनाना संभव था। इसी कारण मैंने अपने श्रद्धेय गुरु के सहयोग से 'प्रगतिशील हिंदी कविता में अभिव्यक्त श्रम-सौन्दर्य (शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन

एवं मुक्तिबोध के विशेष सन्दर्भ में)' जैसे महत्वपूर्ण विषय को चुना। बिना उनके सहयोग और मार्गदर्शन के न तो मैं इतना महत्त्वपूर्ण शोध विषय चुन सकता था और न ही शोध कार्य ही पूरी कर सकता था। सितम्बर 2020 में उनके सेवा निवृत्त हो जाने के बाद यह शोध कार्य आदरणीय डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार संतोष के कुशल निर्देशन में संपन्न हो सका है। आपसे भाषाई त्रुटियाँ और विषयवस्तु सम्बंधी महत्त्वपूर्ण निर्देशन पाना मेरा सौभाग्य है। इन्होंने न केवल भाषाई अशुद्धियों को ठीक करना सिखलाया बल्कि ख़ुद जितना संभव हो सका ठीक भी किया। आप लोगों के मार्गनिर्देशन से ही मैं अपने शोध-ग्रंथ को भाषाई स्तर पर बहुत कुछ ठीक कर सका हूँ। आप विद्वतजनों के निर्देशन के बाद भी यदि कुछ भाषाई अशुद्धियाँ और विषयवस्तु संबधी कुछ कमियाँ रह गयी हों तो यह मेरी कमी है।

चयनित कवियों के कविताओं में श्रम-सौन्दर्य के दृष्टिकोण से अब तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। इस शोध कार्य को कुल चार अध्यायों में बाँटकर किया गया है। पहला अध्याय 'प्रगतिशील कविता और श्रम-सौन्दर्य' है। जिसके अंतर्गत तीन उप-अध्याय हैं। पहले के अंतर्गत प्रगतिशीलता क्या है, इसका क्या स्वरूप है; को अवधारणात्मक रूप में समझाया गया है। इसके स्वरूप को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में दिखाया गया है। आज तक अबाध रूप से चली आ रही प्रगतिशील लेखन परंपरा को भी रेखांकित किया गया है। दूसरे उप-अध्याय में श्रम क्या है? सौन्दर्य क्या है? तथा श्रम-सौन्दर्य से क्या तात्पर्य है जैसे प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए श्रम और सौन्दर्य को अलग-अलग अवधारणात्मक रूप में विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही श्रम-सौन्दर्य और उसके स्वरूप को भी उद्घाटित किया गया है।

दरअसल, श्रम अपने आप में सृजनशील होता है। वह सौन्दर्य के विविध आयामों को उद्घाटित करने वाला होता है। इसका सम्बंध सर्वोच्च मूल्य जिजीविषा से जुड़ा हुआ है। अतः यह भी एक मूल्य है। श्रम करता हुआ मनुष्य अपने आप में विभिन्न

सौन्दर्यात्मक पहलुओं को छिपाए रहता है। श्रम करने की प्रक्रिया में वह खुद शारीरिक और मानसिक रूप से सुन्दर होता चलता है। श्रम से निर्मित प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य होता है। एक श्रमशील व्यक्ति एक ऐसे समाज का निर्माण करता है जिसमें ईमानदारी और नैतिकता होती है। श्रम का महत्त्व अधिक और भ्रष्टाचार कम होता है। प्रगतिशील कविता में श्रमशील जीवन के सौन्दर्यात्मक पहलुओं को उभारा गया है। समाज से शोषण और अत्याचार के उन्मूलन का सृजन किया गया है। अंतिम उप-अध्याय के अंतर्गत सौन्दर्य को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में (प्रगतिशील दृष्टिकोण से) विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस तरह सौन्दर्य और प्रगतिशीलता के आपसी संबंधों को समझने हेतु आधुनिक युग के साहित्यिक प्रसंगों, सन्दर्भों के उदाहरण के द्वारा अध्ययन किया गया है।

दूसरा अध्याय 'प्रगतिशील कवियों की काव्य-दृष्टि' है। चयनित कवियों की अंतर्वस्तु और शिल्प को लेकर क्या नजरिया रहा है, रचना प्रक्रिया में काव्य-तत्वों के प्रति क्या दृष्टिकोण रहा है; का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। दरअसल, आधुनिक युग बदलाओं का युग है। हम देखते हैं कि आदिकाल लगभग चार सौ वर्षों, भक्तिकाल लगभग ढाई सौ वर्षों और रीतिकाल लगभग दो सौ वर्षों में विस्तार है। लेकिन आधुनिक काल के डेढ़ सौ वर्षों में ही भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता, किसिम किसिम की कविता, बीट कविता जैसे कई काव्य-आन्दोलन मौजूद रहे हैं। यह बदलाव कविता के इतर अन्य विधाओं में भी मौजूद हैं। इस तरह कुल मिलाकर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्तर पर बदलाव से चेतना में, अनुभूतियों और संवेदनाओं में भी परिवर्तन घटित हुआ। इन बदलाओं से काव्य-सृजन हेतु काव्य-शास्त्रीय मान्यताएं टूटीं। अभिव्यक्ति की नई-नई विधाओं का जन्म हुआ। लम्बी कविता, यात्रा-वृतांत, डायरी, संस्मरण

इत्यादि विधाओं का सृजन इसी का परिणाम है। इस तरह प्रगतिशील कवियों की दृष्टि में काव्य के उद्देश्य को लेकर, अंतर्वस्तु और शिल्प को लेकर आये सैद्धांतिक परिवर्तनों को देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में मुक्तिबोध के रचना के तीन क्षणों का सिद्धांत, लेखक के सृजनशील चेतना के लिए आवश्यक तत्व, रचनाकार के संघर्ष आदि के साथ केदारनाथ अग्रवाल के जीवन-दर्शन, काव्य की रचना-प्रक्रिया और त्रिलोचन के काव्य-भाषा तथा काव्य-शिल्प इत्यादि सबंधी विचार महत्वपूर्ण हैं। इसी तरह शमशेर के सौन्दर्य सम्बन्धी, दीर्घजीवी रचना करने और रचना-शैली सम्बन्धी विचार भी अत्यंत उल्लेखनीय हैं।

तीसरे अध्याय में चयनित कवियों के श्रम-सम्बन्धी कविताओं में संवेदना के विविध आयामों का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय में कुछ प्रश्नों को ध्यान में रखा गया है। जैसे इन कविताओं में श्रम-सौन्दर्य का स्वरूप क्या है ? शारीरिक और मानसिक श्रम के चित्रण में किस तरह का दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है ? प्रत्येक कवियों के श्रम-सौन्दर्य का स्वरूप क्या है इत्यादि। इसे मुख्यतः दो उपशीर्षकों में बाँटा गया है। खेती किसानी से जुड़ी श्रम-सम्बन्धी कविताओं में संवेदना के आयाम और कारखानों या इतर क्षेत्रों में श्रम करने वाले श्रमिकों से जुड़ी हुई कविताओं में संवेदना के आयाम। दरअसल, आजीविका के लिए अलग-अलग असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाले श्रमिकों के जीवन-संघर्ष को, जीवन के विभिन्न प्रसंगों और अनुभवों को रचा गया है। साथ ही राजनीतिक चेतना से युक्त कविताएँ रची गयी हैं जिनका उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था के सिद्धांतों को और अधिक मानवीय सिद्धांतों से परिचालित करना है। समाजवादी व्यवस्था को ये कवि मानव मुक्ति की सच्ची व्यवस्था मानते हैं, इसीलिए उन्होंने मानवता की धुरी श्रमजीवी जनता को स्वीकार किया है। उसके जीवन-मूल्यों को श्रेष्ठ मूल्य के रूप में चित्रित

किया है। इन कविताओं में यह स्पष्ट झलकता है कि श्रम-सौन्दर्य किसानों-मजदूरों के जीवन की कष्टों, कठिनाइयों, संघर्षों, समस्याओं के हाय-तोबा में नहीं है बल्कि उसकी हीनता में छिपी महानता, विकट से विकट परिस्थितियों में भी मौजूद अदम्य जिजीविषा, कम से कम सुख सुविधाओं में भी संतोषपूर्वक जीने की इच्छा में हैं। उसके भीतर निहित व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने की शक्ति को उभारने और अभिव्यक्त करने में है। इसमें शोषण आधारित तंत्र के विरुद्ध जनशक्ति में आस्था और विश्वास प्रकट किया गया है। श्रमशील जन के महत्त्व को रेखांकित किया गया है।

चौथे अध्याय में भाषा-शिल्प सबंधी विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इसमें यह अध्ययन किया गया है कि इन कवियों ने श्रम-सौन्दर्य के उद्घाटन में किन-किन शिल्पगत उपकरणों का सहारा लिया है। बिम्ब, प्रतीक, व्यंग्यधर्मिता, नाटकीयता, संवादधर्मिता और फैंटेसी तथा मुहावरे, लोकोक्तियाँ और अलंकार जैसे चार उप-शीर्षकों में बाँट कर किया गया है। भाषा दरअसल अभिव्यक्ति के साथ-साथ सम्प्रेषण का भी सशक्त माध्यम है। इन कविताओं में सामजिक यथार्थ, युगीन बोध, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय घटनाएं, परिघटनाएं किस तरह से संवेदनात्मक और शिल्प के स्तर पर व्यक्त हुई हैं विश्लेषण किया गया है। दरअसल, ये कविताएँ जनवादी मूल्यों से परिचालित हैं। इनकी भाषा संप्रेषणीय और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए जिन काव्य-तत्वों, उपायों को अपनाया गया है उनका अध्ययन किया गया है। श्रम-सम्बन्धी कविताओं में मुक्तिबोध और शमशेर की भाषा किस तरह नागार्जुन-केदार-त्रिलोचन त्रयी से भिन्न और समान है, इसका विवेचन-विश्लेषण किया गया है। भाषा-शिल्प के स्तर पर चयनित सभी कवियों के कविताओं की कुछ अपनी निजी विशेषताओं को भी टटोलने का प्रयास किया गया है।

आभार

मेरे इस शोध प्रबंध के विषय चयन से लेकर पूर्ण होने में आदरणीय और श्रद्धेय गुरू प्रो. गोबिन्द प्रसाद की महती भूमिका है। जिन्होंने केवल विषय का ही ज्ञान नहीं दिया बल्कि मेरे भीतर जीवन और समाज को भी देखने और समझने का एक दृष्टिकोण विकसित किया। आपके ज्ञानवर्धक सानिध्य, स्नेह और आत्मीयता की वजह से इतना लम्बा वक्त कैसे बीत गया पता ही नहीं चला। आपके प्रति आभार व्यक्त नहीं किया जा सकता है। आपके कुशल, विद्वत्तापूर्ण और आत्मीय मार्गदर्शन के कारण ही यह कार्य संपन्न हो सका है। मेरे लिए आपके जैसे विद्वान शोध निर्देशक के सानिध्य में शोध करना सौभाग्य की बात है। आपका सानिध्य इसी आत्मीयता और स्नेह से सदैव पाना चाहता हूँ। मेरे दूसरे शोध निर्देशक आदरणीय डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार संतोष को हृदय से विशेष आभार। आपके कुशल, आत्मीय और सहयोगात्मक सानिध्य के बिना यह कार्य संपन्न नहीं हो सकता था। आपकी वजह से मैं अपने भाषाई त्रुटियों को काफी कुछ सही कर पाया हूँ। मुझे आपके निर्देशन में काम करने का समय थोड़ा कम भले मिला लेकिन इस सीमित अवधि में भी मैं बहुत कुछ सीख पाया हूँ। आप शोध निर्देशक के साथ-साथ बेहतरीन इंसान हैं। मैं आपका आजीवन आभारी रहूँगा साथ ही भविष्य में आपके सानिध्य का आकांक्षी भी। मैं अपने आपको सौभाग्शाली मानता हूँ कि मुझे आप दोनों विद्वतजनों के निर्देशन में शोध कार्य करने का मौका मिला। इसके लिए जे.एन.यू. संस्थान का हृदय से आभार।

भारतीय भाषा केंद्र जे.एन.यू. के सभी अध्यापकों और अध्यापिकाओं का बहुत-बहुत आभार जिन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मेरे शोध कार्य में मदद पहुँचाया। दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय के सभी विद्वान और आदरणीय अध्यापकों और अध्यापिकाओं का हृदय से बहुत-बहुत आभार, जिनसे शिक्षा पाकर मैं जवाहरलाल नेहरू विश्विद्यालय नई दिल्ली जैसे प्रतिष्ठित संस्थान से पीएचडी करने के योग्य बन सका। आप सभी को नमन।

परिवार में माता-पिता, भैया-भाभी, बहन आप लोगों का आजीवन ऋणी रहूँगा। जिन्होंने मुझे घर की जिम्मेदारियों से यथासंभव मुक्त रखते हुए इतनी उम्र तक पढ़ने-लिखने का मौका दिया। लोगों के आलोचनाओं को धैर्यपूर्वक सहा। आप लोगों के लिए आभार व्यक्त कर आपके त्याग, अपार धैर्य को कमतर नहीं जताना चाहता।

मैं इस मामले में सौभाग्यशाली रहा हूँ कि मुझे कुछ अच्छे सहपाठी, वरिष्ठ और कनिष्ठ शोधार्थी मित्रों का साथ मिला। इनके सहयोग और डांट-फटकार के बिना शोध जैसा गंभीर काम समय पर करना मुश्किल होता। कोविड काल में जब न केवल जे.एन.यू. पुस्तकालय बंद था बल्कि दिल्ली सहित पूरे देश की पुस्तक संबधी दुकानें बंद थीं, ऐसे विकट काल में देवीलाल और जितेन्द्र की पुस्तकों से बहुत सहयोग प्राप्त हुआ। अतः इन दोनों दोस्तों के प्रति विशेष आभार। कुछ प्रिय कनिष्ठ शोधार्थियों का सहयोग भी सराहनीय है। इनके सहयोग के बिना प्रूफिंग जैसा बोझिल और उबाऊ काम करना शायद मेरे लिए मानसिक तनाव झेलने जैसा होता।

जेएनयू पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय, नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी, ई पुस्तकालय, हिन्दवी डॉट कॉम तथा इन्टरनेट पर सामग्री उपलब्ध कराने वाले संस्था और लोगों का विशेष आभार। कोविड पूर्व और पश्चात् इनसे शोध पुस्तकें तथा अन्य जरूरी सामग्री मिल सकीं। इनके आभाव में मैं यह कार्य नहीं कर सकता था। पूरे जेएनयू परिवार के प्रत्येक उस व्यक्ति, पशु-पक्षी तथा प्रकृति को हृदय से बहुत-बहुत आभार जिनके सानिध्य में रहते हुए मैं यह शोध कार्य सफलतापूर्वक संपन्न कर सका।

यशवन्त प्रजापति

पेरियार हॉस्टल कमरा नं. 224

ज.ने.वि. नई दिल्ली- 110067

अनुक्रम

विषय-सूची	**पृष्ठ-सं.**
भूमिका	**i-viii**
आभार	**ix-x**
अध्याय-1 : प्रगतिशील कविता और श्रम-सौन्दर्य	1-61
1.1 प्रगतिशीलता की अवधारणा एवं स्वरूप	6
1.2 श्रम-सौन्दर्य की अवधारणा एवं स्वरूप	20
1.3 सौन्दर्य और प्रगतिशीलता के अन्तःसम्बन्ध	49
अध्याय-2 : प्रगतिशील कवियों की काव्य-दृष्टि	62-107
2.1 अंतर्वस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण	66
2.2 भाषा- शिल्प सम्बन्धी दृष्टिकोण	90
अध्याय-3 : प्रगतिशील कविता में श्रम-सौन्दर्य : संवेदना के आयाम	108-166
3.1 खेती-किसानी से जुड़ी श्रम-सम्बन्धी कविताओं में संवेदना के आयाम	111
3.2 कारखानों और इतर क्षेत्रों में श्रम करने वाले श्रमिकों से जुड़ी हुई कविताओं में संवेदना के आयाम	134
अध्याय-4 : श्रम-सौन्दर्य और भाषा-शिल्प	167-226
4.1 बिम्ब, प्रतीक	188
4.2 व्यंग्यधर्मिता	199

4.3 नाटकीयता, संवादधर्मिता और फैंटेसी शिल्प 203

4.4 मुहावरे, लोकोक्तियाँ और अलंकार 210

उपसंहार 227-237

आधार ग्रंथ 238-241

सहायक ग्रंथ 242-248

पत्र-पत्रिकाएँ 249-250

पहला अध्याय

प्रगतिशील कविता और श्रम-सौन्दर्य

1.1 प्रगतिशीलता की अवधारणा एवं स्वरूप

1.1.1 प्रगतिशीलता की अवधारणा

1.1.2 प्रगतिशीलता का स्वरूप

1.2 श्रम-सौन्दर्य की अवधारणा एवं स्वरूप

1.2.1 श्रम

1.2.2 सौन्दर्य

1.2.3 श्रम और सौन्दर्य में सम्बन्ध

1.2.4 श्रम-सौन्दर्य का स्वरूप

1.3 सौन्दर्य एवं प्रगतिशीलता के अन्तः सम्बन्ध

'प्रगतिशील लेखन' यानी 'प्रोग्रेसिव राइटिंग्स' हिन्दी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ दुनिया भर के साहित्य में चर्चा का विषय रहा है। 'प्रगतिशीलता' (progressiveness) या प्रगतिशील चेतना मनुष्य के जीवन में आदिम काल से है। मानव-समाज के विकास एवं समृद्धि में इसकी मुख्य भूमिका रही है। बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक में यह सर्वाधिक चर्चा के केंद्र में आयी।

प्रगतिशीलता मनुष्य-समाज के विकास और समृद्धि को आगे बढ़ाने वाला विचार है। यह प्रत्येक मानव-समाज के साहित्य में विद्यमान रहा है। आधुनिक साहित्य में 'प्रगतिशीलता', 'प्रगतिशील कविता' और 'श्रम-सौन्दर्य' जैसे शब्द चर्चा में रहे हैं। प्रगतिवादी साहित्य को सामान्यतः प्रगतिशील साहित्य कहा जाता है। 'प्रगतिशील साहित्य' शब्द अंग्रेजी के 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' शब्द का हिंदी अनुवाद है। यह शब्द प्रगतिशील आन्दोलन से चर्चा में आया। प्रगतिशील आन्दोलन की शुरुआत आधुनिक काल में बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में हुई थी। यह आन्दोलन अपने वैचारिक स्वरूप में अंतर्राष्ट्रीय था।

लन्दन में कुछ भारतीय नवयुवकों के साहित्य में बढ़ते रुझान से प्रेमचंद बहुत खुश थे। उन्होंने सन् 1936 में 'हंस' पत्रिका में एक टिप्पणी के माध्यम से अपनी ख़ुशी को जाहिर किया था। प्रेमचंद ने लन्दन से भेजे गए 'द इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' के मैनिफेस्टो को पढ़ा था। उन्होंने यह उम्मीद लगायी कि अगर यह सभा अपने नए मार्ग पर जमीं रही तो साहित्य में नवयुग का उदय होगा। प्रेमचंद की उम्मीदों के अनुरूप ही हिंदी साहित्य में सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। इसी के साथ ही प्रगतिशील आन्दोलन आरंभ हुआ। यह एक जनवादी आन्दोलन था। जो अपने चिंतन पद्धति, उद्देश्यों, मूल्यों, मान्यताओं और आदर्शों में नवीन था। इसने सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया है। इसके बारे में रांगेय राघव का कथन है कि- "प्रगतिशील साहित्य हिंदी साहित्य की

मानवतावादी विचारधारा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नयी परिस्थितियों में विकास है अभी तक समाज में मानवतावाद वर्गों के समन्वयवाद में समाप्त हो जाता था किन्तु नया मानवतावाद मनुष्य के विकास का सामाजिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक विश्लेषण कर चुका है और वह उन सब वस्तुओं को स्वीकार नहीं करता जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मनुष्य समाज और विशेषकर शोषित वर्ग को दबाये रखने के साधन हैं। प्रगतिशील साहित्य केवल निम्न वर्ग का जीवन-चरित्र नहीं प्रस्तुत करता, वह उच्च वर्गों की वास्तविकता, उनके संघर्ष, स्वार्थ रक्षा के प्रयत्न और उनके अंतर्विरोधों को भी प्रकट करता है। प्रगतिशील साहित्य समाज की जघन्य शोषण प्रवृत्तियों की उन ढँकी हुई वास्तविकताओं को उघारता है जो विश्व मानव प्रेम में व्याघात डालती हैं।"[1] इस तरह प्रगतिशील साहित्य का ध्येय शोषण विहीन, समतामूलक और न्यायपरस्त समाज की स्थापना का रहा है। जिसके मूल में विश्व मानवतावाद का विचार एक आदर्श रूप में मौजूद है।

हिंदी साहित्य में 'प्रगतिशीलता' प्रत्येक युग के साहित्य में मौजूद रही है। आधुनिक युग में कुछ विद्वान प्रगतिशील साहित्य को केवल मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से प्रेरित और प्रभावित साहित्य ही मानते थे। यह एकांगी दृष्टिकोण था। प्रगतिशीलता को रणजीत ने परिभाषित करने की कोशिश की है। उनका कथन है कि- "मार्क्सवादी सौन्दर्य चिंतन और दार्शनिक विवेचन में प्रगति की धारणा को भी 'प्रगतिवाद' या प्रगतिशील दृष्टिकोण, मार्क्सवादी जीवन दर्शन से अनुप्राणित साहित्य को 'प्रगतिवादी साहित्य' और इस साहित्य सहित इसके आसपास के उस समस्त आधुनिक साहित्य को जो मूलतः मानवतावादी और अग्रगामी है- चाहे उसके स्रष्टाओं का दार्शनिक दृष्टिकोण कुछ भी हो – और उस समस्त प्राचीन साहित्य को भी अपने युग की ऐतिहासिक परिस्थियों में जिसने समाज और संस्कृति को आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी और जो मानववादी अनुभवों से पूर्ण है, 'प्रगतिशील साहित्य' कहा जाना

चाहिए।"[2] निश्चित तौर से जिस साहित्य से मनुष्य-समाज उन्नति और विकास करे; वह प्रगतिशील ही होगा चाहे वह जिस भी विचारधारा और जीवन-दर्शन से प्रभावित और प्रेरित होकर क्यों न लिखा गया हो।

श्रम-सौन्दर्य प्रगतिशील कविता का एक आयाम है। श्रम करता हुआ कोई भी मनुष्य अपने भीतर सौन्दर्य को छिपाए रहता है। श्रम-सौन्दर्य सम्बन्धी कविताओं में सौन्दर्य के विभिन्न पहलूओं का उद्घाटन होता है। इसमें श्रमजीवी जनता के आधिकारों, जीवन-संघर्षों, राग-विराग, हर्ष-शोक के साथ-साथ उसके महत्व को उजागर करने का उद्देश्य छिपा रहता है। श्रमशील समाज की पक्षधरता से रचनाकार समाज से शोषण और उत्पीड़न पर आधारित मूल्यों और मान्यताओं को समाप्त करना चाहता है। एक समतामूलक समाज का निर्माण करना चाहता है। सामंतवादी और पूंजीवादी शासन-व्यवस्था में श्रमजीवी वर्ग का शोषण होता रहता है। जिसके कारण समाज में असमानता, गैरबराबरी, भेदभाव इत्यादि पर आधारित मानवताविरोधी विश्वासों, मान्यताओं को प्रोत्साहन मिलने लगता है। 'कम्युनिष्ट पार्टी का घोषणा पत्र' नामक पुस्तक में पूँजी, बुर्जुआ वर्ग और श्रमिकों के संबंधों को समझाने की कोशिश की गयी है। शोषण का शिकार होते श्रमिकों के विषय में कहा गया है कि- "जिस अनुपात में बुर्जुआ वर्ग, अर्थात् पूँजी का विकास होता है, उसी अनुपात में सर्वहारा का, आधुनिक मजदूरों के वर्ग का भी विकास होता है, जो तभी तक जिन्दा रह सकते हैं, जब तक उन्हें काम मिलता है, और उन्हें काम तब तक मिलता है, जब तक उनका श्रम पूँजी को बढ़ाता है। ये मजदूर-जिन्हें अपने आपको अलग-अलग बेचना होता है, किसी भी अन्य वाणिज्यिक वस्तु की तरह खुद भी जिंस हैं और इसलिए वे होड़ के हर उतार-चढ़ाव तथा बाजार के हर तेजी मंदी के शिकार होते हैं।"[3] इस तरह पूँजीवादी व्यवस्था अपने मूल चरित्र में शोषण पर आधारित है।

प्रगतिशील कविता पूँजीवादी शोषण के विरुद्ध है। वह मजदूरों, आदिवासियों, महिलाओं, किसानों आदि बहुसंख्यक जन को मजबूत संवेदनात्मक और वैचारिक आधार प्रदान करती है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं के विषय में अशोक त्रिपाठी ने लिखा है कि- "ये कविताएँ देश के मेहनत मजदूरी करने वाले लोगों की आत्मा की पुकार हैं, उनकी झुंझलाहट हैं, उनकी खिसियाहट हैं, उनकी संघर्ष की संकल्प शक्ति हैं, उनकी एका के बल का तूर्यनाद हैं, स्वार्थी, शोषक, सत्तालोलूपों को उनकी फटकार और ललकार हैं, उनकी पीर हैं देश की दरकी हुई छाती की उनकी हृदय में खींचीं हुई तस्वीर हैं, राजनीतिक हथकंडे बाजी के षड्यंत्रों की नकाब को चीरकर बेनकाब करने वाली शमशीर हैं, व्यंग्य की चासनी से पूरित तीर हैं जो उन्हीं की भाषा में उन्हीं के ताल, लय और तरन्नुम में हृदय रूपी चट्टान से फूटे-निर्मल और प्रवाहपूर्ण झरने की मर्मर संगीत हैं- संघर्षमय जीवन की आकुल संगीत हैं जो देश और काल की सीमा से परे देशातीत और कालातीत हैं।"[4] श्रम-सौन्दर्य और प्रगतिशीलता से युक्त कविताओं के बारे में अशोक त्रिपाठी का यह कथन चयनित सभी कवियों के कविताओं के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। इस तरह श्रम-सौन्दर्य के अंतर्गत कविताओं में कवियों ने श्रमजीवी जनता के जीवन-संघर्षों, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि के प्रति आस्था एवं विश्वास को प्रकट किया है। साथ ही श्रम को एक सामाजिक मूल्य के रूप में व्यापक अर्थ दिया है।

प्रगतिशील कविता और श्रम-सौन्दर्य के विस्तृत अध्ययन और विवेचन-विश्लेषण के लिए इस अध्याय को तीन उप-अध्यायों में विभक्त किया गया है-

1. प्रगतिशीलता की अवधारणा एवं स्वरूप

2. श्रम-सौन्दर्य की अवधारणा एवं स्वरूप

3. सौन्दर्य और प्रगतिशीलता के अन्तःसम्बन्ध

आगे हम उपर्युक्त तीनों उप-अध्यायों में विस्तृत विवेचन को देखेंगे।

1.1 - प्रगतिशीलता की अवधारणा एवं स्वरूप :-

हिंदी साहित्य और अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में प्रगतिशील लेखन यानी प्रोग्रेसिव राइटिंग्स काफी चर्चित एवं बहस का विषय रहा है। 'प्रगतिशीलता' (progressiveness) मनुष्य के जीवन में, उसके चिंतन में सदैव से मौजूद रही है। मानव-समाज का विकास एवं समृद्धि प्रगतिशीलता के कारण ही संभव हो सका है। यह बीसवीं सदी के तीसरे, चौथे दशक में सर्वाधिक चर्चा में रहा। वस्तुतः यहाँ हम प्रगतिशीलता की अवधारणा एवं स्वरूप के विषय में संक्षिप्त विवेचन-विश्लेषण करेंगे। असल में, प्रगतिशीलता की अवधारणा एवं स्वरूप में थोड़ा अंतर है। अवधारणा जहां किसी विषयवस्तु की उत्पत्ति एवं विकास को लेकर सुविचारित, वैज्ञानिक चिंतन प्रक्रिया है वहीं स्वरूप में उसको हम सम्पूर्णता, समग्रता एवं उसके रूप और बनावट की ख़ासियत को उद्घाटित करते हैं।

1.1.1- प्रगतिशीलता की अवधारणा

'प्रगतिशीलता' शब्द 'प्रगतिशील' शब्द में 'ता' प्रत्यय जोड़ने से बना है। अंग्रेजी भाषा में ‘progressive’ (प्रगतिशील) शब्द का अर्थ ‘noun’ (संज्ञा) और ‘adjective’ (विशेषण) दोनों रूपों में प्रयुक्त हुआ है। अंग्रेजी भाषा के ऑक्सफोर्ड एडवांस्ड लर्नर्स डिक्शनरी में विशेषण(adjective) के रूप में 'प्रोग्रेसिव'(प्रगतिशील) का अर्थ “in favour of new idea, modern methods and

change : progressive schools”[5] (नए विचार, आधुनिक तरीकों और बदलाव के पक्ष में : प्रगतिशील स्कूल) और noun के रूप में “A person who in the favour of new ideas, modern methods and change : political battles between progressives and conservatives”[6] (एक व्यक्ति जो नए विचारों, आधुनिक तरीकों और परिवर्तन के पक्ष में है : प्रगतिशीलों और रूढ़िवादियों के बीच राजनीतिक लड़ाई) दिया गया है। समांतर कोश हिंदी थिसारस में इसका अर्थ 'उन्नतशील', 'प्रगति कर्ता' दिया गया है। सहज समांतर कोश में 'प्रगतिवादी', 'प्रगामी' तथा 'विकासशील' अर्थ दिया गया है।

इस प्रकार प्रगति या प्रगतिशीलता एक जीवन-दृष्टि है। प्रगतिशीलता का सम्बन्ध नए विचारों और मूल्यों को मानने वाले लोगों से है। यह आधुनिक मूल्यों, मान्यताओं के अनुसार परिवर्तनधर्मी और निरंतर विकसनशील होने वाली सोच हैं। यह किसी भी व्यक्ति, समुदाय और समाज में हो सकती है।

प्रगतिशीलता का विचार व्यवस्थित और स्पष्ट रूप में आधुनिक काल में ही सामने आया। उससे पूर्व भारतीय एवं वैश्विक मानव-सभ्यता में जीवन-संचालन हेतु छोटे-मोटे शोध होते रहें, पर वैचारिक स्तर पर प्रगतिशीलता आधुनिक मानव-चिंतन का ही परिणाम है। आधुनिक काल से पूर्व तो अतार्किकता, अंधविश्वास, धार्मिकता, सामंतवाद, साम्राज्यवाद इत्यादि का प्रभाव था। उस दौर में मनुष्य जाति के उज्ज्वल भविष्य के विषय में भी सोचना आसान नहीं था। ऐसे में ‘प्रगति’ शब्द को केवल अतीत में हुए हमारे विकास से जोड़कर देखा जाता था। "सिर्फ यह धारणा कि अतीत में हमने विकास किया है, प्रगति की अधूरी धारणा है। प्रगति की धारणा पूर्ण तभी

कही जा सकती है जब वह इसके साथ ही यह विश्वास भी जगाए कि भविष्य में भी मनुष्य का असीमित विकास निश्चित है।"[7] अतः भविष्य में मनुष्य की असीमित विकास की धारणा आधुनिक काल की देन है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति आरंभ से ही प्रगतिशील रही है। वैदिक काल से लेकर आज तक के विकास परंपरा में देखें तो वेदों के बाद उपनिषदीय चिंतन, पुराण, विभिन्न धर्म-दर्शनों का विकास हुआ। 'भारतीय तत्वचिंतन में यथार्थवादी एवं प्रगतिशील अंतर्दृष्टि' शीर्षक अपने लेख में सुरेन्द्र बारलिंगे ने भारतीय दर्शन में शुरू से ही मौजूद रही प्रगतिशील अंतदृष्टि को सूक्ष्मता से उल्लिखित किया है।

वैदिक काल की प्रगतिशीलता को रेखांकित करते हुए प्रभाकर श्रोत्रिय ने लिखा है कि- "वैदिक धारा में जो कुछ गलत और त्याज्य समाहित हो गया था, उसका प्रतिरोध भी तभी से शुरू हो गया था। उसी में से संघर्षशील ध्वंस का लावा भी फूटा। लोकायत सम्प्रदाय के जनक लौक्य बृहस्पति वैदिक ऋषि थे, उन्होंने और परवर्ती चार्वाकों ने रक्तरंजित बलियज्ञों, कर्मकांडी बाह्याचारों, परासंसार की अपरोक्ष धारणाओं, 'शब्द' के अन्धानुकरण और ईश्वरवाद को यथार्थ जीवन के लिए घातक मानकर ठुकरा दिया।"[8] इस तरह चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन के साथ ही हिंदी साहित्य के सिद्ध, नाथपंथी कवियों ने भी बाह्याचार, पाखंड, कर्मकांड आदि की आलोचना की है।

मध्यकाल में सम्पूर्ण भारत में संतो, भक्तों और चिंतकों की एक समृद्ध परम्परा रही है। भक्तिकालीन साहित्य के सन्दर्भ में रामविलास शर्मा का कथन है कि- "संत कवि पलायनवादी नहीं थे। मध्यकालीन साहित्य के एकमात्र क्रांतिकारी थे। सामंती जड़ता, जातीय विद्वेष और सांप्रदायिक घृणा के विपरीत उन्होंने मानव-मानव की

भावना को उभारा। जो मनुष्यता गिर रही थी; उसे उन्होंने ऊपर उठाया। उनके साहित्य को पढ़कर निराशा, पराजय, और दीनता के भाव नहीं उत्पन्न होते बल्कि आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की भावना ही पुष्ट होती है।"[9] जाहिर है मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण ही कबीर,दादू, रज्जब और रैदास इत्यादि अनेक संत कवि सामाजिक रूढ़ियों और पाखंड पर धावा बोलते हैं। अपने प्रगतिशील दृष्टि के कारण ही वे आज भी अपने समय को लांघकर हमारे समय में भी खड़े दिखते हैं। इस काल के साहित्य में जातिवाद, संप्रदायवाद, छूआछूत, भेदभाव, शोषण और धर्माडंबर इत्यादि का नकार मिलता है। इस प्रकार भक्तिकाल में भक्त और संत कवियों ने जाति-पांति, ऊँच-नीच, भेदभाव आदि मानवता विरोधी मूल्यों, संस्कारों, रूढ़ियों और मान्यताओं को दूर करने की अलख जगायी।

आधुनिक काल में भारतेंदु युग से लेकर छायावाद तक औपनिवेशिक शक्तियों का विरोध होता रहा है। इस विरोध/बहिष्कार में साहित्य और कला के भीतर प्रगतिशीलता का स्वर मौजूद था। आधुनिक चिंतकों में राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महात्मा गांधी, रविन्द्र नाथ टैगोर, फूले, पेरियार, डॉ. अम्बेडकर इत्यादि लोग शामिल रहे हैं। आज का हमारा समाज इनके समस्त मानवतावादी चिन्तन के परिणामस्वरुप ही विकसित हुआ है। यह सब प्रगतिशील जीवन-दृष्टि के कारण ही संभव हुआ है।

भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं प्रमुख छायावादी कवियों और लेखकों ने मानवतावाद के आधार पर साम्राज्यवाद विरोधी और राष्ट्रीय चेतना से युक्त प्रगतिशील साहित्य का सृजन किया।

मार्क्सवादी विचारधारा के विस्तारस्वरूप पूरी दुनिया के साहित्य में 'कला समाज के लिए' सिद्धांत का प्रसार हुआ। समाज में भी कला किसके लिए होनी चाहिए जैसे प्रश्न उठे। निष्कर्षतः कला शोषितों अथवा मजदूरों और किसानों के लिए माना गया। इस तरह जो समुदाय अब तक उपेक्षित रह गया था; साहित्य के केंद्र में आ गया। शोषण और उत्पीड़न से कराहती मानवता के दृष्टिकोण से साहित्य-सर्जना की शुरुआत हुई। यह प्रगतिशील दृष्टिकोण का ही परिणाम था। भारत में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन नौ-दस अप्रैल 1936 ई.में लखनऊ में संपन्न हुआ। इसकी प्रेरणा सन् 1935 ई. में मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर के सहयोग से बना 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' से मिली थी।

प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन से छह माह पूर्व नागपुर में 'भारतीय साहित्य परिषद' का अधिवेशन हुआ था। जिसमें कई बड़े राजनेता और साहित्यकार शामिल हुए थे। उन नेताओं और साहित्यकारों में- जवाहरलाल नेहरू, मुंशी प्रेमचंद, आचार्य नरेंद्र देव, मौलवी अब्दुल हक, सेना अख्तर हुसैन रायपुरी इत्यादि शामिल थे। इन विद्वानों द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया था। जिसे सन् 1936 ई. के 'विशाल भारत' पत्रिका अंक में प्रकाशित किया गया था। प्रेमचंद के दृष्टिकोण में आये बदलाव को हम इस प्रस्ताव से समझ सकते हैं। इस प्रस्ताव के एक अंश को उद्धरण स्वरूप देखा जा सकता है-

"इंसानियत के नाते हम पूछते हैं कि आज जब तरक्की और उन्नति तथा अवनति की ताकतों में आखिरी लड़ाई छिड़ी हुई है, साहित्य उससे अपने को अलग रख सकता है क्या? क्या वह यथार्थ की फसील पर बैठकर क्रांति और प्रतिक्रिया के द्वंद्व का तमाशा खामोशी से देख सकता है ? हर कला की जड़ एहसास भावना में है। तो फिर

किसानों की पुकार, मजदूरों की कराह और भिखारियों की आह हमें वेहिस क्यों रख सकती है? जब जीवन का सबसे बड़ा मामला यह है कि समाज की देह से बेकारी, गरीबी और शोषण का कोढ़ किस तरह धोया जाए, तो क्या यह कहने की जरूरत रह जाती है कि साहित्य का इशारा किस तरफ हो, वह क्या कहे, किससे कहे और किस तरह कहे ? हमें विश्वास है कि हमारे देश के साहित्यकार जीवन और साहित्य में अलगाव की खाई को पाटकर साहित्य को 'इन्कलाब' का संदेशवाहक बनाएंगे"[10] इस प्रस्ताव में किसी भी विचारधारा से जुड़ने के बजाय समाज की वास्तविकता और यथार्थ से जुड़ने की बात कही गई है। समाज से भुखमरी, गरीबी, जहालत, बेकारी और शोषण आदि को समाप्त करने पर जोर दिया गया है। साहित्य को किसानों, मजदूरों, पिछड़ों और अतिपिछड़ों के जीवन से जुड़ने की बात की गई है। इस तरह मार्क्सवादी विचारधारा उपर्युक्त विचारों को गहरे स्तर पर धारण कर रही थी।

हिंदी में लेखकों को तत्कालीन परिवेश में नवीन विचारधारा- मार्क्सवाद और समाजवाद आकर्षित कर रहे थे। इस विषय में नंददुलारे बाजपेयी ने लिखा है कि- "आज हिंदी में श्रेष्ठ साहित्य के सृजन के कौन से क्षेत्र हैं? निश्चय ही समाजवादी विचारों के क्षेत्र। क्यों? क्योंकि उन्ही क्षेत्रों ने इस समय की नवीन प्रतिभा को आकर्षित कर रखा है।"[11] सन् 1936 आते-आते छायावाद के कवियों के स्वर में बदलाव आने लगा था। प्रेमचंद जैसे लेखक यथार्थवाद की ओर बढ़ रहे थे। पंत जी ने 'युगांत' लिखकर छायावाद के अंत की मानो घोषणा ही कर दी। ऐतिहासिक रूप से भारत में यह समय गांधीवाद का था।

सविनय अवज्ञा आंदोलन की विफलता और प्रगतिशील साहित्य की चर्चा की शुरुआत को लेकर रामविलास शर्मा ने लिखा है कि- "सन् 1934 के आंदोलन की विफलता ने पूँजीवादी नेताशाही की तरफ से जनता के भ्रमों को काफी दूर किया। स्वाधीनता आंदोलन ने दूसरी मंजिल में कदम रखा। देश में किसानों और मजदूरों के नए वर्ग-संगठन कायम होने लगे और उन्होंने यह कोशिश शुरू की कि राष्ट्रीय आंदोलन को समझौतावाद के रास्ते से मोड़ा जाए। यह परिवर्तन साहित्य में भी दिखाई देता है। राष्ट्रीय नेताशाही के पक्के भक्त प्रेमचंद उससे मुँह मोड़ने लगे। उन्होंने वर्ग समझौता का रास्ता छोड़कर वर्ग संघर्ष का रास्ता अपनाया। छायावादी कवि अपने कल्पना विलास की स्वयं आलोचना करने लगे। हिंदी में तभी प्रगतिशील साहित्य की चर्चा हुई।"[12] भारत में अब समाजवादी, मार्क्सवादी वैज्ञानिक चिंतन पद्धति का बोलबाला होने लगा था। सन् 1925 ई. में साम्यवादी पार्टी का गठन भी हो चुका था। छायावाद की कल्पना की उड़ान धरती पर आ गई थी। सुमित्रानंदन पंत जैसे कवि अब ग्रामीण आँख से देश-दुनिया देखने लगे थे। निराला 'तोड़ती पत्थर' 'कुकुरमुत्ता', 'झींगुर डट कर बोला',' राजे ने रखवाली की' आदि जैसी श्रमिक वर्ग से जुड़ी यथार्थवादी कविताएँ लिख रहे थे।

सन् 1936 ई.में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद से बहुत से रचनाकार इससे जुड़े। नवीन दृष्टिकोण से साहित्य सृजन होने लगा। एक समय के बाद इस संघ से जुड़े रचनाकारों के साहित्य को ही प्रगतिशील साहित्य कहा जाने लगा था। फलतः प्रगतिवादी काव्य और प्रगतिशीलता को लेकर सहमति-असहमति विद्वानों में बनने लगी थी। सन् 1936 में कुछ विद्वान दोनों को एक ही मानते थे, तो कुछ अलग-अलग। डॉ. नगेंद्र ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में प्रगतिवाद के विषय में लिखा है कि- "प्रगतिवादी काव्य की संज्ञा उस काव्य को दी गई जो छायावाद के समाप्ति काल में 1936 ईस्वी के आसपास से सामाजिक चेतना

को लेकर निर्मित होना आरंभ हुआ। इसके शब्दार्थ से इसके स्वरूप को समझने में भ्रांति होती रही है। इसलिए यही समझना चाहिए कि यह नाम उस काव्यधारा का है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भाव बोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली।"[13] यहाँ पर डॉ. नगेंद्र ने मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के विचारों एवं भावबोध को लेकर सामाजिक चेतना से लिखी गई काव्यधारा को ही प्रगतिवाद कहा है। प्रगतिशीलता के बारे में उन्होंने स्पष्टता से कुछ नहीं कहा है।

प्रगतिशीलता के विषय में सज्जाद जहीर का कथन है कि- "अगर प्रगतिशीलता को विस्तृत मायने में लें तो दुनिया में और हमारे मुल्क में तरक्की पसंद अदब की संरचना हमेशा से रही है। इसलिए कि हर अच्छा साहित्य जिसमें मानवता का जौहर होता है, जो इंसानी रिश्तों और संबंधों को ज्यादा सच्चा, पुरखुलूस और ज्यादा आकर्षक और सुंदर बनाने का आह्वान करता है, जिसकी ध्वनि, नज्में और जादू की तरह विरोधी नफसीयाती (मनोवैज्ञानिक) स्थितियों की कलात्मक अभिव्यक्ति से हममें एक नई रूहानी समरसता, संतुलन और हलचल पैदा होती है और जो हमें आत्मविश्वास, प्रसन्नता और आनंद की रहस्यमय नई जन्नतों में पहुंचा देता है, प्रगतिशील होता है।"[14] सज्जाद जहीर के इस कथन से स्पष्ट है कि प्रगतिशील साहित्य के लेखन के लिए किसी भी विचारधारा, संगठन या संस्था में न तो जुड़ना अनिवार्य है और न ही किसी आदेश का पालन करना कोई कसौटी है। मानवतावादी दृष्टिकोण से संपन्न कोई भी रचनाकार प्रगतिशील और उसके द्वारा रचित साहित्य प्रगतिशील साहित्य के अंतर्गत आएगा।

प्रगतिवाद और मार्क्सवाद का संबंध महत्वपूर्ण है। प्रगतिशील साहित्य पर विचार-विमर्श के लिए कई विद्वानों ने अपने-अपने मत रखे। जैसे शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है- "यदि उसे प्रगतिशील बनना है तो उसे शोषित श्रेणी का साहित्य

बनाना पड़ेगा, जिसके हाथ में विश्व का भविष्य है, जिसमें इतिहास को ठीक रास्ते पर ले जाने की क्षमता है। उस साहित्य में विरोधी दलों, भावनाओं या श्रेणियों के सहयोग की; आदर्शवाद, सुधारवाद और समन्वयवाद (जिसे थेरीवाद कहना चाहिए) की जरूरत नहीं है। उसमें केवल एक ही दृष्टिकोण हो सकता है वह है क्रांतिकारी"[15] जाहिर है शिवदान सिंह चौहान की इस मान्यता में प्रगतिशील साहित्य को लेकर मार्क्सवादी मान्यता ही दृष्टिगत हो रही है। चौहान का यह मानना कि केवल क्रांतिकारी दृष्टिकोण ही प्रगतिशील साहित्य के लेखन में प्रयोग होगा एकांगी प्रतीत होता है। दरअसल, शिवदान सिंह भी प्रगतिशीलता और प्रगतिवाद में भेद करते नहीं प्रतीत हो रहे हैं।

प्रगतिशील साहित्य को लेकर रामविलास शर्मा दूसरा विचार रखते हैं। वे मार्क्सवाद या गैर मार्क्सवाद से प्रेरित होकर लिखने की बात नहीं करते उनका स्पष्ट मानना है कि- "प्रगतिशील साहित्य से मतलब उस साहित्य से है जो समाज को आगे बढ़ाता है, मनुष्य के विकास में सहायक है।"[16] यहाँ रामविलास शर्मा का दृष्टिकोण किसी विचारधारा के पूर्वग्रह से रहित है। उनकी मान्यता प्रेमचंद के 1936 के प्र.ले.स. (प्रगतिशील लेखक संघ) अध्यक्ष के तौर पर दिए गए भाषण से मिलती है। जिसमें उन्होंने साहित्यकारों से आह्वाहन करते हुए कहा था कि- 'अब हमें एक ऐसे साहित्य लिखने की जरूरत है जिसमें चिंतन का स्तर उच्च हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो तथा सृजन की आत्मा हो, जिसमें जीवन की सच्चाइयों को प्रकाशित किया गया हो, जो हमारे समाज में गति, संघर्ष और बेचैनी को जन्म दे। उसे निद्रा में न रखे क्योंकि अगर अब ज्यादा देर तक हमारा समाज सोता रहेगा तो यह मृत्यु का लक्षण होगा।'

मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभावस्वरूप रचित प्रगतिवादी साहित्य को कुछ विचारक प्रगतिशील साहित्य की कोटि में नहीं रखते थे। जाहिर है प्रगतिशील साहित्य किसे कहा जाए या प्रगतिशीलता क्या है अभी भी स्पष्ट न हो सका था। इस सन्दर्भ में नामवर सिंह ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि - "... जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है। 'वाद' की अपेक्षा 'शील' को अधिक अच्छा और उदार समझकर इन दोनों में भेद करना कोरा बुद्धि विलास है और कुछ लोगों की इस मान्यता के पीछे प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोध भाव छिपा है।"[17] इस तरह नामवर सिंह प्रगतिवादी लेखन को प्रगतिशील साहित्य की कोटि में मानते हैं।

रांगेय राघव ने अपनी पुस्तक 'प्रगतिशील साहित्य के मानदंड' में प्रगतिशील साहित्य के सृजन हेतु केवल मार्क्सवादी दृष्टि संपन्न होने को नकारते हैं। उन्होंने लिखा है कि- "प्रगतिशील साहित्य सृजन करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि लेखक मार्क्सवादी ही हो वह मानवतावादी भी हो सकता है किंतु उसे ईमानदार रहना आवश्यक है। ऐसे प्रेमचंद थे जो कम्युनिस्ट मार्क्सवादी न होकर भी ईमानदार लेखक थे"[18] इस तरह समाजवादी और मानवतावादी दृष्टिकोण मार्क्सवाद की आधारशिला है लेकिन उसकी भी अपनी सीमाएं हैं। यह जरूरी नहीं कि मार्क्सवादी दृष्टि से रचा प्रत्येक साहित्य प्रगतिशील साहित्य ही हो। प्रेमचंद गैरमार्क्सवादी होते हुए भी प्रगतिशील साहित्य की रचना करते रहे एवं साहित्य को नई ऊँचाइयां प्रदान की।

किसी साहित्य के प्रगतिशीलता की मानदंड को लेकर अजय तिवारी का कथन है कि-"किसी साहित्य में मार्क्सवाद, वर्ग-संघर्ष और मनोवैज्ञानिक समाजवाद का सपना है या नहीं, इससे उसके प्रगतिशीलता का निर्णय नहीं होगा। उसकी प्रगतिशीलता इस बात से परखी जाएगी कि अपने-देशकालगत विशिष्ट संदर्भ में समाज के अंतः संबंधों, अंतःसंघर्षों के बीच उस साहित्य की स्थिति क्या है; वह

जनसाधारण के साथ है या नहीं। साहित्य और संस्कृति की मूल्यवान निधियां अगर मार्क्सवादी नहीं है और जनता के हितों के साथ हैं तो उन्हें हम प्रगतिशील मानेंगे और मार्क्सवाद का नाम लेकर भी कोई साहित्य जनता से बचता-कतराता है तो उसे प्रगतिशील नहीं मानेंगे।"[19] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज के हित और विकास के लिए जिस काल में भी मानवतावादी दृष्टि से साहित्य लिखा गया वह सब प्रगतिशील साहित्य है।

इस प्रकार इस बात में सच्चाई है कि यदि हम ऐसे साहित्य को प्रगतिशील माने जिसमें वर्ग संघर्ष, वैज्ञानिक समाजवाद का स्वप्न है तो निश्चित तौर पर एक स्तर पर हमें अपनी दृष्टि संकुचित लगेगी अथवा हम गलत साबित होंगे। क्योंकि प्रगतिवाद के दौर का साहित्य हो या पूर्व प्रगतिवाद के; ऐसे लेखक एवं उनकी कृतियां मौजूद हैं जिसमें वे लगभग सारी विशेषताएं मिलेंगी जो प्रगतिवादी साहित्य के अंतर्गत हैं। जनता एवं समाज के निम्न वर्ग के हितों के लिए जिस काल में भी साहित्य लिखा गया वह सब प्रगतिशील साहित्य है।

अतः प्रगतिशील कवि किसी भी विचारधारा का व्यक्ति हो सकता है। वह मार्क्सवादी भी हो सकता है गाँधीवादी और द्वैत-अद्वैतवादी भी अथवा किसी अन्य विचारधारा का भी। दरअसल, प्रगतिशीलता एक संकल्पना और दृष्टिकोण है जो किसी भी विचारधारा, सिद्धांत और दर्शन आदि मानने वाले में भी हो सकती है। यहाँ तक कि मार्क्सवाद से अप्रभावित रचनाकार भी प्रगतिशील साहित्य की रचना कर सकता है। उदाहरण स्वरूप – प्रसिद्ध रूसी लेखक टॉलस्टॉय के साहित्य में ईसाईयत के प्रति आस्था है लेकिन लेनिन ने उन्हें 'रूसी क्रांति का दर्पण' की संज्ञा दी। वास्तव में टालस्टाय ने अपनी कला में क्रांतिपूर्व रूस के किसानों का जितना सजीव एवं वास्तविक चित्रण किया उतना लेनिन को और कहीं नहीं मिला।

देश की स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में प्रगतिशीलता को लेकर विद्वानों में इस बात पर बहसें हुईं कि- प्रगतिशीलता के सिद्धांत में क्या कुछ परिवर्तन हुआ है। आखिरकार भारत साम्राज्यवाद की चंगुल से मुक्त हुआ है। शासन की बागडोर अब भारतीयों के हाथ में है। ऐसे में प्रगतिशीलता को हम कैसे परिभाषित करने की कोशिश करें? इन प्रश्नों के आलोक में प्रगतिशीलता के महत्वपूर्ण विशेषताओं पर लल्लन राय का कथन उल्लेखनीय है- "प्रगति से जुड़ी हुई मान्यताएं हमेशा किसी एक स्थिर अवधारणा पर आधारित नहीं हैं। उनमें भी परिवर्तन होता रहा है। चाहे स्वाधीनता से पूर्व देखा जाए या स्वाधीनता के बाद एक तत्व उसमें सदैव विद्यमान रहा है ... वह है शोषित-उत्पीड़ित जनता की वास्तविक मुक्ति। ...चाहे राष्ट्रीयता की भावना हो या राष्ट्रीय स्वाधीनता का प्रश्न, चाहे शोषित-उत्पीड़ित जन जीवन के प्रति प्रेम हो या शोषक उत्पीड़क वर्ग के प्रति आक्रोश, चाहे रूढ़िवाद और जातीय भेदभाव का विरोध हो या सांप्रदायिक सद्भाव सर्वत्र हो, यह केंद्रीय मुद्दा इसके सामने रहा है। केवल कविता की अंतर्वस्तु ही नहीं वरन् उसमें शिल्प और कलात्मक सौंदर्य के प्रतिमानों के ग्रहण और परित्याग में भी यह केंद्रीय मुद्दा हमेशा उसमें दिखाई देगा।"[20] इस प्रकार लल्लन राय ने प्रगतिशीलता को समकालीन संदर्भ से जोड़ा है। उसे साहित्य और समाज में सदैव मौजूद रहने वाली दृष्टि के रूप में भी उल्लिखित किया है।

प्रगतिशील साहित्य लेखन तभी संभव है जब रचनाकार पुराने प्रासंगिक जीवन मूल्यों को लेकर समय के साथ उभरते नवीन जीवन-मूल्यों की पहचान करे एवं उन्हें अपनाए। समाज के लिए ऐसे जीवन मूल्यों को रचना के स्तर पर पिरोए जो समाज को प्रगति की तरफ ले जाने वाले हों। प्रतिगामिता के तरफ धकेलने वाले मूल्यों का त्याग करे। उदाहरणस्वरुप कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतलम' में यदि शकुंतला के सौंदर्य वर्णन और कण्व ऋषि के आश्रम में उसके क्रिया-व्यापार को देखें

तो हम पाएंगे कि शकुंतला प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग अपने श्रृंगारिक साधन के रूप में करती है। पेड़-पौधे, लताएं, फूल-पत्तियां, हिरण जैसे अन्य प्राणी सहजीवी की तरह अपना सुखमय जीवन बिता रहे हैं। वे जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-उल्लास सब में सहभागी हैं। कण्व ऋषि के आश्रम में जो क्रिया-व्यापार करते दिखाया गया है- वह न केवल मानव-समाज के लिए वरन् मनुष्येतर प्राणियों के लिए भी हितकर और कल्याणकारी है। उसमें सजीव-निर्जीव, गोचर-अगोचर सबके स्वास्थ्य की कामना की गई है। ये सभी प्रगतिशीलता के ही लक्षण हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि- प्रगतिशील साहित्य दरअसल, आम जन का साहित्य है। उसमें जन आकांक्षाएं होती हैं, जीवन-यथार्थ का चित्रण होता है। रूढ़ियों के प्रति विरोध का भाव होता है। वह व्यक्ति को मानव द्रोही नहीं बल्कि सामाजिक बनाता है। नागरिकों के जीवन की दुखों और दुविधाओं, सुखों और सुविधाओं की समझ होती है। किसी भी तरह के शोषण मूलक विचारों का विरोध होता है। उसमें जीवन की सहजता को बाधित करने वाली जर्जर मान्यताओं, रूढ़ियों और पद्धतियों का विरोध होता है। आधिकारों की रक्षा हेतु संघर्ष की चेतना व्याप्त होती है। तार्किक और सुसंगत आधारों पर नयेपन को स्वीकार करने और पुराने को त्यागने का भाव होता है। मनुष्य की चेतना को उदात्तता की ओर ले जाने की प्रवृत्ति होती है। जनमानस को उदार एवं मानवीय बना कर उनके सौंदर्य बोध को उन्नत बनाता है। लोगों की अभिरुचियों को समाजोन्मुख बनाता है। हिंसा और द्वेष को नकार कर आपसी सामंजस्य, भाईचारा और सहिष्णुता को बढ़ाता है। समाज की समृद्धि और विकास में सहायक नैतिक मूल्यों, समन्वयवादी विचारों, उदात्त भावनाओं की रक्षा के लिए प्रेरणा देता है। ऐसे साहित्य के सृजन के लिए रचनाकार को किसी प्रगतिशील संस्था, संगठन अथवा विचारधारा से जुड़ना अनिवार्य शर्त नहीं

है। मानवतावादी दृष्टिकोण से रचित कोई भी रचना प्रगतिशील साहित्य की कोटि में आएगी। यह दृष्टिकोण किसी भी रचनाकार में हो सकती है। अतः प्रगतिशीलता मनुष्य-समाज को सकारात्मक दिशा में विकसित करने वाली चेतना है। यह नित परिवर्तनशील जगत में नए-नए सकारात्मक मूल्यों का सृजन करती और उसे समाज के लिए ग्राह्य बनाती है।

प्रगतिशीलता का स्वरूप :

प्रगतिशीलता का विचार केवल भारतीय नहीं अपितु वैश्विक है। यह सर्वविदित है कि दुनिया के सभी मानव-समाजों में प्रगति होती रही है। जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य ने कबीलाई समाज-व्यवस्था से आरम्भ कर लोकतंत्र जैसे कई शासन-पद्धतियाँ विकसित किया है। मार्क्सवाद से प्रेरित और प्रभावित प्रगतिशील दृष्टिकोण को यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो इसका स्वरूप अखिल भारतीय था। राजनीति, साहित्य और कला इत्यादि ज्ञानात्मक अनुशासनों पर प्रगतिशील दृष्टिकोण का प्रभाव पड़ा था। जैसे महात्मा गाँधी ने लिखा है कि- 'मार्क्सवादी विचारधारा से यदि हिंसा के तत्व को निकाल दिया जाय तो मैं भी मार्क्सवादी हूँ।' इस साहित्य में साम्राज्यवाद, साम्प्रदायिकता, वर्गीय शोषण तथा हर प्रकार के असमानता के खिलाफ एक जनपक्षधर विवेक मौजूद है। नए सौन्दर्यबोध के साथ सन् 1936 के बाद लिखी जाने वाली कविताओं, कहानियों, नाटकों, उपन्यासों और समालोचनाओं की एक अटूट परंपरा मिलती है।

साहित्य के क्षेत्र में इसके स्वरूप को नामवर सिंह ने इस प्रकार बताया है- "हर भाषा न केवल उर्दू का बल्कि हिंदी का, बांग्ला का, तमिल का, मलयालम का, गुजराती का, मराठी का साहित्य इतिहास आप पढ़ें तो 1936 के बाद साहित्य धारा बदल गई थी। लोग तब किसानों, मजदूरों, गरीब आवाम के बारे में नहीं लिखते थे...

ये साहित्य के विषय पहले नहीं बने थे। प्रेमचंद ने शुरू जरूर किया था, लेकिन 1936 के बाद एक लहर सी चली और आप अगर उसको पहचानना चाहते हैं कि सन 1936 से लेकर बहुत दूर न भी जाएं तो बाद के 25 वर्षों का इतिहास हर भाषा का देखें तो जितने बड़े लेखक उस दौर में थे... स्वर भी बदले थे।"[21] स्पष्ट है कि प्रगतिशील दृष्टिकोण की छाप भारत के लगभग हर भाषा-बोली में पड़ी थी। आम मनुष्य की चिंता संपूर्ण भारतीय साहित्य में आ गई थी। अब साहित्य में प्रकृति-सौंदर्य का स्वरूप भी बदल गया। उसे मनुष्य-जीवन के परिपार्श्व में चित्रित किया गया। उसके उद्दीपन रूप का चित्रण प्रायः धूमिल पड़ गया। इस तरह प्रगतिशील साहित्य का स्वरूप अपने चिंतन, मूल्यों और मान्यताओं में अखिल भारतीय एवं वैश्विक है।

1.2 - श्रम-सौन्दर्य की अवधारणा एवं स्वरूप:-

'श्रम-सौन्दर्य' को लेकर चर्चा और चिन्तन हिंदी साहित्य में आधुनिक काल में शुरू हुआ। यह सौन्दर्य का ही विस्तृत रूप है। यह प्रगतिशील साहित्य से सम्बद्ध है। यह स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु चलने वाले संघर्ष एवं वैश्विक घटनाओं से जुड़ा हुआ है। श्रम-सौन्दर्य तत्कालीन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिघटनाओं से निर्मित मूल्यों में से एक है। यह अपने स्वरूप में अंतर्राष्ट्रीय है।

सन् 1900 ई. के बाद देश की आर्थिक स्थिति जर्जर हो चली थी। एक विशाल जन जनसमुदाय गरीबी, भुखमरी, जहालत और अकाल जैसी प्राकृतिक तथा मानवजनित आपदाओं का शिकार हो रहा था। वामपंथी विचारधारा का उदय हो चुका था। ऐसे में गाँधी जी के नेतृत्व में हुए सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से कई बड़े नेताओं का मोहभंग हो गया था। वे गाँधीवादी रास्ते को छोड़ नए रास्ते तलाशने लगे थे। अधिकतर वामपंथी नेता इस बात को भलीभांति समझते थे कि किसानों और मजदूरों के जुड़े बिना स्वाधीनता आन्दोलन सफल नहीं हो सकता था। इस दिशा में सामंतविरोधी आन्दोलन चलाना मददगार साबित होता।

इस दौर में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मजदूर संगठनों, किसान संघों की स्थापना हो रही थी। अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य को याद करते हुए सज्जाद जाहिर ने 'संगठन की अंतर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि' शीर्षक से एक लेख लिखा है। इस लेख में उन्होंने 'इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन के सन्दर्भ में लिखा है कि- "सन् 1935 के पहले दो साल का जरा ख्याल कीजिए। सारी दुनिया पर मुसीबत की तरह टूट पड़ने वाले आर्थिक संकट का राजनीतिक प्रभाव जर्मनी में हिटलर और उसकी नाज़ी पार्टी की डिक्टेटरशिप के रूप में प्रकट हुआ हमको लन्दन में और पेरिस में जर्मनी से भागे या निकाले हुए संकटग्रस्त लोग मिलते थे फासिज्म के जुल्म की दर्द भरी कहानियाँ हर तरफ सुनाई देती थी। जर्मनी में स्वाधीनता प्रेमियों और कम्युनिस्टों को पूँजीपतियों के गुंडे तरह-तरह के शारीरिक कष्ट पहुँचा रहे थे।...सिर्फ एक शक्ति इस बर्बरता के तूफ़ान का मुकाबला कर सकती थी। और वह थी कारखानों के मजदूरों की एकत्र शक्ति, उस संस्था की शक्ति जो इकठ्ठा होकर काम करने से, भागीदारी से, पूँजीपतियों के अत्याचारों का हर दिन डटकर मुकाबला करने से, लगातार वर्गसंघर्ष का अनुभव प्राप्त करके एक ऐसे इंकलाबी संगठन की चेतना पैदा करती जा रही थी जो उस समाज को नीचे घसीटने वाले पूँजीवाद को पराजित करने और भविष्य की नागरिकता का निर्माण के योग्य बनाती थी।"[22] इसी पृष्ठभूमि में सन् 1936 में भारत में मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर के नेतृत्व में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। पहले अध्यक्ष के तौर पर प्रेमचंद ने लखनऊ में अपना ऐतिहासिक भाषण दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि- 'अब सौन्दर्य के प्रतिमान बदलने चाहिए। सौन्दर्य केवल चिकने, कोमल कपोलों में ही नहीं है असली सौन्दर्य तो उस माँ के देह, मन और शरीर में है जो अपने बच्चे को खेत के मेंड़ पर लिटाकर कामकर रही है।'

हिंदी साहित्य में उत्तर-छायावादी दौर में गद्य एवं काव्य दोनों में लेखन का स्वरूप बदल गया था। यह सब राष्ट्रीय और अन्तर्रष्ट्रीय परिस्थितियों में आये बदलाव

के कारण संभव हुआ। युगबोध बदलने से रचनाकारों का दृष्टिकोण बदल गया। अब शहर और गाँव में बसने वाली मेहनत और मजदूरी करने वाली शोषित-पीड़ित जनता साहित्य के केंद्र में आ गयी। जो सदियों से अपने श्रम से अभिजात्य वर्ग के सुख-सुविधा में योगदान देती आ रही थी। जो खुद घास-फूस की झोपड़ी में गुजर-बसर करके भी उनके लिए महलों और इमारतों का निर्माण करती आई थी। उसने शारीरिक श्रम से सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए एक सौन्दर्य लोक का सृजन किया था। अपनी खुरदरी हथेलियों से समाज को गढ़कर उसे सुन्दर आकार दिया था। जिसके पास जीवन जीने के विविध ढंग और अनुभव थे। वही जनता अब तक भूख, जहालत और अभावभरी जिंदगी जीने के लिए विवश थी। उसकी एकता, दृढ़ता और साहस समाज को एक नई दिशा दे सकती थी।

प्रगतिशील कविता में इसी उपेक्षित श्रम-शक्ति के महत्व को पहचान दिया गया है। उसके श्रम-सौन्दर्य को उजागर किया गया है। उसकी कर्मशीलता, जीवन-संघर्ष, राग-द्वेष, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा और सुख-दुःख को रचा गया है। ऐसा करके सौन्दर्य के नये मूल्यों, मान्यताओं और संस्कारों को गढ़ने की कोशिश की गयी है। मानव-समाज के लिए सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय के नए आदर्श गढ़े गए हैं। इस तरह का लेखन समकालीन साहित्य में भी जारी है।

इस अध्याय में हम श्रम और सौन्दर्य का विस्तृत विवेचन एवं विश्लेषण करेंगे। इसमें श्रम-सौन्दर्य क्या है, इसका महत्व क्या है और हिंदी साहित्य में इसे किस तरह देखा-परखा गया है तथा इसका क्या स्वरूप बनता है।

1.2.1 – श्रम :

'श्रम' का सम्बन्ध मानव-समाज से है। मानव जीवन श्रम पर ही अवलंबित है। यदि हम इसके शाब्दिक अर्थ को समझने की कोशिश करें तो हम पाते हैं कि- राजपाल हिंदी शब्दकोश के अनुसार'श्रम' शब्द का शाब्दिक अर्थ है -"1.मेहनत (जैसे- श्रम करना) 2.काम (जैसे-जीविका हेतु श्रम करना) 3.थकावट, क्लान्ति (जैसे- अत्यधिक श्रम होना) 4.प्रयास (जैसे- बिना श्रम सफलता प्राप्त करना) 5.कसरत, व्यायाम (जैसे- शरीर को स्वस्थ रखने हेतु श्रम करना)।"[23] ऑक्सफ़ोर्ड एडवांस लर्नर डिक्शनरी के अनुसार श्रम (exertion) का अर्थ- "Noun 1[U] physical or mental effort; the act of making an effort 2 [Sing.] the use of power to make sth happen"[24] इस प्रकार शब्द कोशीय अर्थानुसार श्रम मनुष्य द्वारा किया जाने वाला शारीरिक, मानसिक कार्य या प्रयास है।

श्रम अर्थात मेहनत मानव-जीवन के विकास का केन्द्रीय तत्व है। जीवन को गतिमान रखने, विकास करने, समृद्ध बनाने और पूरी मानवता को सुखी तथा संपन्न बनाने हेतु अनिवार्य है। श्रम द्वारा ही व्यक्ति अपने जीवन की जरूरतों के साथ-साथ पूरे समाज और मानवता के जरूरतों को भी पूरा करता है। इस प्रकार मानवता की लता श्रम के ही सहारे सदियों से पुष्पित और पल्लवित होती हुई चली आ रही है। श्रम को परिभाषित करते हुए पुरुषोत्तम सर्राफ ने लिखा है कि-"मनुष्य अपने हाथ, पांव, कंठ (वाणी-स्थल) एवं मस्तिष्क आदि से किसी लक्ष्य आदि के लिए समुचित ढंग से जो क्रिया व कार्य आदि करता है, वह श्रम है।"[25] इस परिभाषा में किसी लक्ष्य को लेकर किया गया शारीरिक क्रिया-व्यापार को श्रम या मेहनत कहा गया है। भोजन पकाना, अपने कपड़े धुलना, अपने बागीचे, फुलवारी में काम करना इत्यादि सभी कुछ श्रम है। अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल श्रम को इससे थोड़ा अलग रूप में पारिभाषित

करते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Principle of Economics' (1890) में लिखा है कि- "Any exertion of mind or body undergone partly or wholly with a view to earning some good other than the pleasure derived directly from the work"[26]

अर्थात् "मन या शरीर की किसी भी तरह की थकावट आंशिक रूप से या पूरी तरह से काम से प्राप्त ख़ुशी के अलावा कुछ और अच्छी कमाई करने की दृष्टि से पूरी होती है।"

इस परिभाषा में यह बताया गया कि अपनी ख़ुशी के लिए किया गया काम अथवा मेहनत; श्रम की कोटि में नहीं आता। अपने कपड़े धुलना, महिलाओं/पुरुषों द्वारा अपने परिवार के लिए भोजन पकाना, बागवानी करना और अध्यापकों द्वारा स्वयं अपने बच्चे को पढ़ाना इत्यादि इसमे शामिल है। हम कह सकते हैं कि कोई भी काम जिससे कुछ कमाने का इरादा न हो या कोई मौद्रिक लाभ की प्राप्ति न हो श्रम नहीं कहलायेंगे। कमाई करने या कुछ मौद्रिक लाभ के इरादे से किया गया शारीरिक और मानसिक कार्य ही श्रम है। प्रो. जोवन्स ने भी कुछ इसी से मिलते- जुलते रूप में परिभाषा किया है। जिसमें उन्होंने आनंद के अलावा किसी लाभ से प्रेरित हो शरीर या मस्तिष्क द्वारा किया गया आंशिक कार्य को श्रम की संज्ञा दी है। मनुष्य जब मन-मस्तिष्क एवं शरीर से पूरी तरह से तल्लीन हो कोई काम किसी मौद्रिक, वस्तु या किसी अन्य लाभ से प्रेरित हो करने लगता है तो वह मूलतः श्रम ही कर रहा होता है। S.E. थामस का कथन है कि-

"labour connotes all human efforts of body or mind which are undertaken in the expectation of reward"[27]

अर्थात् "श्रम शरीर या मन के सभी मानवीय प्रयासों को दर्शाता है जो कि पुरस्कार (reward) की आशा में किये जाते हैं।"

इस प्रकार अर्थशास्त्र में अपने परिवार या स्वयं के ख़ुशी के लिए किया गया ऐसा श्रम जिसमें कोई आय अर्जन, पुरस्कार और मौद्रिक चाहत की आकांक्षा न हो तो उसे श्रम की संज्ञा नहीं दिया जा सकता। श्रम की कोटि में वही शारीरिक, मानसिक कार्य और प्रयास शामिल होगा जिसमें काम करने वाले व्यक्ति ने कोई आर्थिक लाभ प्राप्त किया हो। इसमें डाक्टर, वकील, इंजीनियर, नाई, धोबी, कारखाने में काम करने वाले मजदूर, रिक्शाचालक इत्यादि सभी शामिल हैं।

कार्य अथवा श्रम को लेकर दर्शनशास्त्र में यह कहा गया है कि- "मनुष्य प्रकृति का जितना रचनात्मक रूप में परिवर्तन तथा नियंत्रण करता है वही कार्य है।"[28] इस तरह हिंदी साहित्य में श्रम का सम्बन्ध दर्शनशास्त्र के इसी दृष्टिकोण से है। मनुष्य ने प्रकृति के रचनात्मक उपयोग से ही अपनी सभ्यता और संस्कृति का विकास किया है। वह धरती के गर्भ में छिपे उर्वरा शक्ति को अपने शारीरिक और मानसिक श्रम से प्रकट करता है। अन्न उपजाकर पूरे मानव जाति का भरण-पोषण करता है। सौन्दर्य का सृजन करता है। बीजों से निकलने वाले नन्हें-नन्हें पौधे, हरे भरे खेत, बाग़-बगीचे, कोमल और सुन्दर फूलों से युक्त हवा में झूमते सरसों, अलसी, मटर, चना, लहराते धान, गेहूँ और जौ आदि की बालियाँ किसे सुन्दर नहीं लगते हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र में 'श्रम' को एक संचारी भाव माना गया है। तैंतीस संचारी भावों में श्रम भी शामिल है। भरतमुनि के आधार पर विश्वनाथ ने इसके बारे में लिखा है- " "खेदो रत्यध्वगत्यादेः श्वासनिद्रादिकृच्छ्रमः" अर्थात् रति और मार्ग चलने आदि से उत्पन्न खेद का नाम श्रम है श्वास का चढ़ना, निद्रा आदि इसके

अनुभाव हैं।"[29] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी श्रम को दो अर्थों में उल्लेख किया है। 'पहले अर्थ में इसे क्रिया-व्यापार के आधिक्य अथवा किसी क्रिया का लगातार साधन के रूप में तथा दूसरा उससे होने वाले थकावट के रूप में' इसे समझाते हुए उन्होंने लिखा है कि-"किसी के प्रेम में यदि कोई दौड़-धूप करे, विद्या की प्राप्ति के लिए रात-दिन बैठकर पढ़ता रहे, गड़ा हुआ खजाना पाने के लिए दिन भर मिट्टी खोदता रहे तो उसका यह दौड़ना-धूपना, रात-रात भर बैठना या दिन भर मिट्टी खोदना क्रमशः व्यक्ति, विद्या या धन के प्रति रति भाव को संचारी कहा जा सकता है। पर इन दौड़ धूप के कारण यदि कोई थककर बैठ जाय या रात भर मेहनत करने से शिथिल हो जाय तो यह थकान या शिथिल होना रति भाव से दूर पड़ जाने के कारण संचारी नहीं कहा जा सकता।"[30] इस तरह संचारी भाव के अंतर्गत थकावट को तभी रख सकते हैं जब उसका सीधे-सीधे सम्बन्ध किसी रति भाव से जुड़ता हो। स्थायी भाव की स्थिति में श्रम से हुए थकावट को संचारी भाव में शामिल नहीं किया जाता है। जाहिर श्रम को यहाँ जिस अर्थ में उद्घाटित किया गया है प्रगतिशील कविता में भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वहाँ इसे एक सामाजिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है, न कि संचारी भाव के रूप में।

प्रगतिशील साहित्य में 'श्रम' का अर्थ अर्थशास्त्र से ज्यादा विस्तृत रूप में लिया गया है। इसमें श्रम समाज के संचालन हेतु एक सामाजिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित है। इसमें केवल आर्थिक लाभ के लिए ही कार्य करना शामिल नहीं है। इसमें अपने जीवन की आधारभूत जरूरतों की पूर्ति हेतु भी किया गया श्रम शामिल है। श्रम मूलतः मानव-जीवन के सबसे बड़े मूल्य 'जिजीविषा' से सम्बंधित है। जब हम किसी ऐसे किसान को देखते हैं; जो अभी-अभी अपने पशु के सहयोग से खेत जोतकर आया है और उसे प्यार की थपकियाँ दे रहा है अथवा दाना-पानी खिला रहा है; तो बैल के

प्रति हमारे मन में श्रद्धा का भाव उमड़ता है। यह भाव इसलिए पैदा होता है क्योंकि उस पशु ने न केवल उस किसान के लिए बल्कि पूरे मानव-समाज के लिए श्रम करके 'जिजीविषा के मूल्य' को पोषित किया है| अतः वह चारे के साथ-साथ प्यार, दुलार और पुचकार का अधिकारी है।

इस प्रकार वह शारीरिक श्रम हो या मानसिक अथवा वह किसी मौद्रिक लाभ या पुरस्कार की आकांक्षा से कर रहा हो या स्वयं की ख़ुशी के लिए साहित्य में उसे श्रम मूल्य की कोटि में ही रखा गया है। यदि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में देखें तो अपने जीवन और अपनी ख़ुशी लिए श्रम करता हुआ मनुष्य अंततः 'जीवन' के लिए ही श्रम कर रहा होता है। वह श्रम के मूल्य को ही पोषित कर रहा होता है। इससे समाज के सभी सकारात्मक मूल्यों को पोषण मिलता है।

1.2.2- सौन्दर्य :

'सौंदर्य' शब्द सुनने में ऐसा लगता है कि इसका अर्थ बहुत सीधा, सहज और सरल है। जब हम अध्ययन की गहराई में उतरते हैं तब पता चलता है कि भारतीय परंपरा में तो कम लेकिन पाश्चात्य परंपरा में कई दशकों तक अध्ययन, चिंतन और विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इसके बाद भी कोई सर्वसामान्य परिभाषा या दृष्टिकोण नहीं बन सका। सौन्दर्य-चिंतन की यह परंपरा आज भी जारी है।

'सौन्दर्य' का शाब्दिक अर्थ 'सुन्दरता' या 'खूबसूरती' है। जिसके लिए अंग्रेजी भाषा में 'beauty' (ब्यूटी) शब्द का प्रयोग किया जाता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'बी' का अर्थ है प्रिय, रसिक या श्रृंगारी पुरुष। 'टी' भाव वाचक प्रत्यय है अर्थात् 'ब्यूटी' का अर्थ हुआ रसिक का भाव या रसिकता या फिर श्रृंगारी पुरुष का गुण। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में- "फ़्रांसिसी भाषा में इसका समानार्थक शब्द है 'बैल', लातिनी में पुलक्रुम,

यूनानी भाषा में कलोस और रूसी में क्रसोता। बैल का अर्थ है सुंदरी, पुल-क्रुम प्रीतिकर का वाचक है और यूनानी भाषा का कलोस भी सामान्यतः सुन्दर के ही निकट है। रूसी शब्द क्रसोता का वाच्यार्थ है सुदर्शन अर्थात् देखने में सुन्दर यद्यपि लक्षणा से यह व्यापक अर्थ का वाचक भी हो जाता है। इनमें कुछ शब्दों में लालित्य तत्व का प्राधान्य है और कुछ में रूप या चाक्षुष सौन्दर्य का। कलोस की अर्थ-परिधि अधिक व्यापक है- उसमें सद्गुण का भाव भी निहित है- इस प्रकार सौन्दर्य में रूपाकर्षण, लालित्य और व्यापक अर्थ में प्रेयस तत्व का अन्तर्भाव मिलता है।"[31] सामान्य अर्थों में मनुष्य को सुखद अनुभूति कराने और मन को आकर्षित करने वाले रूप और दृश्य आदि सुन्दर कहे जाते हैं। चाहे वह प्रातःकाल के उषा की लालिमा हो, निरभ्र आकाश का नीलापन हो। शरत पूर्णिमा की ज्योत्सना हो या सतरंगी इंन्द्रधनुष और पुष्पवाटिका की सुन्दरता हो या फिर पक्षियों का कलरव हो। भौरों का गुंजन, विशाल मैदान और हिमखण्डों से ढंके पर्वत श्रेणियाँ किसके मन को नहीं भाते हैं।

इस तरह व्युत्पति एवं कोशीय अर्थ के अनुसार सुन्दर का अर्थ हृदय या मन को आनंदित, सुखी, आल्हादित करने से जुड़ा हुआ है। लेकिन वास्तव में सुन्दरता या सौन्दर्य क्या है इसे लेकर चिंतन की एक लम्बी परम्परा रही है। इस पर मुख्यतः भौतिकवादी और आध्यात्मवादी दोनों दृष्टिकोणों से चिंतन हुआ है। इन दोनों दृष्टिकोणों में भेद को समझाते हुए फतह सिंह का मानना है कि-'भौतिकवादी दृष्टि यथार्थतः व्यावहारिक दृष्टिकोण है इसमें सौन्दर्य का आधार विभाव को माना जाता है इसलिए उसी के अंगों में सौन्दर्य की खोज की जाती है। इसी तरह आध्यात्मवादी दृष्टिकोण में सौन्दर्य की सत्ता को ईश्वरीय, अज्ञात, अलौकिक आदि से जोड़कर अध्ययन किया जाता है।' इस प्रकार सौन्दर्य को समझने के लिए दोनों दृष्टिकोणों से किये गए चिंतन परम्परा का अध्ययन अनिवार्य है।

व्यवहारिक रूप में 'सौन्दर्य' शब्द का प्रयोग कई सन्दर्भों में होता है जैसे- किसी वस्तु या प्राणी के रूप-गुण की विशिष्टता और मूल्य के अर्थ में। किसी कला की मार्मिकता और प्रभाव की अनुभूति के लिए तथा प्रकृति की मनमोहक अभिव्यक्ति इत्यादि के लिए किया जाता है। इस तरह सौन्दर्य की सत्ता अन्तः और बाह्य दोनों होती है। वेद भारतीय ज्ञान परंपरा के पुरातन स्रोत हैं। वेदों में सौन्दर्य को सत्य की सत्ता के रूप में वर्णित किया गया है। फतहसिंह ने अपनी पुस्तक 'भरतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका' में लिखा है कि - "वेद में सौन्दर्य-तत्व को 'स्वास्ति' की संज्ञा दी गयी है; अतः वेद में मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य स्वास्तिमान होना है। स्वास्ति शब्द 'सु' और 'अस्ति' के योग से बना है। 'सु' का अर्थ है 'सुन्दर' और 'अस्ति' सत्ता का द्योतक है; स्वास्ति का अर्थ है सत्य सुन्दर या सुन्दर सत्य"[32] इस तरह वेदों में सत्य को सुन्दर तथा सुन्दर को सत्य कहा गया है। मनुष्य के लिए जिस रूप और मात्रा में सत्य कल्याणकारी है वही सुन्दर है। 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' की संकल्पना भारतीय संस्कृति में शुरू से ही रही है। इसीलिए वेदों में मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य स्वास्तिमान यानी कल्याणकारी होना बताया गया है। जाहिर है स्वास्तिमान होने का अर्थ मोक्ष की प्राप्ति से जुड़ा हुआ है।

ऋग्वेद में सौन्दर्य को 'रूप' और 'अरूप' के सन्दर्भ में वर्णन किया गया है। सौन्दर्य-सबंधी ऋग्वैदिक दृष्टिकोण का उल्लेख करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है कि- "ऋग्वेद के कवि संसार को रूपों से भरा हुआ देखते हैं। रूप उनका पारिभाषिक शब्द है। जितने भी पदार्थ हैं वे सब रूप हैं। इन पदार्थों में एक ही उर्जा प्रवाहित होती है- वह अरूप है, वह दिखाई नहीं देती उसे अनेक नामों से पुकारा जाता है।"[33] यहाँ जिस अरूप की बात हुई है वह अदृश्य है, अलौकिक है। इस संसार में समस्त वस्तु-जगत एक रूपाकार में ढला हुआ है। सब में एक ही निराकार सौन्दर्य की उर्जा प्रवाहित है। इस तरह ऋग्वेद में सौन्दर्य को लेकर भाववादी दृष्टि से विचार किया

गया है। उसे अदृश्य और अलौकिक सत्ता से जोड़कर देखा गया है। कुछ इसी तरह का विचार ग्रीस दार्शनिक प्लेटो का भी था। वे भी सौन्दर्य को एक प्रत्यय मानते थे। वे उसे वस्तु का गुण अथवा विशेषण मानने के बजाय शिव और सत्य के प्रत्यय की तरह निरवयव, इन्द्रियातीत, चिरंतन, अद्वय, देशातीत, कालातीत और आदर्शजगत की सत्ता मानते थे।

भारतीय सौन्दर्य-चिंतन जो वेदों में प्राप्त होता है कालांतर में आगे नहीं बढ़ पाया। पाश्चात्य देशों की तरह सौंदर्यशास्त्र के अध्ययन को लेकर कोई स्वतंत्र पद्धति नहीं विकसित हो पाई। इस सन्दर्भ में राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपने एक लेख में लिखा है कि- "कदाचित ऐसे किसी शास्त्र की अपेक्षा या आवश्यकता ही हमारे समाज में अनुभव नहीं की गयी। जिस समाज के जीवन में हर स्तर पर सौन्दर्य रचा-बसा हो, सौन्दर्य परमतत्व और समस्त सृष्टि में अविभाज्य या समवेत अंगीकार किया गया हो, वहाँ अलग से सौन्दर्य पर चर्चा न की जाय- यह स्वाभाविक है। पृथक से सौन्दर्य पर विवेचन पर आवश्यकता उन समाजों में अधिक अनुभव की जाएगी, जहाँ सौन्दर्य को जीवन और सृष्टि से अलग करके देखा गया हो।"[34] इस प्रकार भारतीय चिंतन परम्परा में पश्चिम की भांति सौन्दर्य को लेकर अलग से किसी अध्ययन पद्धति के विकास की आवश्यकता ही नहीं रही। फिर भी वेदों, पुराणों, उपनिषदों, कामसूत्र, रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्र आदि में आचार्यों और कवियों ने उल्लेख किया है। भारतीय सौन्दर्य-दर्शन मूलतः काव्यशास्त्र में मौजूद है। वात्स्यायन का सौन्दर्य-विमर्श 'काम' और 'स्त्री' के सन्दर्भ में है। उन्होंने मनुष्य के काम चेतना को सौन्दर्य के एक बड़े फलक पर देखा है। काम से उनका अर्थ जीवन को सम्पूर्ण रूप से सुन्दर बनाने वाले जगत में मौजूद सभी तत्वों के सर्वांगीण समुच्चय से है। इसी अनुरूप उन्होंने एक

आचारसंहिता का भी प्रतिपादन किया। वात्स्यायन ने जिस स्त्री-विमर्श को खड़ा किया; उसमें सुन्दर को सत्य और शिव से जोड़कर देखा गया है।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में सौन्दर्य को कला से सम्बंधित माना है। उसे उन्होंने रस के द्वारा वर्णित किया है। उन्होंने चार मूल रसों– श्रृंगार, वीर, वीभत्स और रौद्र को स्थापित किया। इन्हीं से हास्य, अद्‌भुत, भयानक और करुण रस को उत्पन्न हुआ माना है। शारीरिक, अयत्नज तथा स्वाभाविक अलंकारों को भरत मुनि ने सौन्दर्य के उपादानों के रूप में देखा है। पंडितराज जगन्नाथ ने रस से रमणीयता को पृथक करके अपने चिंतन को प्रतिपादित किया है। उन्होंने यह बताया है कि काव्य में ऐसे स्थान भी मौजूद होते हैं जहाँ रस नहीं होता है। फिर भी वह स्थल पढ़ने में अच्छे लगते हैं। इस प्रकार से सौन्दर्य का सम्बन्ध रमणीयता ही स्वीकार करना ठीक होगा। भारतीय काव्यशास्त्रियों में भामह, दंडी, वामन, अभिनव गुप्त, कुंतक, मम्मट, विश्वनाथ इत्यादि ने सौन्दर्य को लेकर अपने विचार काव्य के माध्यम से व्यक्त किये। जैसे वामन अलंकार को काव्य का प्राणतत्व मानते हुए उसे सौन्दर्य का पर्याय भी मानते हैं। इसी तरह आनंदवर्धन सौन्दर्य का सम्बन्ध ध्वनि से और कुंतक वक्रोक्ति से जोड़ते हैं।

सौन्दर्य के सम्बन्ध में कुछ हिंदी कवियों के विचार उल्लेखनीय है। जैसे विद्यापति के पदावली का एक अंश-

"सखि हे पुछसि अनुभव मोय

जोइ पिरीत अनुराग बखानइते तिले-तिले नूतन होय

जनम अवधि भर रूप निहारल नयन न तिरपति भेल"[35]

इसी तरह घनानंद ने भी अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य का वर्णन किया है-

"रावरे रूप को रीति अनूप नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।

त्यों इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहीं आनि तिहारिये।।"[36]

आधुनिक काल में प्रगतिशील कवि त्रिलोचन ने रूप की सुन्दरता को कुछ इस तरह रचा –

"मैं तुम्हें / निहारते / अघाता नहीं"[37]

इस प्रकार सौन्दर्य में क्षण-क्षण नूतन होने, आकर्षण पैदा करने और मोहाविष्ट करने का जो गुण है कवियों ने उसे रचने की कोशिश की है। आदिकालीन कवि विद्यापति और रीतिकालीन कवि घनानंद और प्रगतिशील कवि त्रिलोचन तीनों ने सौन्दर्य को रूप के पर्याय के रूप में लिया है।

सौन्दर्य के विषय में कुछ उर्दू के शायरों ने मानीखेज बातें लिखीं हैं। जैसे अल्लामा इक़बाल ने लिखा है-

"हज़ारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है

बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदा-वर पैदा"[38]

स्पष्ट है कि नरगिस फूल जो कई वर्षों में एक बार खिलता है, देखने में सुन्दर होने के बावजूद उसके सौन्दर्य को पहचानने वाला बहुत लम्बे समय बाद कोई पैदा हुआ। अर्थात् सौन्दर्य को देखना और महसूस करना सबके वश की बात नहीं। उसके लिए सौन्दर्यबोध होना चाहिए। इसे विकसित करना पड़ता है। इसी भावबोध का एक शेर अमीर मिनाई के यहाँ भी मिलता है। उन्होंने लिखा है कि-

"कौन सी जा है जहाँ जल्वा-ए-माशूक़ नहीं

शौक़-ए- दीदार अगर करना है तो नजर पैदा कर"[39]

अर्थात् दुनिया में ऐसी कोई जगह ही नहीं है जहाँ प्रेम और सौन्दर्य न हो। उसे देखने के लिए नज़र पैदा करना पड़ता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सौन्दर्य के विषय में अपने निबंध 'कविता क्या है?' में विचार किया है। उन्होंने लिखा है कि "कुछ-रूप रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है। और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्तस्सत्ता की यही तदाकार-परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। इसके विपरीत कुछ रूप-रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनकी प्रतीति या जिनकी भावना हमारे मन में कुछ देर टिकने ही नहीं पाती और मानसिक आपत्ति-सी जान पड़ती है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जाएगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भीतर-बाहर का भेद व्यर्थ है। जो भीतर है वही बाहर है।"[40] अतः शुक्ल जी के अनुसार सौन्दर्य में आकर्षण शक्ति होती है, वह चेतना पर हावी होने के गुण से संपन्न होती है। प्रत्येक रूप-रंग की वस्तुएँ समान रूप से सौन्दर्य को धारण नहीं करतीं। सौन्दर्य प्रत्येक वस्तु में मौजूद होता है केवल मात्रा भेद का अंतर है। शुक्ल जी सौन्दर्य को प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति के समय काल के आधार पर पारिभाषित करने की कोशिश करते हैं। सौन्दर्य हमारे भीतर मौजूद है। जिसे सामान्यतः कहा जाता है कि सौन्दर्य देखने वाले की आँखों में स्थित है इसलिए सौन्दर्य को देखने के लिए अनुकूल दृष्टि आवश्यक है।

इस प्रकार शुक्ल जी सौन्दर्य की बाह्य सत्ता को नहीं मानते हैं लेकिन इस प्रश्न पर विचार नहीं करते हैं कि सौन्दर्य बोध का निर्माण कैसे हुआ है। सौन्दर्य किसी व्यक्ति को प्रत्येक वस्तु में कम या ज्यादा क्यों प्रतीत होता है। क्या यह अलौकिक सत्ता है या लौकिक। यहाँ शुक्ल जी ने जगन्नाथ द्वारा काव्य-पाठन से हृदय जगत में

उठने वाले चमत्कार के भाव से जो रस की प्रतिष्ठा कम हुई थी उसे प्रतिस्थापित किया है। इस सन्दर्भ में आनंद प्रकाश दीक्षित ने 'हिंदी साहित्य कोश भाग 1' में लिखा है कि-"सौन्दर्य की अनुभूति बड़ी चमत्कारक होती है, जो आनंददायिनी होती है आचार्य शुक्ल ने चमत्कार को तुच्छ मानकर रस की पुनः प्रतिष्ठा तो की और क्रोचे के अभिव्यंजनावाद को भारतीय वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान माना, किन्तु वस्तु दर्शन करने पर होने वाली हमारी अन्तः सत्ता की तदाकार परिणति को सौन्दर्यानुभूति मानकर उसे भारतीय रसानुभूति के ही समकक्ष मान लिया।"[41] इस प्रकार शुक्ल जी के सौन्दर्य-सम्बन्धी विचार को उनके रसवादी दृष्टि और भारतीय रस चिंतन के सन्दर्भ में देखा जा सकता है।

प्रेमचंद ने सौन्दर्य के विषय में लिखा है कि - "प्रश्न यह है कि सौन्दर्य है क्या वस्तु ? प्रकटतः यह प्रश्न निरर्थक सा मालूम होता है, क्योंकि सौन्दर्य के विषय में हमारे मन में कोई शंका संदेह नहीं। हमने सूरज का उगना और डूबना देखा है, उषा और सन्ध्या की लालिमा देखी है, सुन्दर सुगंध भरे फूल देखे हैं; मीठी बोलियाँ बोलने वाली चिड़ियाँ देखी हैं, कल-कल निनादिनी नदियाँ देखी हैं, नाचते हुए झरने देखे हैं- यही सौन्दर्य है। इन दृश्यों को देखकर हमारा अंतःकरण क्यों खिल उठता है? इसलिए कि इनमें रंग या ध्वनि का सामंजस्य है। बाजों का स्वर साम्य अथवा मेल ही संगीत की मोहकता का कारण है।"[42] प्रेमचंद ने यहाँ सौन्दर्य को सामंजस्य में स्वीकार किया है। वह चाहे स्वरों के मेल से ध्वनियों के साम्य में मौजूद हो अथवा रंगों या किसी अन्य चीज में। प्रेमचंद यह भी कहते हैं कि सौन्दर्य अन्य पदार्थों की तरह निरपेक्ष नहीं होता है। यह व्यक्ति सापेक्ष होता है। एक रईस व्यक्ति अपने वैभव की सामग्री से सुख की प्राप्ति कर सकता है लेकिन दूसरों के लिए वह दुःख का कारण भी हो सकती है।

सुन्दरता की कसौटी वर्ग आधारित भी होती है। प्रेमचंद ने सौन्दर्य की दो महत्वपूर्ण विशेषताओं को रेखांकित किया है। पहली सामंजस्यता और दूसरी सापेक्षता।

जयशंकर प्रसाद ने सौन्दर्यानुभूति पर भारतीय दृष्टिकोण से विचार किया है। उन्होंने आँखों को रूप ग्रहण करने वाली इन्द्रिय और हृदय को गृहित रूप की धारणा बनाने वाला बताया है, इसलिए वे मूर्त-अमूर्त का भेद नहीं मानते। उनका कथन है कि- 'वायु और अन्तरिक्ष आँखों से प्रत्यक्ष दर्शी नहीं हैं; उनके भी रूप का अनुभव हृदय ही करता है।' उन्होंने कामायनी के 'लज्जा' सर्ग में सौन्दर्य को 'मनुष्य की चेतना का उज्ज्वल वरदान' कहा है। जाहिर है धरती पर मौजूद मानव-समाज के रहन-सहन, खान-पान, जीवन शैली, मूल्यों, मान्यताओं और परम्पराओं में सौन्दर्यबोध मौजूद होता है। अतः समाज सौन्दर्यात्मक मूल्यों, मान्यताओं और आदर्शों पर टिका हुआ है।

सौन्दर्य की सत्ता केवल मनुष्य के बाह्य रूपाकार में ही व्याप्त नहीं होती है बल्कि उसकी क्रियाशीलता और हृदय-जगत में मौजूद प्रेम, करुणा और मानवता की भावना में भी होती है। सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं में होती है। मस्तिष्क में जन्म लेने वाले कल्याणकारी विचार में मौजूद होती है। इसे मनुष्य में 'चेतना दीप्ति, बुद्धि की स्फूर्ति और हृदय का लावण्य' कहा गया है। कवि शमशेर बहादुर सिंह ने सुन्दरता की सत्ता को जीवन में हर पल और हर क्षण महसूस किया है। उन्होंने कविता के सृजन हेतु अपने आसपास के जीवन में दिलचस्पी लेने की बात की है।

सौंदर्य के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण को गोबिन्द प्रसाद ने इस तरह अभिव्यक्त किया है-

"सुंदरता के बारे में मैं जो भी कहूंगा वह भूख में एक टुकड़ा होगा।

सुंदरता के बारे में जो भी कहूंगा वह प्यास में एक बूंद होगी।

सुंदरता के बारे में जो भी कहूंगा वह अंधेरे में उजाले की एक किरण होगी।

वह गायक के कंठ में करुणा में भीगा एक स्वर होगा।"[43]

इस तरह यहाँ जिस सौन्दर्य-चेतना को उद्घाटित किया गया है वह श्रमजीवी जनता के जीवन से निर्मित है। यह पाठक की सौन्दर्य-चेतना को और अधिक विस्तृत करने वाली दृष्टि है। यह समाज के उपेक्षित जन को मुख्य धारा से जोड़ने के विचार से प्रभावित है। 'भूख में एक टुकड़ा निवाला', 'प्यास में एक बूँद', 'अँधेरे में उजाले की मात्र एक किरण जैसे पदबंध श्रमजीवी जनता के जीवन-संघर्ष से निकले हैं।

इस प्रकार सौंदर्य भौतिक जीवन के अनुभवों पर आधारित है। यह ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से ग्राहय है। जिसका व्यक्ति के अन्तःकरण पर आनंददायक प्रभाव पड़ता है। यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि उसकी सौंदर्याभिरुचि कैसी है। मनुष्य जगत से इतर सौंदर्य निरर्थक है। मनुष्य अपनी सृजनात्मक शक्ति से सौंदर्य का एक प्रति संसार रचता है। भाषा, नृत्यकला, वास्तु कला, स्थापत्य कला, संगीत कला एवं विविध ललित कलाएं आदि इसके अभिव्यक्ति हैं। सौंदर्य की सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों सत्ता होती है। सापेक्ष सौंदर्य में उपयोगिता संबंधी तत्व जैसे नैतिकता, कर्मठता, ज्ञान इत्यादि जुड़ने से मनुष्य समाज हेतु ज्यादा उपयोगी बन जाता है। इनकी प्रियता, आकर्षण, लोकमंगल का गुण ही इनके महत्व को बरकरार रखता है। समय के साथ जिन मूल्यों में ह्रास होता है वे अपने सौंदर्य को खो देते हैं। मनुष्य उनका त्याग कर देता है। जैसे एक समय में सती प्रथा, बालविवाह, बलि प्रथा, दास प्रथा इत्यादि मूल्य हुआ करते थे। आज ये त्याज्य हो गये हैं।

पाश्चात्य चिंतन में सौन्दर्य-विवेचन की एक लम्बी परंपरा रही है। जर्मन विद्वान गेटे ने सौंदर्य के विराट और असीम सत्ता को शब्दातीत कहा है। उन्होंने इस

असीम सत्ता का सम्बन्ध जीवन उत्पत्ति से स्वीकार करते हुए इसे 'आदिम विषय' बताया है। उन्होंने सौन्दर्य को प्रकृति के समान वैविध्यपूर्ण कहा है| उनका विचार है कि सौन्दर्य प्रकट नहीं होता लेकिन सृजनशील मन की विविध प्रकार की उक्तियों से ही उद्भासित होता रहता है। अंग्रेजी शब्द 'एस्थेटिक' का सर्वप्रथम प्रयोग जर्मन चिन्तक बाउमगार्टन ने अपने शोध-प्रबंध में किया था। उन्होंने इसका प्रयोग एक विशेष विज्ञान के रूप में किया था। 'एस्थेटिक' (सौंदर्यशास्त्र) शब्द उन्हीं की देन है। प्राचीन सौन्दर्य चिंतकों में प्रारंभिक नाम सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, सिसरो, होरेस तथा लोंजाइनस आदि हैं।

सुकरात सौन्दर्य को उपयोगितावादी दृष्टि से देखते थे। उनके विचार से "एक सुन्दर वस्तु वही है जिसका सुन्दर उपयोग हो। सुन्दरता और अच्छाई दोनों भिन्न नहीं हैं। प्रत्येक वस्तु जिसका हम उपयोग करते हैं वह अपने उपयोग के अनुसार ही अच्छी और सुन्दर दोनों मानी जा सकती है। एक गोबर से भरी हुई टोकरी भी उपयोगी होने के कारण सुन्दर कहला सकती है और एक सुनहरी ढाल अनुपयोगी होने के कारण बुरी हो सकती है।"[44] सुकरात के इस दृष्टिकोण की अपनी सीमाएँ एवं विशेषताएँ है।

प्लेटो ने सुन्दरता का सम्बन्ध 'प्रत्यय जगत' से प्रत्यय जगत से स्वीकार किया है। उनके अनुसार संसार में मौजूद सभी वस्तुओं में अपना स्वतंत्र सौन्दर्य न होकर 'प्रत्यय जगत' का सौन्दर्य है। यह सभी वस्तुओं में व्यक्त हुआ है। उन्होंने सुंदर और सौन्दर्य में भी भेद माना है। सौन्दर्य को अलौकिक और सुन्दरता को लौकिक बताया है| वे उपयोगिता को सुन्दरता की एकमात्र कसौटी नहीं मानते। अरस्तू ने सौन्दर्य को सुव्यवस्थित क्रम, समानता एवं स्थिरता जैसे विशेषताओं से युक्त बताया है। उसे नैतिकतामूलक संदर्भ में स्वीकार किया है-"सौन्दर्य वह शिव है जो आनंदप्रद होता है, क्योंकि वह शिव होता है।"[45] इस तरह सुकरात ने सौन्दर्य को शिवम् और सुन्दरम से जोड़कर देखा है। उन्होंने दोनों को एक ही माना परन्तु अरस्तू ने दोनों को अलग

किया है। अरस्तू ने शिवम् को मनुष्य के व्यवहार में किन्तु सुन्दरम को निर्जीव वस्तुओं में मौजूद होने की बात की। सौन्दर्य को शिवम् यानी आनंदप्रद के रूप में मानने की वजह से बोसांके ने अरस्तू को ग्रीक परंपरा के सौन्दर्य विषयक समझ को आगे न ले जाने वाले चिन्तक के रूप में देखा। अरस्तू के बाद सिसरो और होरेस ने सौन्दर्य हेतु आनुपतिकता, औचित्य और सामंजस्यता को महत्वपूर्ण माना है। लोंजाइनस का 'काव्य में उदात्तता' का सिद्धांत सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लोंजाइनस के बाद मार्क्स यूरेलियस और फिलोस्ट्रेटस के सौन्दर्य सम्बन्धी विचार मिलते हैं। जो कोई नई दृष्टि देते प्रतीत नहीं होते हैं।

मध्यकाल में प्लाटिनस, सेंट आगस्टाइन, टामस एक्वीनास, अल्बर्टी, ड्यूरर, सर फिलिप सिडनी जैसे विचारकों ने सौन्दर्य-सम्बन्धी चिंतन किया है। प्लाटिनस का सौन्दर्य चिंतन आध्यात्मिकता से प्रेरित था। उसने सौन्दर्य सम्बन्धी सामंजस्यता या समरूपता के सिद्धांत को मानने से इंकार कर दिया| उसने कहा कि- यदि सामंजस्य में सौन्दर्य है तो वस्तु के सम्पूर्णता में सौन्दर्य होना चाहिए किसी एक खंड या हिस्से में नहीं। जबकि सौन्दर्य तो वस्तु के एक भाग में भी होता है। थामस एक्विनास तेरहवीं शती के चिन्तक थे। वे प्लेटो, अरस्तू, आगस्टाइन के विचारों से प्रभावित थे। बीसवीं सदीं में आकर उनके सौन्दर्य-विवेचन का महत्व बढ़ गया। वास्तव में उन्होंने सौन्दर्य के तीन मूलभूत तत्वों का उल्लेख किया- पूर्णता, अनुपात या सामंजस्य और स्पष्टता। जाहिर है आज भी सौन्दर्य चिंतन में इन तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है।

आधुनिक काल में सत्रहवीं शती के विचारकों में बेकन, देकार्ते, थामस हाब्स, जॉनलाक और लाइबनीज आदि प्रमुख चिंतक हैं। बेकन ने सौन्दर्य को ज्यामितीय संतुलन की दृष्टिकोण से नहीं देखा। उन्होंने सौन्दर्य किसी चित्र में पूर्ण रूप से

अभिव्यक्त न पा सकने वाले अंश को कहा है। इस तरह पुनर्जागरण काल तक के चिंतन पर ग्रीस परंपरा का प्रभाव बना रहा।

आंग्ल-दर्शन का आधार मुख्यतः अनुभववाद है। इस दर्शन में चिंतन का स्रोत अनुभव को माना जाता है| जबकि बुद्धिवाद ज्ञान को अनुभव से स्वतंत्र मानता है। वह मानकर चलता है कि ज्ञान मानव-मस्तिष्क में पहले से मौजूद रहता है। शेफ्टबरी को अनुभववादी सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। आंग्ल चिंतकों में बेकन, शेफ्टबरी, एडिसन, जार्ज बर्कले, लार्ड केमस, विलियम, हक्सन, होगार्थ, डेविड ह्यूम, एडमंड बर्क और रेनाल्ड प्रमुख हैं।

शेफ्टबरी सौन्दर्य की अनुभूति के लिए मानव मन में एक छठी इन्द्रिय की कल्पना करते हैं| वे सौन्दर्य को शिव से जोड़ते हैं। एडिसन सौन्दर्य को वास्तविक जीवन के अनुभवों के आधार पर आनंद से सम्बंधित मानते हैं। इसी तरह हचेसन या हक्सन अपने पूर्ववर्ती विचारकों से प्रभावित थे| उन्होंने सौन्दर्य को दो रूपों- मौलिक या निरपेक्ष तथा तुलनात्मक अथवा सापेक्ष के रूप में विवेचन किया है। होगार्थ एक श्रेष्ठ चित्रकार थे उन्होंने सौन्दर्य को टेढ़ी या वर्तुल रेखा के माध्यम से समझाया। एडमंड बर्क ने सौन्दर्य को शरीर के उन गुणों से जोड़कर देखा जिनसे प्रेम या लगाव जैसी भावना पैदा होती है। इस तरह ब्रिटिश चिंतकों ने अनुभववाद के आधार पर सौन्दर्य सम्बन्धी चिंतन पद्धति को आगे बढ़ाया है। उनका यह चिंतन जर्मन-चिंतकों के लिए महत्वपूर्ण साबित हुआ। ब्रिटिश चिंतन प्रणाली सौंदर्यशास्त्र को एक क्रमबद्ध प्रणाली के रूप में स्थापित करने में सफल नहीं हुई।

जर्मन चिंतकों में बामगार्टन, सुल्जर, मेंडलसन, विन्किलमन, लैंसिग, हाइन्स, हैमन, हर्डर, इमैनुअल कांट, हम्बोल्ट, शिलर, श्लेगल, शिलिंग, हिगेल, शापनहावर, इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। बामगार्टन का महत्व उनके सौन्दर्य चिंतन और विवेचन-

विश्लेषण के कारण नहीं है। उनका महत्व सौन्दर्य और कला को क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन के रूप में स्थापित करने से है। उन्होंने 'सौंदर्यशास्त्र' नाम से सौन्दर्य अध्ययन की एक शाखा स्थापित किया। सुल्जर और मेंडलसन ने सौन्दर्य को शिवत्व अर्थात कल्याणकारिता से जोड़कर देखा है। विन्किलमन की सौन्दर्य दृष्टि बहुत कुछ प्राचीन ग्रीक कला एवं मूर्ति कला के आधार पर बनी थी। उन्होंने सौन्दर्य की सर्वोच्चता मानव के आकार को बतलाया और कला का उद्देश्य मात्र सौन्दर्य बतलाया। हाइन्स एक प्रकृतिवादी चिन्तक थे। उन्होंने सौन्दर्य को प्राकृतिक पूर्णता में स्वीकार किया।

जर्मन सौन्दर्यशास्त्रीयों में इमैनुअल कांट का चिन्तन महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने तार्किक और वैज्ञानिक तरीके से सौन्दर्य का विवेचन-विश्लेषण किया है। उन्होंने 'प्रयोजन की निष्प्रयोजनता' के सिद्धांत से सौन्दर्य, आनंद और रूचि तीनों की व्याख्या की है। उन्होंने बताया हम किसी वस्तु को मुख्यतः दो ही दृष्टि से देखते हैं- पहला उद्देश्यवादी एवं दूसरा सौंदर्यमूलक। उन्होंने सौन्दर्य का दो वर्ग बनाया- एक प्रयोजन निरपेक्ष सौन्दर्य और दूसरा प्रयोजन सापेक्ष सौन्दर्य। प्रयोजन निरपेक्ष सौन्दर्य में जगत के प्राकृतिक-सौन्दर्य को रखा। उनके अनुसार प्रकृति में सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता व्याप्त होती है। प्रयोजन-सापेक्ष सौन्दर्य के अंतर्गत वस्तुओं के प्रयोग, उपयोग और उद्देश्य के ज्ञान से होने वाले सौन्दर्य को रखा है। साथ ही उनके रूपाकृति बोध से भी होने वाली आनंदानुभूति भी इसी वर्ग में शामिल है। कांट मानते हैं एक वनस्पतिशास्त्री दोनों तरह के सौन्दर्यबोध को प्राप्त कर लेता है। वे प्रयोजन-सापेक्ष सौन्दर्य को ज्यादा महत्व देते हैं। इसमें व्यक्ति प्रथमतः सामंजस्यपूर्ण रूप के प्रति तो सचेत ही रहता है साथ ही वस्तु के विशिष्ट प्रयोजन से भी परिचित रहता है। उनके अनुसार मानव-जीवन के लिए यह सौन्दर्य रूप ज्यादा व्यवहारिक है क्योंकि इसमें नैतिकता का सिद्धांत भी जुड़ा रहता है। मानव-सभ्यता की सभी कलाएं यथा- शिल्प कला, मूर्ति कला, स्थापत्य कला और संगीत कला इत्यादि इसी से जुड़ी हुई हैं।

पाश्चात्य परंपरा के सौन्दर्य विषयक प्रमुख चिंतकों में हिगेल का स्थान महत्वपूर्ण हैं। वे सौन्दर्य को ईश्वर या विश्वात्मा से सम्बंधित मानते हैं। इस सन्दर्भ में चंद्रकला माटा ने लिखा है कि- "हिगेल ने सौन्दर्य को ऐन्द्रियक संसार के माध्यम से प्रकाशित होने वाला परमतत्व माना है। सौन्दर्य वह ऐन्द्रियाकतापूर्ण वस्तु है जिसके माध्यम से परमतत्व प्रकाशित होता है। सौन्दर्य केवल इन्द्रियों को ही नहीं अपितु मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है।"[46] इस तरह हिगेल ने सौन्दर्य को अलौकिकता से जोड़कर देखा है। उन्होंने संसार में मनुष्य को सबसे सुन्दर बताया क्योंकि वह विवेकशील प्राणी है। हीगेल ने विश्वात्मा को ही कला में भी अभिव्यक्त माना है। विश्वात्मा अपने को कला के तीनों रूपों- प्रतीकात्मक, क्लासिकल और रोमैंटिक कला में व्यक्त किया है। हिगेल का सौन्दर्यात्मक चिंतन महत्वपूर्ण है| लेकिन एक समय के बाद उनका कला से विश्वास उठ गया और उन्होंने कला के मृत्यु की घोषणा कर दी।

शापेनहावर ने भी सौन्दर्य की आध्यात्मिक व्याख्या किया है। उन्होंने सौन्दर्य को इच्छा से सम्बंधित माना जिसका सम्बन्ध परमार्थ जगत से है। वे इच्छा के विषय में स्वीकार करते हैं कि- "यह पहले जड़ पदार्थ में, फिर पौधों में और जानवरों में उत्पन्न होती हुई, मनुष्य में उत्पन्न हुई और यहाँ वह आत्मचेतना से युक्त हो गयी। किन्तु यह इच्छा हमेशा अतृप्त रहती है, व्यक्ति इसी क्रूर इच्छा का दास है।"[47] इस तरह शापेनहावर ने इच्छा की अलग-अलग मात्रा के आधार पर संसार में मौजूद सभी वस्तुओं को सुन्दर मानते हैं| जिस वस्तु में इच्छा अधिक व्यक्त हुई वह अधिक सुन्दर जिसमें कम व्यक्त हुई वह कम। फ्रेडरिक नीत्शे कट्टर नास्तिक थे। उन्होंने वस्तु में वास्तविक सौन्दर्य को स्वीकार नहीं किया| वे कहते हैं कि कलाकार वस्तु को जब तक अपनी आत्माभिव्यक्ति के अनुसार रूप नहीं दे देता तब तक वह सुन्दर नहीं होती। इसी तरह क्रोचे भी सौन्दर्य को आतंरिक मानते हैं। वे वस्तु के बाह्य अस्तित्व को नहीं मानते हैं। वे उसे अभिव्यक्ति से जोड़कर देखते हैं। वे पूर्ण अभिव्यक्ति को पूर्ण

सौन्दर्य और अपूर्ण अभिव्यक्ति को कुरूप की श्रेणी में रखते हैं। इसी प्रकार फ्रायड ने सौन्दर्य का सम्बन्ध काम चेतना से जोड़कर देखा है।

रूसी सौन्दर्य चिंतन अपने स्वरूप और मान्यताओं में लोकतान्त्रिक है। यहाँ सौन्दर्य का समाजशास्त्रीय पद्धति से अध्ययन हुआ है। इससे जुड़े हुए विद्वानों में- बेलिंसिकी, हर्जेन, चर्निशेवस्की, प्लैखनोव, लेनिन, और स्टालिन आदि प्रमुख हैं। "रूसी सौंदर्यशास्त्र की मूल विशेषता यह थी कि उसे अमूर्त तत्वों का शास्त्र न मानकर मूर्त तत्वों का शास्त्र माना गया। सौन्दर्य और कला जीवन के लिए है। जीवन में सहायक होना, निर्देश देना, समसामयिक जीवन की आलोचना करना तथा रूचि के विकास की दिशा निर्देशित करना-कला के ये मूल प्रयोजन हैं।"[48] इस तरह रूसी भौतिकवादी चिंतन सौन्दर्य एवं कला को मानव जीवन के ऐतिहासिक सन्दर्भों में देखता है। मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र का सम्बन्ध इसी चिंतन पद्धति से सम्बंधित है। इसमें सौन्दर्य का विवेचन-विश्लेषण; मनुष्य के सौन्दर्य-चेतना के निर्माण की ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। इस दृष्टिकोण के चिन्तक मनुष्य की चेतना और अनुभूति को उसके आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थियों से सम्बंधित मानते हैं। मार्क्स का कथन है कि- "अनुभूति, चेतना या कल्पना को सत्यतम घोषित करने का अर्थ है ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करना क्योंकि उनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। उनके अनुसार चेतना जीवन को निर्धारित नहीं करती; बल्कि सामाजिक परिस्थितियाँ चेतना को निर्धारित करती हैं।"[49] इस तरह मार्क्सवाद में व्यक्ति के चेतना का निर्धारक आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों को माना गया है। व्यक्ति के सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रियाओं का निर्माण भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति से जुड़ा हुआ है।

सुन्दरता के बारे में मार्क्स का कथन है कि-" "सुन्दर का अस्तित्व सिर्फ चेतना के लिए होता है।," "इसलिए सौन्दर्य वस्तुओं और प्रकृति का गुण होने के बावजूद मनुष्य का ही गुण है।" लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि 'सौन्दर्यतत्व' शुद्ध रूप से आत्मगत है।"[50] इस तरह यहाँ मार्क्स ने सौन्दर्य को वस्तु और प्रकृति का गुण माना है| जिसकी सत्ता न शुद्ध रूप से वस्तुगत है न आत्मगत। वह वस्तुगत और आत्मगत दोनों है| वह किसी व्यक्ति के सौन्दर्यबोध को उसका व्यक्तिगत बोध नहीं मानते हैं। इस बोध के विकास में व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं| इन परिस्थितियों के कारण व्यक्ति के ज्ञान और संवेदनशीलता में उत्तरोतर विकास होता है। जिससे उसके सौन्दर्यबोध का निर्माण होता रहता है। उसके सौन्दर्य के प्रति ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति विकसित होती रहती है। श्रम इस ग्रहणशीलता की प्रवृति को विकसित करने में एक महत्वपूर्ण कारक है। इसीलिए मार्क्सवादी चिंतन में सौन्दर्य को श्रम की दृष्टि से देखा गया है।

इस तरह पाश्चात्य सौन्दर्य चिंतन की एक लम्बी परम्परा रही है। इसके विवेचन-विश्लेषण के क्रम में एस.टी.नरसिन्हाचारी ने महत्वपूर्ण टिप्पणी किया है। उन्होंने पाश्चात्य सौन्दर्य चिंतन को सार रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि- "पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र के तीन आधार स्तम्भ हैं: वस्तु, सौन्दर्य और चेतना। वस्तु-रूप नैसर्गिक या मानव-निर्मित है। वही सौन्दर्य का आधार है। सौन्दर्य अध्यात्मिक, मानसिक या ऐन्द्रिय रूपगत है। यदि सृष्टिगत है तो अनुकृति या कल्पना के द्वारा मानव निर्मित कलाकृति में आ जाता है।... सौन्दर्य की अनुभूति में व्यक्ति मन की चेतना का महत्वपूर्ण योग होता है। उसकी सजीवता और क्रियाशीलता में ही अनुभूति संभव है। अन्यथा मन के लिए वस्तुज्ञान को छोड़कर इसके सौन्दर्य का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।"[51] स्पष्ट है पाश्चत्य सौन्दर्य-चिंतन की परंपरा से सौन्दर्य के तीन मूलभूत तत्व- वस्तु, सौन्दर्य और चेतना सामने आये|

इस तरह उपर्युक्त भारतीय एवं पाश्चात्य सौन्दर्य चिंतन के विवेचन-विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि- सौन्दर्य न तो कोई मूर्त रूप है और न ही निराकार ही। इसके विविध रूपों एवं पक्षों को दार्शनिकों और चिंतकों ने विभिन्न तरह से बताने तथा समझाने की कोशिश की है। "कोई सम्मात्रा, सुव्यवस्था, विविधता, एकरूपता, औचित्य, जटिलता, संगति प्रमाण बद्धता, व्यंजना, स्पष्टता, मसृणता, कोमलता या वर्ण प्रदीप्ति में से किसी को सुन्दरता का कारण बताता है, कोई सुन्दर को वस्तुनिष्ठ और कोई व्यक्तिनिष्ठ मानता है, कोई उसे नैतिकता और मंगल से सम्बंधित मानता है तथा कोई उपयोगिता में ही सौन्दर्य मानता है। इटली के दार्शनिक वेनोदेत्ते क्रोचे अन्विक्षामूलक सामान्यावलम्बी ज्ञान के विरुद्ध संकल्पात्मक अनुभूति या 'इण्ट्वीशन' को ही सौन्दर्य का मूल स्रोत मानकर अभिव्यक्तिमात्र को पूर्ण एवं सुन्दर मानते हैं। और विषयवस्तु को गौण या प्रायः महत्वहीन घोषित करते हैं।"[52]

इस प्रकार सौन्दर्य को देखने समझने की अध्यात्मिक, उपयोगितावादी, भौतिकवादी, अनुभववादी और बुद्धिवादी जैसे विभिन्न दृष्टिकोण मौजूद रहे हैं। सौन्दर्यबोध के विकास के कारण आज वीरान जंगल, पहाड़, खंडहर, खाइयाँ इत्यादि के अनगढ़ता और भव्यता को उसके सौन्दर्यात्मक पक्ष से जोड़कर देखा जाता है। आंधी-तूफ़ान, भूकंप-चक्रवात और ज्वालामुखी विस्फोट आदि प्रकृति के आक्रामक और विध्वंसात्मक रूप में भी सौन्दर्यात्मक पहलूओं को देखा और महसूस किया जाता है। सम्पूर्ण मानव जीवन में ही सौन्दर्य की व्याप्ति को देखते हुए एन. जी. चेरनिशेवस्की ने कहा कि- "मानव के लिए सुंदर वही वस्तु है जिसमें वह जीवन को, जिस रूप में कि वह उसे समझता है, देखता है। सुंदर वह वस्तु होती है जो उसे जीवन

की याद दिलाती है।"[53] इस प्रकार सौंदर्य को जीवन और जीवन को सौंदर्य कहना अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होता।

अतः यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य अमूर्त अनूभूति है| यह ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ग्राह्य है| जिसका व्यक्ति के अंतःकरण पर आनंदायक प्रभाव पड़ता है| इसमें क्षण-क्षण नूतन होने, आकर्षित और मोहाविष्ट करने का गुण होता है| यह मानव चेतना से सम्बंधित है| इसकी सत्ता वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ दोनों होती है| संसार में मौजूद वस्तुओं और प्राणियों के रूपाकार और जीवन के विविध क्रिया-व्यापार में मात्रा भेद के साथ निहित है| सौन्दर्य केवल मनुष्य के बाह्य रूपाकार में ही निहित नहीं होता बल्कि कर्मशीलता और हृदय जगत में मौजूद प्रेम, करुणा तथा मानवता की भावना में भी होता है| समाज के विकास के लिए सकारात्मक मूल्यों, मान्यताओं और मस्तिष्क में जन्म लेने वाले कल्याणकारी विचारों में होता है| इसका सम्बन्ध नैतिकता से है अतः यह कल्याणकारी है| सम्मात्रा, सुव्यवस्था, सामंजस्यता, विविधता, एकरूपता, औचित्य, जटिलता, संगति प्रमाण बद्धता, व्यंजना, स्पष्टता, मसृणता, कोमलता या वर्ण प्रदीप्ति आदि सब में सौन्दर्य होता है परन्तु किसी एक में सदैव अनिवार्य नहीं है|

सौन्दर्य को प्रयोजन निरपेक्ष और प्रयोजन सापेक्ष जैसे दो वर्गों में बांटा जा सकता है| प्राकृतिक सौन्दर्य प्रयोजन निरपेक्ष सौन्दर्य के अंतर्गत आता है, जिसकी वस्तुगत सत्ता होती है| प्रयोजन सापेक्ष सौन्दर्य के अंतर्गत वस्तुओं के उपयोग और उद्देश्य के ज्ञान से होने वाला सौन्दर्यबोध और रूपाकृति बोध से होने वाला आनंदानुभूति शामिल है| प्रयोजन सापेक्ष सौन्दर्य समाज के लिए ज्यादा हितकर होता

है| मनुष्य समाज से सम्बंधित समस्त कलाएँ, ज्ञान-विज्ञान, मूल्य और मान्यताएँ इसी में शामिल हैं|

1.2.3 - श्रम और सौन्दर्य में सम्बन्ध :-

मानव सभ्यता के विकास का रहस्य श्रम में निहित है। श्रम एक महत्वपूर्ण मूल्य है। यह सर्वोच्च मूल्य जिजीविषा का पोषण करता हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'अशोक के फूल' शीर्षक निबंध में मनुष्य के जिजीविषा की दुर्दमता का जिक्र किया है। जो लाखों, हजारों वर्षों से चली आ रही है। वे जाति, धर्म और संस्कृति सब में मिलावट देखते हैं। उनकी दृष्टि में केवल मनुष्य की जिजीविषा ही 'विशुद्ध' बची है जो सदियों से गंगा की तरह अबाधित, अनाहत बहती जलधारा में सब कुछ अपने में मिला लेने के बाद भी शुद्ध है।' श्रम के सन्दर्भ में अजय तिवारी ने लिखा है कि- "श्रम मानव-जीवन का सबसे बड़ा स्रोत है और मानव-जीवन व्यापक अर्थों में जिजीविषा-सृष्टि का सबसे बड़ा मूल्य है। इसलिए श्रम और सौन्दर्य मूल्यों को एक दूसरे से जोड़कर देखने की जरूरत है।"[54] अतः श्रम को सौन्दर्यात्मक मूल्यों और मान्यताओं तथा आदर्शों के साथ जोड़कर देखने से मानवता का पोषण एवं पल्लवन होगा।

श्रम और सौन्दर्य के सम्बन्ध में मैक्सिम गोर्की का कथन है कि- "संसार में जो कुछ सुन्दर तथा श्रेष्ठ है वह सब मानव-श्रम की उपज है। मनुष्य का श्रम उसे सुन्दर तथा श्रेष्ठ बनाता है।"[55] इस प्रकार श्रम मानव-समाज के विकास का आदिम स्रोत है। परम्पराओं, सामाजिक मान्यताओं, ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं, गीत-संगीत, गायन-वादन, भाषा और कला-संस्कृतियों आदि का विकास श्रम से ही निश्चित है। मनुष्य के सौन्दर्यात्मक चेतना का विकास श्रम के कारण ही संभव हुआ है| इसी से व्यक्ति की चेतना व्यक्तिगत से सामाजिक होती है|

श्रम और कला अन्योन्याश्रित हैं। कला का जन्म श्रम से ही हुआ है। इनकी प्राचीनता और कला के विकास के सम्बन्ध में प्लेखानेव ने अपनी पुस्तक 'अनएड्रेस्ड लेटर्स' में लिखा है कि- "श्रम कला से प्राचीन है...मनुष्य पहले वस्तुओं और प्राकृतिक तथ्यों को उपयोग की दृष्टि से देखता है और फिर उसके बाद ही वह उन्हें सौन्दर्य की दृष्टि से देख पाता है।"[56] इस प्रकार यह कहना उचित ही है कि मनुष्य की सौन्दर्य दृष्टि उसके जीवन की आधारभूत जरूरतें पूरी होने बाद ही बनी। यह एक लम्बी प्रक्रिया का प्रतिफल है। आज हम यह कह सकते हैं कि दुनिया के प्रत्येक तत्व में सौन्दर्य की सत्ता व्याप्त है लेकिन यह बोध मानव सभ्यता के आरंभिक काल में नहीं रही होगी।

श्रम के कारण ही मनुष्य ऐतिहासिक रूप से बहुत सी कलात्मक योग्यताओं से संपन्न हुआ है। मधुछंदा ने लिखा है कि- "मनुष्य की कलात्मक योग्यताएँ, विश्व को सौन्दर्यात्मक ढंग से समझने की क्षमता, उसके सौन्दर्य को समझने, कलाकृतियों का सृजन करने की उसकी योग्यता मानव-समाज के दीर्घकालीन विकास के फल तथा मनुष्य के श्रम की उपज है।"[57]

श्रमशीलता व्यक्ति के बाह्य और आतंरिक सौन्दर्य को निखारती है। एक श्रमशील व्यक्ति समाज के लिए हितकर होता है। उसके कर्मशीलता की आभा समाज में सकारात्मक उर्जा का संचार करती है। श्रमशीलता सौन्दर्य-सर्जन और सौन्दर्य-वर्धन दोनों का कार्य करती है। आज सौन्दर्य को ब्यूटीपार्लरों में ढूँढने की संस्कृति बढ़ रही है। इस सन्दर्भ में 'तीरे-तीरे नर्मदा' नामक अपने संस्मरण में अमृतलाल बेगड़ का यह कथन उल्लेखनीय है कि- "सौन्दर्य का सच्चा देवता मदन नहीं, श्रम है। सौन्दर्य का मोती ब्यूटीपार्लर की कोठरी में नहीं, श्रम की सीप में उत्पन्न होता है। श्रम सौन्दर्य और स्वास्थ्य दोनों की नींव है।"[58] इस तरह श्रम न केवल मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्त्वपूर्ण है बल्कि सौन्दर्य के लिए भी आवश्यक है|

दरअसल, श्रम करने की अवस्थाओं में परिवर्तन के साथ नए मूल्यों का विकास होता है है। इसलिए मानवीय कर्म और सौन्दर्य चेतना की परस्पर निर्भरता भी बढ़ती रहती है| "विकास के विभिन्न चरणों में मानव-चेतना और सौन्दर्य-मूल्यों का स्वरूप भिन्न होता है। उनका उच्चतर धरातलों पर पदार्पण होता है। चेतना के विकास का आकलन श्रम की अवस्थाओं द्वारा किया जा सकता है।"[59] इस प्रकार मूल्यों के स्वरुप निर्धारण में श्रम करने की अवस्थाओं का काफी योगदान होता है। इस प्रक्रिया में नए-नए मूल्यों का उद्भव होता रहता है।

1.2.4 - श्रम-सौन्दर्य का स्वरूप :

'श्रम-सौन्दर्य' शब्द नवीन सौन्दर्यबोध से युक्त आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाला शब्द है। इसका निर्माण कारखानों और कार्यालयों में काम करते, सड़क पर रिक्शा और गाड़ियाँ चलाते, गिट्टियां बिछाते, पत्थर तोड़ते, रेहड़ी-पटरी पर दुकान लगाते, तालाबों, झीलों, नदियों और समुद्रों में मछलियाँ पकड़ते और खेतों में काम करते किसान, मजदूर-मजदूरनियों आदि के जीवन-संघर्ष से हुआ है। इसमें सौन्दर्य का उद्घाटन घास-फूस के घरों में रहने वाले धुल-मिट्टी में सने किसान-मजदूर और उनके बच्चों के जीवन में किया ही जाता है| उछल-कूद करते मेमनों, स्तनपान कराती मादा सूअरों तथा श्रम करते बैल, गदहा और खच्चर इत्यादि सहचर पशुओं इत्यादि के जीवन में भी सौन्दर्य को चित्रित किया जाता है।

इस आधुनिक सौन्दर्यबोध में मजदूर, किसान वर्ग के साथ ही निम्नमध्यवर्ग भी शामिल है। जिनके जीवन में सादगी है, विकट कष्ट को भी झेलने और उसका सामना करने की प्रेरणा है। कम कमाकर भी संतोष और धैर्य से जीने का प्रयत्न है। अनियंत्रित इच्छा और महत्वाकांक्षा का अभाव है। अकेलापन, बनावटीपन और फरेबीपन नहीं

है। उसकी हीनता में भी महानता छिपी है। उजड़े जीवन में भी खुश रहने की मस्ती है। अपने श्रम से शहरों, नगरों और महानगरों के निर्माण करने की ताकत है। सामाजिक व्यवस्था को नई दिशा देने का सामर्थ्य है। सभ्यता और संस्कृति को आगे बढ़ाने की शक्ति है। इस प्रकार उसके श्रम में छिपी शक्ति जो आदि से अब तक मानवता को उच्च से उच्चतर बनाया है, नवीन सौन्दर्यबोध विकसित करने की आधार रखती है। प्रगतिशील कविता इनके श्रम-सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है।

1.3 - सौन्दर्य एवं प्रगतिशीलता के अन्तःसम्बध :-

सौन्दर्य और प्रगतिशीलता देखने में अलग-अलग भले ही लग रहें हों लेकिन इनका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन दोनों का सम्बन्ध मनुष्य और समाज से है। जीवन-जगत में मौजूद सौन्दर्य को प्रगतिशील दृष्टि युगानुरूप नए-नए सन्दर्भ में समझने और नए पक्ष को अभिव्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। रचनाकार समाज की वास्तविकता का पुनर्सृजन करता है| उसे अपनी प्रगतिशील दृष्टिकोण से नया सौन्दर्यात्मक आयाम देता है| जिस सौन्दर्य-चेतना से वह सृजन करता है वह जीवन मूल्यों को धारण करने वाली प्रगतिशील दृष्टि होती है।

युगबोध बदलने के साथ नए विचारों के आगमन एवं पुराने के टकराव से जीवन में संवेदनात्मक जटिलता पैदा होती है। जिससे नयी शिल्पों का विकास होता है। मनुष्य के मूल भाव एवं मनोविकार वही रहते हैं लेकिन समय के साथ जीवन के बढ़ते विविध आयामों से उपजे संवेदनात्मक जटिलताओं के कारण अभिव्यक्ति का तरीका बदलता रहता है। उदाहरण के लिए कबीरदास का एक दोहा –

"मालिन आवत देखि करि, कलियां करीं पुकार।

फूले फूले चुन लिए, काल्हि हमारी बार।"[60]

इन पंक्तियों की आध्यात्मिक व्याख्या में न जाते हुए यदि देखें तो इनमें कलियों के अपने चुने जाने को लेकर दुख का अहसास व्यक्त हुआ है। अगले दिन चुन लिए जाने के भय के कारण उनका आज का दिन मृत्यु की चिंता में बीतता प्रतीत होता है। जिससे उनके जीवन की खुशियां, उत्साह, उमंग सब गायब हो गया है। हर बची हुई कली मानो मृत्यु के गाल में जाने के लिए अपनी मानसिक तैयारी में लगी हुई हो। यही विषयवस्तु आधुनिक काल में प्रगतिशील कवि त्रिलोचन के यहां भी मौजूद है लेकिन अभिव्यक्ति का ढंग अलग है-

" हमने देखा कि फूल हंसते थे

डाल पर झूल-झूल हंसते थे

पूछा कल की भी कुछ खबर है क्या-

बात सब भूल-भूल हंसते थे"[61]

इस कविता की अंतिम दो पंक्तियां ध्यान देने योग्य हैं। अंतिम पंक्ति- 'बात सब भूल भूल हंसते थे' पंक्ति अर्थ के स्तर पर मध्यकालीन भावबोध से आधुनिक भावबोध की यात्रा कराती है। फूलों का डाल पर हंसना और हवा से अठखेलियां कर खुश होना सामान्य बात हो सकती है परंतु कल की खबर पूछे जाने पर (मृत्यु के प्रश्न को सुनकर भी) वे अपना हंसना बंद नहीं करते मानो सब बातें पहले से जानते हों और उन्हें भूल हंसने लगते हैं। गोबिंद प्रसाद ने इस आधुनिक संवेदनात्मक विकास का उल्लेख किया है। त्रिलोचन शास्त्री के काव्य-दृष्टि को लक्षित करते हुए उन्होंने लिखा है कि- "...त्रिलोचन में आज का उल्लास इतना सर्वग्राही है कि वे (फूल) आने वाले कल की छाया से मुक्त सब कुछ से बेखबर आज डाल पर झूल-झूल और भूल-भूल हंसते हैं। फूल तो वही हैं- मनोभूमियां अलग-अलग हैं। फूल वही हैं दृष्टि अलग है। कवि बदल गया है, युग बदल गया है। युग-बोध के बदलने से उन्हीं फूलों में नई काव्य-स्थितियों

का समावेश होकर नई बात पैदा हो गई है। देखे हुए में कुछ नया दिखाना, नई बात पैदा करना, नया रंग (फूलों में) भरना यही काव्य-दृष्टि का विकास है।"[62] इस तरह बदलते हुए युगबोध से सौन्दर्यबोध में भी बदलाव हो जाता है। प्रगतिशीलता सौन्दर्य को युगानुरूप नया रूप देती है। प्रगतिशीलता के कारण ही काव्य-दृष्टि में बदलाव हो सका है।

सौन्दर्य और प्रगतिशीलता के सम्बन्ध को प्रकृति वर्णन में भी देखा जा सकता है| हिंदी साहित्य में प्रकृति आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अलग-अलग भावभूमियों में वर्णित है। आदिकाल में यह उद्दीपन रूप, रहस्यपूर्ण भावनाओं के अभिव्यक्ति का माध्यम और राजाओं के गुणगान हेतु उपमान के रूप में मौजूद है। वहीं भक्तिकाल में यह मानव-जीवन से गहराई से जुड़ी हुई है, उसके सुख-दुःख में शामिल है। रीतिकल में प्रकृति भी श्रृंगारिक भावों से ओतप्रोत है। प्रमुखतया नायक-नायिकाओं के सौंदर्य वर्धन करने और राजाओं के वीरता, ऐश्वर्य को दिखाने हेतु सहयोगी भूमिका में है।

आधुनिक काल में आकर प्रकृति वर्णन की दृष्टि ही बदल गयी, अब वह नए रूप में उपस्थित हुई। प्रगतिशील कविता में प्रकृति के आलंबन रूप का चित्रण है| समाज में हर्ष-उल्लास और उमंग को वृद्धि करने वाली तथा स्वस्थ प्रेरणा देने वाली सहचर के रूप में चित्रित है| प्रकृति के अधिकांश उपादान कविता में अपनी विशेषताओं के साथ आ गए हैं। इनमें- धूप, काई, तालाब, मेमना, शरत का प्रसन्न ताल मौजूद हैं। नदी है, चिड़िया है, पेड़-पौधे और घमौनी करती गाय है। लहराते हुए गेहूं, जौ, धान, मटर और चना है| केन नदी और वन-लता कुंजें हैं। कई प्रकार के फूलों के सुगंध हैं। पर्वत, सागर, तालाब, समुद्र की भव्यता और विराटता है। ईख, नीम,

आम, महुआ, कदंब, पलास आदि के पेड़-पौधे हैं। कुत्ते, बिल्ली, चूहे, नेवला, गाय, भैंस, मेमना और मादा सूअर आदि मनुष्येतर पशु हैं। अठखेलियां करती हुई अल्हड़ बसंती हवा भी मौजूद है। पका हुआ कटहल, सिंके हुए भुट्टे और लिचियों के बाग अपनी खूबसूरती के साथ मौजूद है। सुबह की सौन्दर्ययुक्त उषा है| ढलता सूरज तथा एक पीली शाम भी है। इस प्रकार प्रगतिशील कवियों की कविताओं में प्रकृति; अपनी विविधता के साथ मौजूद है।

केदारनाथ अग्रवाल की एक कविता है-

"पेड़ नहीं
पृथ्वी के वंशज हैं,
फूल लिये,
फल लिये
मानव के अग्रज हैं।"[63]

कवि ने इस कविता में लोक में प्रचलित पेड़ों के साथ रागात्मक सम्बन्ध को अभिव्यक्त किया है| यहां ध्यान देने योग्य है कि पेड़ों का चित्रण मानव के अग्रज के रूप में हुआ है| मानव से पहले धरती पर इनका अस्तित्व स्वीकार किया गया है| इसलिए इनसे बंधुत्व का भाव जुड़ा है। ये फल, फूल से खुशियाँ देते हैं| मानव जीवन को स्थाईत्व देने वाले ये कालजयी हैं| ये प्राकृतिक आपदाओं से हमारी सुरक्षा करते हैं| प्रकृति के प्रति यह रागात्मक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदिकालीन और

मध्यकालीन साहित्य में नहीं मिलती| यह आधुनिक प्रगतिशील सौन्दर्य दृष्टि का ही परिणाम है|

समकालीन कविता में यह सौन्दर्य दृष्टि बदली हुई है| यहाँ विरूपित होती प्रकृति और विलुप्त होते पशु-पक्षी की चिंता चित्रित है। इसमें धारणीय विकास को महत्व दिया गया है। इस सन्दर्भ में बद्रीनारायण की कविता का यह अंश द्रष्टव्य है -

" कितना तेजी से

कविताओं में चिड़ियां गायब होती गई हैं

कितनी तेजी से गायब होते गए हैं

कविताओं से पेड़

मैं हतप्रभ हूं देखकर

कि कितनी तेजी से गायब हुए हैं कविताओं से

पोखर और तालाब..."[64]

जाहिर है प्रकृति के प्रति यह दृष्टिकोण आधुनिक है। आज पूंजीवाद, निजीकरण, बाजारवाद और शहरीकरण के कारण पूरा मानव समाज विकास की दौड़ में शामिल हो गया है। जैव-विविधता संरक्षण पर आई एक रिपोर्ट के अनुसार यह आज का दौर पृथ्वी से जीव-जंतुओं के सबसे तेजी से होते विलोपन का छठवां दौर है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण तेजी से पिघलते ग्लेशियर, बढ़ता दावानल, भूमि स्खलन, वन कटाव आदि से प्रकृति पर संकट के बादल गहरा गए हैं।

आधुनिक काल में नवीन सौन्दर्यबोध का विकास हुआ। यह प्रगतिशील कवियों की कविताओं में देखा जा सकता है। इस दृष्टि से नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन और मुक्तिबोध इत्यादि रचनाकारों की कविताएँ महत्वपूर्ण हैं। जैसे नागार्जुन के 'खुरदरे पैर', 'घिन तो नहीं आती है ?', 'पसीने का गुणधर्म' इत्यादि कविताएँ| शमशेर बहादुर सिंह की 'बैल', 'एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता' इत्यादि कविताएँ| केदारनाथ अग्रवाल की 'छोटे हाथ', 'श्रम', 'कानपुर', 'मजदूर का जन्म', 'जो शिलाएं तोड़ते हैं', 'धरती', 'नया मुक्त मानव युगांतर करेगा' आदि कविताएँ और मुक्तिबोध की 'इसी बैलगाड़ी को', पीत ढलती हुई साँझ', 'सूखे-कठोर नंगे पहाड़' जैसी कविताएँ तथा त्रिलोचन की 'नगई महरा', 'भोरई केवट' आदि उल्लेखनीय हैं|

सौन्दर्य के प्रति दृष्टि को लेकर जो अब तक चली आ रही परम्परा थी प्रगतिशील कविता में उसका विस्तार हुआ। 'साहित्य का उद्देश्य' नामक अपने निबंध में प्रेमचंद ने जिस नए आधुनिक सौन्दर्यबोध को विकसित और धारण करने तथा साहित्य में स्थान देने की बात की वह अपने मान्यता एवं स्वरूप में नया था। उन्होंने रचनाकारों के लिए लिखा- "अगर उसकी सौन्दर्य देखने वाली दृष्टि में विस्तृति आ जाय तो वह देखेगा कि रँगे होंठों और कपोलों की आड़ में अगर रूप गर्व और निष्ठुरता छिपी है, तो इन मुरझाये हुए होंठों और कुम्हलाये गालों के आंसुओं में त्याग, श्रद्धा और कष्ट सहिष्णुता है। हाँ, उसमें नफ़ासत नहीं, दिखावा नहीं, सुकुमारता नहीं।"[65] यहाँ प्रेमचंद ने कलाकारों से नवीन सौन्दर्यबोध को विकसित करने और उसके अनुसार साहित्य रचने का आह्वाहन करते है| इस प्रकार श्रमजीवी समाज जो अब तक अपने जीवन-संघर्षों में व्याप्त सौंदर्य के साथ अनुपस्थित था, उसका कविता में

आना प्रगतिशील सौन्दर्य दृष्टि का द्योतक है। आदिकाल से लेकर छायावाद तक इस संघर्षशील और मेहनतकश समाज की उपस्थिति नाम मात्र की दर्ज हुई है। इस वर्ग का वर्णन जितनी गरिमा और भव्यता के साथ प्रगतिवादी कवियों ने किया वह अन्यत्र दुर्लभ है। अब तक मौजूद सौन्दर्य को नए सन्दर्भ में नए-नए आयामों में देखना, समझना, नए मूल्य के रूप में ढालना और प्रतिष्ठित करना प्रगतिशील सौन्दर्य दृष्टि का ही उदहारण है। इस नए सौन्दर्य बोध से उस दौर के लगभग सभी कवियों/रचनकारों ने रचनाएँ कीं। उदाहरणस्वरूप नागार्जुन की कविता 'खुरदुरे पैर' का एक अंश द्रष्टव्य है-

"खुब गए
दूधिया निगाहों में
फटी बिवाइयों वाले खुरदुरे पैर
धँस गए
कुसुम-कोमल मन में
गुट्ठल घट्ठों वाले कुलिश-कठोर पैर"[66]

यह नवीन सौन्दर्यबोध से सृजित अभूतपूर्व कविता है| हिंदी साहित्य में नखशिख वर्णन की परंपरा रही है लेकिन खुरदुरे पैर में सौन्दर्य-दर्शन अभूतपूर्व है। फटे बिवाइयों में सौन्दर्य दर्शन, एक नया मानदंड स्थापित करता है।

प्रगतिशील कवियों की इस नवीन सौन्दर्य चेतना और दृष्टिकोण के महत्व को रेखांकित करते हुए दिनकर ने लिखा है कि–"कवि जगत निर्माता है, वह यह नया मूल्य भी निर्मित कर सकता है कि देवता मंदिरों, राजप्रासादों और तहखानों में नहीं हैं; देवता कहीं सड़कों पर मिट्टी तोड़ रहे हैं, देवता मिलेंगे खेतों में, खलिहानों में।"[67] इस तरह प्रगतिशील कवियों ने नवीन सौन्दर्य बोध का उद्घाटन किया|

प्रगतिशीलता दृष्टा को सौंदर्य के नैतिक मूल्यों से जोड़ती है। इसी के कारण दृष्टा सौंदर्य को नैतिक मूल्यों से जोड़ पाता है जिससे सौंदर्य कल्याणकारी बन पाता है। सत्य ही सुंदर है और जो सुंदर है; वह कल्याणकारी है, शिवत्व से परिपूर्ण है। यह दृष्टि प्रगतिशीलता के कारण आती है। सौंदर्य का जो रूप समाज के लिए कल्याणकारी, उपयोगी और स्वास्थ्यवर्धक नहीं है वह निरर्थक है। हम विभिन्न कलाओं के माध्यम से वैचारिक धरातल पर अपने विचारों को ऐसा आकार प्रदान करते हैं जिससे समाज जहां तक अभी पहुंचा है उसको हम दो कदम और आगे बढ़ा सकें। इन्हीं कलात्मक, नैतिक और सामाजिक मूल्यों के आधार पर पूरी मनुष्य जाति भविष्य का चित्र बनाती रहती है। अजय तिवारी ने लिखा है समाज निरंतर अग्रगति करता रहता है। "जो कला इस अग्रगति में, नयी वास्तविकताओं से उत्पन्न नए मूल्यों की प्रतिष्ठा में सक्रिय सहायता नहीं करती, वह 'प्रतिगामी' होती है। यह 'प्रतिगमन' अतीत प्रेम में भी व्यक्त हो सकता है और यथास्थितिवाद में भी"[68] इस तरह कला मानवता के स्तर पर समाज के विकास का, उन्नति का खाका खींचती है। समस्त मनुष्य समाज को मनुष्यता के धरातल पर खड़ा करती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य और प्रगतिशीलता एक दूसरे से सकारात्मक मूल्यों, मान्यताओं, आदर्शों और परम्पराओं आदि से जुड़े हुए हैं। ये कला तथा अन्य ज्ञान-विज्ञान के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते हैं। इनके कारण ही मानव-समाज में अपने परम्पराओं, मूल्यों, मान्यताओं में उच्च से उच्चतर बनने की आकांक्षा अभिव्यक्त होती है| प्रगतिशील जीवन दृष्टि के द्वारा ही सौन्दर्य के नए आयामों को कला एवं साहित्य के माध्यम से प्रतिष्ठा मिलती है|

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

[1] प्रगतिशील साहित्य के मानदंड : रांगेय राघव, पृष्ठ 18, सरस्वती पुस्तक सदन मोतीकटरा आगरा,1954

[2] हिंदी की प्रगतिशील कविता : रणजीत, पृष्ठ 3, हिंदी साहित्य संसार प्रगतिशील प्रकाशन दिल्ली, संस्क.1971

[3] कम्युनिष्ट पार्टी का घोषणा पत्र : मार्क्स एंगेल्स, पीपुल्स पब्लिशिंग्स हाउस प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, द्वितीय संस्क 2013

[4] कहें केदार खरी-खरी : केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 10, साहित्य भंडार इलाहाबाद, संस्क. 2009

[5] New Oxford Advanced Learner's Dictionary, Chief Editor Sally Wehmeier, Colin Mclntosh, Editors Joanna Turnbull, page no 1206, oxford university press, seventh edition 2005

[6] वही, पृष्ठ 1207

[7] हिंदी की प्रगतिशील कविता, रणजीत, पृष्ठ 11, हिंदी साहित्य संसार प्रगतिशील प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1971

[8] हिंदी कविता की प्रगतिशील भूमिका, संपादक प्रभाकर श्रोत्रिय, पृष्ठ 40, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 1995

[9] मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य : रामविलास शर्मा, पृष्ठ 26, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2008

[10] जनवादी साहित्य विशेषांक (उत्तरार्ध), पृष्ठ 683, परिशिष्ट, अंक 20

[11] प्रगतिशील कविता के सौंदर्य मूल्य, अजय तिवारी, पृष्ठ 293, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1984

[12] रूप तरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि : रामविलास शर्मा, पृष्ठ 159, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 1990

[13] हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ नगेंद्र, पृष्ठ 622, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली

[14] वसुधा, सज्जाद जहीर, पृष्ठ 243, अक्टूबर-दिसंबर 2005 अंक

[15] भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता : शिवदान सिंह चौहान, संपादक अमरेंद्र त्रिपाठी, पृष्ठ 9, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड नई दिल्ली, 2013

[16] मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य : डॉ रामविलास शर्मा, पृष्ठ 30, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2008

[17] आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : नामवर सिंह, पृष्ठ 74, इलाहाबाद प्रकाशन, 2014

[18] प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड : रांगेय राघव, पृष्ठ 14, सरस्वती पुस्तक सदन मोती कटरा आगरा प्रकाशन, संस्करण 1954

[19] प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य मूल्य, अजय तिवारी, पृष्ठ 310, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, 1984

[20] हिंदी की प्रगतिशील कविता : लल्लन राय, पृष्ठ 97

[21] प्रगतिशील वसुधा पत्रिका : नामवर सिंह, पृष्ठ 127, अक्टूबर-दिसंबर 2005 अंक

[22] 'नया पथ'(जनवादी लेखक संघ की केन्द्रीय पत्रिका) : प्रगतिशील आन्दोलन के 75 साल, साहित्य, रंगकर्म, संगीत, सिनेमा, चित्रकला, मूर्तिकला और समाज विज्ञान पर केन्द्रित, संपादक मुरलीमनोहर प्रसाद सिंह,चंचल चौहान, पृष्ठ 11, जनवरी-जून : 2012 (संयुक्तांक)

[23] हिंदी शब्दकोश : डॉ. हरदेव बाहरी, पृष्ठ 781, राजपाल एन्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली, 2011

[24] New Oxford Advanced Learner's Dictionary, Chief Editor Sally Wehmeier, Colin McIntosh, Editors Joanna Turnbull, page no 531, oxford university press, seventh edition 2005

[25] श्रम-वस्तु शास्त्र : पुरुषोत्तम सर्राफ 'पुरु सन्यासी', पृष्ठ 2, विचार प्रकाशनालय 20/1 महर्षि देवेन्द्र रोड, कलकत्ता,1991

[26] https://in.ilearnlot.com/2019/07/labour-in-hindi.html

[27] https://in.ilearnlot.com/2019/07/labour-in-hindi.html

[28] श्रम का सौंदर्यशास्त्र और केदारनाथ अग्रवाल का काव्य : मधुछंदा, पृष्ठ 35, परिमल प्रकाशन, अल्लापुर इलाहबाद, संस्क 1992

[29] हिंदी साहित्य कोश भाग-1 (पारिभाषिक शब्दावली), प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा, संयोजक धर्मवीर भारती, रामस्वरूप चतुर्वेदी, रघुवंश, पृष्ठ 839, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी-1, द्वितीय संस्क. संवत् 2020

[30] वही, पृष्ठ 839

[31] सौन्दर्य चिंता : स्वरूप एवं समस्या : डॉ. विमल, पृष्ठ 11, साहित्य सदन कानपुर कैंट प्रकाशन, संस्क. 1991

[32] भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका : फतह सिंह, पृष्ठ क (पूर्वपीठिका), नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, संस्क.1967

[33] भारतीय सौन्दर्यबोध और तुलसीदास : रामविलास शर्मा, पृष्ठ.37, साहित्य अकादमी नई दिल्ली, 2001

[34] सौंदर्यशास्त्र की भारतीय परंपरा : राधावल्लभ त्रिपाठी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में आयोजित एक संगोष्ठी में प्रस्तुत लेख का अंश, वर्ष 2017

[35] हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह, पृष्ठ 65, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क. 2009 (तीसरी आवृति)

[36] वही, पृष्ठ 227

[37] अरघान : त्रिलोचन, चयन एवं संपादन विष्णुचंद्र शर्मा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2015, पृष्ठ 38

[38] https://www.rekhta.org/couplets/hazaaron-saal-nargis-apnii-be-nuurii-pe-rotii-hai-allama-iqbal-couplets?lang=hi

[39] https://www.rekhta.org/couplets/kaun-sii-jaa-hai-jahaan-jalva-e-maashuuq-nahiin-ameer-minai-couplets-3?lang=hi

[40] श्रेष्ठ निबंध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, संपादन रामचंद्र तिवारी, पृष्ठ 120, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, छठी आवृत्ति संस्करण 2005

[41] हिंदी साहित्य कोश भाग-1 (पारिभाषिक शब्दावली), प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा, संयोजक धर्मवीर भारती, रामस्वरूप चतुर्वेदी, रघुवंश, पृष्ठ 943, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी-1, द्वितीय संस्क. संवत् 2020

[42] कुछ विचार : प्रेमचंद, पृष्ठ 13, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, संस्क. 2013

[43] आलाप और अंतरंग : गोबिन्द प्रसाद, पृष्ठ 47, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क. 2011

[44] पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र सुकरात से बीसवीं शती तक : डॉ. चन्द्रकला माटा, पृष्ठ 5-6, एम. के. मौदगिल मैनेजर, मुद्रण एवं प्रकाशन विभाग, कुरुक्षेत्र विवि. कुरुक्षेत्र, 1993

[45] सौन्दर्य की पाश्चात्य परम्परा : नीलकांत, पृष्ठ 44, देशभूमि प्रकाशन 633 कर्नलगंज इलाहबाद, 1983

[46] पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र सुकरात से बीसवीं शती तक : डॉ. चन्द्रकला माटा, पृष्ठ 79, एम. के. मौदगिल मैनेजर, मुद्रण एवं प्रकाशन विभाग, कुरुक्षेत्र विवि. कुरुक्षेत्र,1993

[47] सौन्दर्य की पाश्चात्य परम्परा : नीलकांत, पृष्ठ 118, देशभूमि प्रकाशन 633 कर्नलगंज इलाहबाद, संस्क. 1983

[48] वही पृष्ठ 148

[49] वही, पृष्ठ 172

[50] कार्ल मार्क्स : कला और साहित्य चिंतन, संपादक नामवर सिंह, अनुवादक गोरख पाण्डेय, पृष्ठ 13, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क. 2018

[51] सौन्दर्य तत्व निरूपण, डॉ. एस. टी. नरसिंघाचारी, पृष्ठ 67, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क. 1977

[52] हिंदी साहित्य कोश भाग-1 (पारिभाषिक शब्दावली), प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा, संयोजक धर्मवीर भारती, रामस्वरूप चतुर्वेदी, रघुवंश, पृष्ठ 943, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी-1, दूसरा संस्करण संवत् 2020

[53] प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य : अजय तिवारी, पृष्ठ 34, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, आवृति संस्करण 2018

[54] प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य : अजय तिवारी, पृष्ठ 67, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली आवृति संस्करण 2018

[55] श्रम का सौंदर्यशास्त्र और केदारनाथ अग्रवाल का काव्य : मधुछंदा, पृष्ठ 19, परिमल प्रकाशन आल्लापुर इलाहबाद, संस्क. 1992

[56] कार्ल मार्क्स : कला और साहित्य चिंतन, संपादक नामवर सिंह, अनुवादक गोरख पाण्डेय, पृष्ठ 152, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली संस्क. 2018

[57] श्रम का सौंदर्यशास्त्र और केदारनाथ अग्रवाल का काव्य : मधुछंदा, पृष्ठ 15, परिमल प्रकाशन अल्लापुर इलाहबाद

[58] तीरे-तीरे नर्मदा : अमृतलाल बेगड़, पृष्ठ 193, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2018

[59] प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य : अजय तिवारी, पृष्ठ 67, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, आवृति संस्करण 2018

[60] कबीर ग्रंथावली, संपादक श्यामसुंदर दास, पृष्ठ 42, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क 2014

[61] आलाप और अंतरंग : गोबिन्द प्रसाद, पृष्ठ 120, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2011

[62] वही, पृष्ठ 123

[63] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 35, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[64] खुदाई में हिंसा : बद्रीनारायण, पृष्ठ 33, राजकमल प्रकाशन, 2010

[65] कुछ विचार : प्रेमचंद, पृष्ठ 18, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, संस्क 2013

[66] नागार्जुन रचनावली भाग-1, संपादन-संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 301, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2003

[67] प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य : अजय तिवारी, पृष्ठ 162, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, आवृति संस्करण 2018

[68] वही, पृष्ठ 134

दूसरा अध्याय

प्रगतिशील कवियों की काव्य-दृष्टि :

2.1 अंतर्वस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण

2.2 भाषा-शिल्प सम्बन्धी दृष्टिकोण

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद की शुरूआत सन् 1935-36 ई. के आसपास मानी जाती है। किसी भी युग या खास प्रवृत्ति की शुरुआत अचानक नहीं हो जाती, बल्कि उसमें देशकाल और परिस्थिति का भी योगदान होता है। प्रगतिवादी कविता की पृष्ठभूमि सन् 1917 ई. में रूसी क्रांति की सफलता से उपजे मूल्यों में खोजी जा सकती है। प्रगतिवादी साहित्य अपने चिंतन, मूल्यों, मान्यताओं एवं आदर्शों में प्रगतिशील है। साहित्य में प्रगतिशील जीवन-मूल्यों के व्याप्ति का अर्थ एक ऐसे साहित्य से है जिसमें व्यापक सामाजिक अंतर्विरोधों का उद्घाटन, श्रम और श्रमजीवी जन को महत्व, समाज के प्रगतिशील मूल्यों और मान्यताओं तथा प्रकृति को महत्व जैसी प्रवृत्तियाँ होती हैं। निश्चित रूप से ये विशेषताएँ साहित्य में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के शुरूआती युगों में भी किसी न किसी रूप में मौजूद रही हैं। प्रगतिशील साहित्य चिंतन अपनी सीमाओं के बावजूद अपने प्रभावों, मान्यताओं एवं उपलब्धियों की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है। यह समस्त लोकोत्तरवादी मान्यताओं और विश्वासों को नकारते हुए मनुष्य की चेतना की इहलौकिक व्याख्या और वर्णन करता है। इसमें मध्यकालीन सामंती काव्य-बोध की रूढ़ शास्त्रीय मान्यताओं को नकार कर आधुनिक सन्दर्भ में सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की गयी है।

1935-36 का दौर ऐतिहासिक रूप से विविध घटनाओं, कार्यक्रमों, विरोध-प्रदर्शनों और आन्दोलनों का था। मार्क्सवाद, समाजवाद और साम्यवाद की विचारधारा तेजी से प्रसारित हो रही थी। मजदूरों, किसानों और महिलाओं की शक्ति को महसूस किया जा रहा था। राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी सहभागिता बढ़ाने पर बल दिया जा रहा था। इस परिस्थिति का मूल्यांकन करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने

लिखा है कि- 'कांग्रेस द्वारा चलाये गए असहयोग आन्दोलन की असफलता के बाद बहुत से स्वतंत्रता प्रेमी कार्यकर्ताओं का गाँधीवादी रास्तों से विश्वास उठ गया। वे नए रास्ते तलाशने लगे। अधिकतर वामपंथी नेता यह बात समझते थे कि किसानों, मजदूरों और मजलूमों को संगठित किये बिना, उनका सामंत विरोधी संघर्ष चलाये बिना स्वाधीनता आन्दोलन में सफलता दूर की कौड़ी होगी।' इन सभी परिस्थितियों को देखते हुए प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों को यह महसूस हो रहा था कि अब सामंती व्यवस्था का पतन होने वाला है और आने वाला जमाना किसानों और मजदूरों का होने वाला है। सन् 1935-36 ई. का वर्ष साहित्य के लिए कई नयी घटनाओं का वर्ष साबित हुआ जैसे- प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना का प्रथम अधिवेशन और अखिल भारतीय किसान सभा का प्रथम अधिवेशन आदि। 'गोदान', 'कामायनी' और 'तोड़ती पत्थर' इत्यादि कालजयी कृतियों का सृजन भी इन्हीं वर्षों में हुआ। लल्लन राय ने अपनी पुस्तक 'हिंदी की प्रगतिशील कविता' में उस दौर में हुए बदलावों का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं 'इस समय तक आते-आते किसान मजदूर आन्दोलन; स्वतंत्रता आन्दोलन की सबसे मजबूत शक्ति बन चुके थे। कांग्रेस के अधिवेशनों में समाजवादी स्वर गूंजने लगे थे। शोषण, उत्पीड़न, पूँजीवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, जनक्रांति जैसे शब्द पूरे वातावरण में फैलकर लोगों की सोच-समझ को प्रभावित करना शुरू कर चुके थे।'

इस पूरे वातावरण का प्रभाव छायावादी रचनाकारों पर देखा जा सकता है। पन्त ने 'युगांत' और निराला ने 'तोड़ती पत्थर' जैसी रचना लिखकर; प्रसाद ने 'तितली' और प्रेमचंद ने 'गोदान' में होरी को नायकत्व देकर नए भावबोध और मूल्यबोध का परिचय दिया। उस दौर के लगभग सभी बड़े रचनाकारों की रचनाओं में आधुनिकताबोध लक्षित किया जा सकता है। इस तरह छायावादी रचनाकार ही प्रगतिशील कविता के अग्रदूत बने।

प्रेमचंद का प्रलेस (प्रगतिशील लेखक संघ) के अध्यक्ष पद से दिए गए भाषण का ऐतिहासिक महत्त्व था। जिसमें उन्होंने सौन्दर्य के मानदंड को बदलने का आह्वान किया। शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचंद गुप्त, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, अमृतराय, नामवर सिंह आदि के चिंतन से इस प्रगतिशील धारा का विकास एक समृद्धशाली परंपरा के रूप में हुआ। यह मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, रघुवीर सहाय, धूमिल, आलोक धन्वा, केदारनाथ सिंह, वेणुगोपाल, अरुण कमल, राजेश जोशी, ज्ञानेंद्रपति, उदय प्रकाश, कुमार विकल, मनमोहन, विजेंद्र आदि से होते हुए नये कवियों में कुमार अम्बुज, बद्रीनारायण, एकांत श्रीवास्तव, अष्टभुजा शुक्ल, देवी प्रसाद मिश्र और अनुज लुगुन इत्यादि तक विस्तृत है। यह परम्परा आज भी निरंतर चल रही है। चयनित कवियों में कुछ कवि प्रगतिवादी दौर से लेकर समकालीन कविता के समय में भी लेखन करते रहे हैं। जिसमें नागार्जुन-केदार-त्रिलोचन त्रयी महत्वपूर्ण है। शमशेर और मुक्तिबोध की पहचान तो नयी कविता के कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार चयनित कवियों के काव्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण का काफी महत्व है, क्योंकि ये कवि स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात नवीन वैचारिक बदलावों से न केवल प्रभावित थे बल्कि अपने आसपास हो रहे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को भी देख-परख रहे थे। किसी विषयवस्तु को देखने के दृष्टिकोण में ही कवि की जीवन-दृष्टि और काव्य-दृष्टि दोनों समाहित होती है। कविता को वस्तु-जगत की मानसिक प्रक्रिया बताते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है कि- “कविता तो वस्तु-जगत की मानसिक प्रक्रिया है, जो किसी अर्थशास्त्री के मन में हो

सकती है; किसी दार्शनिक के मन में हो सकती है, किसी रासायनिक के हृदय में हो सकती है; किसी प्राणीशास्त्री के हृदय में हो सकती है और समाजशास्त्री के मन में हो सकती है। वह गद्य में है तो कविता कहलाएगी। वह पद्य में है तो कविता कहलाएगी।"[1] यहाँ केदारनाथ अग्रवाल गद्य और पद्य का भेद मिटाते हुए कविता का स्थान मनुष्य के मन या हृदय को मानते हैं। कविता का मनुष्य के पेशे से कोई सम्बन्ध नहीं। मनुष्य के मनोविकारों को प्रभावित करने की उसकी शक्ति महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में चयनित प्रगतिशील कवियों के काव्य की विषयवस्तु और शिल्प सम्बन्धी चिंतन-मनन का विवेचन-विश्लेषण किया जायेगा।

2.1 - अंतर्वस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण :-

कोई भी अनुभूति किसी न किसी 'रूप' में सृजित होती है। अंतर्वस्तु और शिल्प के पीछे कवि का अपना दृष्टिकोण होता है इसलिए काव्य-दृष्टि पर विचार कविता के वस्तु-तत्व और रूप-तत्व की दृष्टि से किया जाता है। शिल्प और संवेदना मिलकर ही काव्य कृति की रचना करते हैं। कोई भी रचना वस्तु और रूप दोनों से मिलकर मुकम्मल होती है। साहित्य के इतिहास में ऐसा भी दौर रहा है जब केवल एक ही पक्ष की प्रधानता रही। वस्तु-तत्व अपने लिए रूप को लेकर ही आता है। हालाँकि कुछ रचनाकारों का मानना है कि कई बार उन्हें ही नहीं पता होता है कि उनके मन-मस्तिष्क में उमड़ने वाली भावानुभूति किस 'रूप' को धारण करेगी। कविता की अंतर्वस्तु का जुड़ाव कवि के मानसिक रचनालोक और बाह्य जगत में मौजूद गतिशील यथार्थ से होता है। इस सन्दर्भ में मुक्तिबोध ने लिखा है कि- "काव्य की वस्तु, अर्थात् मनस्तत्व (जिसके भीतर बाह्य जीवन जगत के बिम्ब और अंतर की प्रतिक्रियाएं दोनों का समावेश होता है।) कवि इनके भीतर की अंतर्तत्व व्यवस्था का ही एक भाग होते हैं।"[2] इस प्रकार कवि अपने परिवेश को आभ्यंतरीकरण कर अपने बोध से रचना करता है। उसके काव्य-चेतना का निर्माण भी इसी से होता है। जिस

कवि की अपने परिवेश में घटने वाली घटनाओं के प्रति संवेदनशीलता का स्तर जितना ही अधिक होता है, उसकी रचना उतनी ही प्रखर और संभावनाशील होती है। इसी से बहुत हद तक कवि के काव्य-दृष्टि का निर्धारण भी होता है।

मुक्तिबोध रचनाकार के जीवन और मानसिक-जगत की विशेषताओं से भलीभांति परिचित थे। इस सन्दर्भ में उनका कथन है कि- "यदि कलाकार का जीवन, उसका बाह्य और मानसिक जीवन, तुच्छ है अर्थात् नव-नवीन संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनाओं से हीन है यदि उसमें उदार सहानुभूतियों का विस्तार नहीं है, यदि उसमें नितांत आत्मबद्धता है, तो फिर ऐसा अंतर्जगत कलाभिव्यक्ति के लिए महत्त्वहीन है।"[3] यहाँ मुक्तिबोध ने कलाकार के अंतर्जगत की विशेषताओं का उल्लेख किया है। उन्होंने रचनाकार के जिस संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनशीलता का प्रश्न उठाया है वह महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार कवि में नितांत आत्मबद्ध चेतना का अभाव होता है। संवेदनात्मक ज्ञान से ज्ञानात्मक संवेदन के स्तर पर पहुँचकर ही एक कलाकर सर्जक बन पाता है। इसके लिए मुक्तिबोध ने कहा है कि मनुष्यता का सबसे बड़ा लक्षण खुद की घेरेबंदी को तोड़कर 'स्व' से ऊपर उठना होता है। कल्पना से युक्त होकर सहानुभूति के द्वारा दूसरे के मर्म में प्रवेश करना होता है। "इस प्रकार की व्यापक और उदार सहानुभूति-कल्पनाशील सहानुभूति- मानवता के पिछले इतिहास ने, साहित्य और धर्म ने, कला और संस्कृति ने, संस्कार रूप में हमें प्रदान की है। यही नहीं; बुद्धि स्वयं अनुभूत विशिष्टों का सामान्यीकरण करती हुई हमें जो ज्ञान प्रस्तुत करती है, उस ज्ञान में निबद्ध 'स्व' से ऊपर उठने, अपने से तटस्थ रहने, जो है उसे अनुमान के आधार पर और भी विस्तृत करने की प्रवृत्ति होती है। भाषा स्वयं सामान्यीकरणों से उत्पन्न है।"[4] मुक्तिबोध के इस कथन से साहित्यकार की संवेदनशीलता, सजगता और अध्ययनशीलता का पता चलता है।

चयनित प्रगतिशील कवि जिस दौर में सृजनात्मक कर्म के क्षेत्र में आए, वह एक ऐतिहासिक दौर था। भारतेंदु युग, द्विवेदी और छायावाद युग में जनता के जीवन-संघर्ष और सामाजिक यथार्थ को महत्त्व देने वाली धारा क्षीणकाय थी। यही प्रगतिवाद में प्रमुख बन गयी। छायावाद की एक प्रवृत्ति व्यक्तिवाद थी जिसे पूँजीवाद के कारण उत्पन्न हुई प्रवृत्ति कहा गया था। बाद में यह प्रमुख होने लगी। प्रगतिवाद के दौर में सामंती और औपिनिवेशिक शासन-तंत्र के शोषणमूलक चरित्र का विरोध प्रखर हो गया था। केदारनाथ अग्रवाल ने पूँजीवाद और सामंतवाद के सम्बन्ध को रेखांकित करते हुए लिखा है कि- "सामंतवाद ने पूँजीवाद के पहले व्यक्ति को बंधन में रख छोड़ा था। पूँजीवाद ने आकर व्यक्ति को स्वाधीनता दी, किन्तु उसे एक नयी जंजीर से जकड़ भी लिया। वास्तविक स्वाधीनता केवल किन्हीं थोड़े पूँजीपतियों को प्राप्त हो सकी, समस्त जनता फिर भी अशक्त और गुलाम रही। इस स्वाधीनता के युग में छायावाद आया और उसने व्यक्ति की स्वाधीनता का सहारा लेकर व्यक्तिवादी कविताएँ दी। जिस प्रकार पूंजीवाद में असंगतियाँ थीं। उसी प्रकार छायावाद में भी। पूंजीवाद ने अपहरण किया श्रमजीवियों का; अपने साथ युद्ध लाया।"[5] केदारनाथ अग्रवाल हिंदी साहित्य में आ रहे बदलावों के विषय में आगे यह भी लिखते हैं कि- 'इतना कुछ होने के बाद भी छायावाद ने अपना विस्तार मन के लोक में किया इससे निराशा बढ़ी, आंसू उमड़ने लगे ऐसे में यह एक ओर समाप्त हो रहा था जनता अब केंद्र में आ रही थी कविता एक नए युग में प्रवेश कर रही थी।'

इस काल में कई स्तरों पर परिवर्तन हो रहा था। यह बदलाव कविता के सौन्दर्य-मूल्य के साथ-साथ कविता के शिल्प तत्वों को लेकर भी हो रहा था। आम जनजीवन के सुख-दुःख, हर्ष-उल्लास, उत्सव-त्योहार आदि कविता के केंद्र में आ रहे थे। कविता के अंतर्वस्तु और शिल्प में परिवर्तन को लेकर बन रही नई पृष्ठभूमि को

केदारनाथ अग्रवाल के इस कथन से समझा जा सकता है- "...आज कविता के आवश्यक तत्व वे हैं; जो देश की समस्त प्रगतिशील शक्तियों के शोषित; शासित और विद्रोही जीवन के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलुओं से प्रगतिशील तरीके से संबंधित हैं और जो नवीन परिस्थितियों में जनसाधारण की नयी प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुए हैं। देश की प्रगतिशील शक्तियाँ हैं मजदूर-किसान जो संख्या में अधिक हैं, जिनके श्रम से ही यह दुनियां है, जो अब तक उठ खड़े हो रहे हैं, और जो अब शोषण से पिंड छुड़ाना चाह रहे हैं। वे ही प्रगतिशील हैं, जो साम्राज्यवाद और पूंजीवाद से लड़ रहे हैं; और उपनिवेशवाद को परास्त कर रहे हैं।"[6] इन परिस्थितियों में मार्क्सवादी और समाजवादी वैज्ञानिक चिंतन पद्धति का प्रभाव उस दौर के रचनाकारों पर पड़ना सहज ही था।

इस प्रकार उस दौर में एक शोषण विहीन और समतामूलक समाज की स्थापना का आदर्श कवियों के लिए नया मूल्य था। इसके लिए शोषण से पीड़ित मानवता की पक्षधरता एक प्रगतिशील कदम था। शोध हेतु चयनित सभी कवियों (शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध) पर मार्क्सवादी वैज्ञानिक चिंतन का प्रभाव है। किसी पर कम है तो किसी पर ज्यादा। राजनीतिक चेतना सबसे अधिक प्रखर रूप में मुक्तिबोध और नागार्जुन के यहाँ है। इनमें केदारनाथ अग्रवाल-नागार्जुन-त्रिलोचन प्रगतिशील त्रयी कवि के रूप में जाने जाते हैं।

मुक्तिबोध मध्यवर्गीय चेतना से युक्त जनपक्षधर कवि हैं। पूँजीवादी तंत्र के विनाश हेतु वे जनशक्ति में आस्था एवं विश्वास रखते हैं। वे जीवन के गतिशील एवं जटिल यथार्थ को अपनी कविता में व्यक्त करते हैं। उन्होंने मार्क्सवादी वैचारिकता को जरूर अपनाया लेकिन उसके अतिवाद को कभी स्वीकार नहीं किया। वे कला के

सिद्धांतों को राजनीतिक सिद्धांतों से संबंद्ध करके देखते हैं। उनका कथन है कि- "...एक कला सिद्धांत के पीछे एक विशेष जीवन-दृष्टि हुआ करती है, उस जीवन-दृष्टि के पीछे एक जीवन-दर्शन होता है। और उस जीवन दर्शन के पीछे, आजकल के जमाने में एक राजनीतिक दृष्टि भी रहती है।"[7] जाहिर है हर कला के पीछे एक जीवन-दर्शन होता है। जिसकी अभिव्यक्ति कला में दृष्टिगोचर होती है। मुक्तिबोध ने दार्शनिक विचारधारा को लेखक की निजी आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया है। यही लेखक के अंतकरण में मौजूद 'जीवन-ज्ञान-व्यवस्था' को व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है और उसकी व्याख्या भी करता है। जब तक रचनाकार अपनी चेतना के स्तर पर यह तय नहीं कर पाता कि वह रचना क्यों और किसके लिए करना चाहता है, तब तक वह एक अपरिपक्व कृति का सृजन करता है। एक रचनाकार का समाज के प्रति निजी प्रतिबद्धता और उत्तरदायित्व होता है।

कवि-कर्म के बारे में शमशेर बहादुर सिंह लिखते हैं कि- "कवि का कर्म अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणाओं में, अपने आतंरिक संस्कारों में, समाज-सत्य के मर्म को ढालना, उसमें अपने को पाना है, और उस पाने को अपनी कलात्मकता के साथ व्यक्त करना है, जहाँ तक वह कर सकता है।"[8] इस प्रकार विचारधारा कवि के जीवन-दर्शन के निर्माण में सहायक होती है। जीवन-दर्शन की स्पष्टता सत्यान्वेषण में सहायक होती है। इससे कवि या लेखक समाज के सत्य को अपने भीतर आत्मसात करता है तथा उसे अपनी कला में ठीक से अभिव्यक्त करता है। वैचारिक अतिवाद रचना में अलग तरह की समस्या खड़ा करता है।

सौन्दर्य और काव्य-सृजन में गहरा सम्बन्ध होता है। सौन्दर्यानुभूति से ही सर्जना का उत्स और अंतर्जगत में भावोदीप्ति होती है। अपने बाल मन में सर्जनात्मकता की पहली उलझन बताते हुए 'तारसप्तक' की भूमिका में मुक्तिबोध

लिखते हैं कि- "मेरे बाल मन की पहली भूख सौन्दर्य और दूसरी विश्वमानव सुख-दुःख– इन दोनों का संघर्ष मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी।"[9] इस प्रकार सौन्दर्य की सत्ता सर्जनात्मकता पैदा करने वाली होती है। एक बड़े रचनाकार के लिए प्रेरणास्रोत बड़े मूल्य और आदर्श होते हैं। मुक्तिबोध शुरू से ही विश्व मानवतावाद से प्रेरित रहे। इसलिए उनकी कविताओं में सम्पूर्ण मानवता के कल्याणकारिता का भाव एवं जीवन स्पंदन को महसूस किया जा सकता है। जाहिर है मुक्तिबोध की सर्जनात्मक उलझन शुरूआती दौर से ही बड़ी उलझन थी। जिसे मार्क्सवादी जीवन-दर्शन ने सुलझाया। यह जीवन-दर्शन वर्गीय दृष्टिकोण के आधार पर समाज की वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या करता है। समाज को मानवतावादी दृष्टिकोण से बदलने के शर्तों, उपायों और साधनों का भी वर्णन करता है।

काव्य-सर्जक के लिए साधना क्या है इसे बताते हुए शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है कि- "...जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव से सजीव रूप देते जाना, इसी को मैं साधना समझता हूँ।"[10] शमशेर के इस विचार को यदि मुक्तिबोध के 'बाल मन की उलझन' वाले विचार से मिलाकर देखा जाय तो दोनों में काफी समानता है। 'सौन्दर्य' और 'जीवन की सच्चाई यानी विश्वमानव सुख-दुःख; कविता या रचना के सर्जन हेतु अनिवार्य तत्व हैं। इसे कविता में लाना एक साधना का परिणाम है। जब तक कवि अपने से तटस्थ हो मानव-जीवन में दिलचस्पी नहीं लेता, दीन-दुखी मानवता का दुःख-दर्द, हर्ष-उल्लास और अंतर्विरोध-द्वंद्व महसूस नहीं करता तथा उसे ठीक-ठीक व्यक्त करने हेतु भाषाई कौशल हासिल नहीं करता, तब तक सर्जनात्मक कर्म नहीं हो सकता है।

केदारनाथ अग्रवाल काव्य-सर्जक की सर्जना के शुरूआती चरणों से लेकर दूसरों के वरेण्य बनाने तक की यात्रा का जिक्र करते हुए अपनी रचना 'खुली आँखें खुले डैने' की भूमिका में लिखते हैं कि- "जब आदमी पहले पहल रचना-रत होता है,

तब वह अपने इन्द्रियबोध से अधिक प्रभावित रहता है। भाषा जैविक संस्पर्शों से ऊपर उठकर, चेतना के लोक में पहुँच जाती है, तब वह अपनी विकसित आत्मीयता का बिम्बन करना आरम्भ कर देता है। इसके बाद फिर जब आदमी यथार्थ से टकराते-टकराते, अपनी आत्मीयता को अहम से- निजता से- अपनी एकांगी वैयक्तिकता से बाहर निकल सकने में सक्षम हो जाता है और सत्य को ग्रहण करने लगता है, तब वह अपने आत्म-प्रसार को; दूसरों का आत्मप्रसार बनाने में लग जाता है और उसकी रचनाएँ व्यापक, सारगर्भित, चेतना के सृष्टियों का रूप-रंग पाकर, दूसरों के लिए वरेण्य बन जाती है।"[11] यहाँ केदारनाथ अग्रवाल ने सर्जक के मन और चेतना लोक में चलने वाली सर्जन प्रक्रिया का तार्किक विश्लेषण किया है। कलाकार प्रारंभ में अपने इन्द्रियबोध से अधिक प्रभावित होता है। जब वह अपनी आत्मा को विकसित कर स्वयं को अपने अहं और निजता से निकाल सकने में सक्षम हो जाता है तभी वह आत्मिक स्तर से ऊपर उठकर 'सामान्यभावभूमि' पर पहुँच पाता है। यहाँ पहुँचकर वह मानवता के लिए कल्याणकारी सृजन करने लगता है।

मुक्तिबोध एक कलाकार के लिए प्रवास-प्रवृत्ति का होना आवश्यक मानते हैं। यह जीवन की विशालता और विविधता से परिचय के लिए जरूरी है। व्यक्ति खुद से परिचित होकर अपने निजता के संकीर्ण दायरे से बाहर आता है। इस सन्दर्भ में मुक्तिबोध का कथन है कि- "मैं कलाकार की 'स्थान्तरगामी प्रवृति' (माइग्रेशन इंस्टिंक्ट) पर बहुत जोर देता हूँ। आज के वैविध्यमय, भविष्य में उलझन से भरे, रंग-विरंगे जीवन को यदि देखना है, तो अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उड़ कर बाहर जाना ही होगा। बिना उसके, इस विशाल जीवन-समुद्र की परिसीमा, उसके तट प्रदेशों के भूखंड आँखों से ओट ही रह जायेंगे।"[12] इस तरह पृथ्वी पर मौजूद भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विविधता को देखने, अलग-अलग समाज

के जीवन-संघर्षों, मूल्यों-मान्यताओं, सुख-सुविधाओं और द्वंद्वों-उलझनों को महसूस करने हेतु प्रवास या घुमक्कड़ प्रवृत्ति का होना अतिआवश्यक है। इस विशाल जीवन-समुद्र में समाहित विविध अनुभवों, ज्ञान के स्रोतों, अनुभूतियों को महसूस किये बिना कोई कालजयी रचना असंम्भव है। दुनियां की जितनी महान रचनाएँ हुईं सब में शाश्वत मूल्यों, जीवन के खुरदुरे सत्यों, जीवनानुभवों, मार्मिक प्रसंगों, विचार सरणियों आदि को समाहित करके हुई हैं।

हिंदी साहित्य में घुमक्कड़ प्रवृत्ति के लिए राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन और अज्ञेय प्रसिद्ध हैं। इसी कारण नागार्जुन का एक नाम 'यात्री' भी है। इस प्रवृत्ति के कारण उनके साहित्य में कश्मीर से लेकर केरल और उत्तर-पूर्व से लेकर गुजरात तक की संवेदना और सौन्दर्य को देखा जा सकता है। बकौल मैनेजर पाण्डेय- "नागार्जुन की कविता की दुनिया वैसी ही व्यापकता और विविधता से भरी हुई है जैसी व्यापकता और विविधता भारत देश में है।"[13]

प्रगतिशील कवियों की काव्य-दृष्टि में उनकी वैचारिकता और जीवन-दर्शन महत्वपूर्ण है। दर्शनशास्त्र में सृष्टि-निर्माण की दो दृष्टियाँ मानी गयी हैं- एक भौतिकतावादी और दूसरी प्रत्ययवादी। भारतीय दर्शन में जीवन-जगत की लोकोत्तर व्याख्या रही है। प्रगतिशील रचनाकार भौतिकतावादी दर्शन से प्रभावित रहे हैं। वे लौकिक जगत को सत्य मानते हैं। आध्यात्मवाद को रेखांकित करते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है कि- "आध्यात्मवाद आदमी को जग-जीवन से उठाकर परमात्मवाद में ले जाता था, मैंने उस परमात्मवाद को नकारा और आदमी को ही श्रेष्ठ प्राणी माना और मेरे लिए आदमी का विकास ही सब कुछ हो गया।"[14] इस तरह केदारनाथ अग्रवाल ने समाज में मौजूद शोषण और गैरबराबरी को मनुष्य की देन माना। इसे दूर करना अपना संवेदनात्मक उद्देश्य बनाया। इस प्रकार प्रगतिशील

कवियों की रचनाओं में समाज में मौजूद शोषण, गैरबराबरी, असमानता आदि को दूर करने की चेतना रचनात्मक स्तर पर मौजूद है।

अपने रचनाकाल के शुरूआती दिनों में बढ़ते मार्क्सवादी रुझानों को व्यक्त करते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं कि- "क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ। शुजालपुर में पहले-पहल मैंने कथा-तत्व के सम्बन्ध में आत्म-विश्वास पाया। दूसरे अपने काव्य की अस्पष्टता पर मेरी दृष्टि गयी, तीसरे नए विकास पथ की तलाश हुई।"[15] इस तरह मार्क्सवादी विचारधारा को मुक्तिबोध ने किसी के देखा-देखी नहीं अपनाया था, बल्कि उसके पीछे उनकी अपनी पैनी दृष्टि थी। उनकी दृष्टि में तब तक उपलब्ध सभी विचारधाराओं में मार्क्सवाद सबसे अधिक वैज्ञानिक विचारधारा थी। समाज में घटने वाली हर छोटी-बड़ी घटना को ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने की दृष्टि देती थी। समाज को अभिजात्य और सर्वहारा, पूँजीपति और श्रमिक, शोषक और शोषित वर्ग में बाँट कर देखने और समझने की दृष्टि देती थी। मार्क्सवाद को लेकर यह समझ और दृष्टिकोण केवल मुक्तिबोध की ही नहीं थी कमोबेश उस दौर के हर प्रगतिशील रचनाकार की थी।

केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी दृष्टि के बारे में 'समय समय पर' शीर्षक अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में लिखा है कि- "ऐसे स्वभाव का मैं, भौतिकवादी दर्शन से तालमेल बैठाकर कविता को वस्तुवत्ता के सन्दर्भ में पढ़ने-समझने लगा और पढ़ते-पढ़ते, समझते-समझते इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कविता भी वस्तुवत्ता की आत्मपरक अभिव्यक्ति है और यह अभिव्यक्ति भी देशकाल से बँधी है और ऐसे बँधकर ही न 'अहं' की अभिव्यक्ति है न वस्तुवत्ता की ठोस अभिव्यक्ति है, वरन् दोनों की वास्तविक

अभिव्यक्ति है, जो आदमी को आदमी से जोड़ती है, एक युग को दूसरे युग से जोड़ती है; वर्तमान को भूत और भविष्य से मिलाती है; और आदमी की सभ्यता और संस्कृति का विकसित प्रारूप प्रस्तुत करती है।"[16] इस तरह केदारनाथ अग्रवाल ने बहुत तार्किक तरीके से बताया है कि किस तरह कोई रचना रचनाकार के वैचारिक धरातल से होकर और उसके आत्मपरकता से गुजरकर देशकाल-परिस्थिति से बंधकर ही दीर्घजीवी बनती है।

किसी भी कला में आदमी को आदमी से जोड़ने की जो क्षमता होती है वह इसी संसार में पैठकर प्राप्त की जाती है। एक बड़ा कलाकार इस गुण को अपनी रचना में संवेदना एवं शिल्प दोनों ही स्तरों पर बनाये रखता है। वृहत्तर मानव समाज से जुड़ाव स्थापित कर पाने के लिए शमशेर ने अपना दृष्टिकोण साझा करते हुए कहा है कि- "अगर मेरी वाणी में इंसान का दर्द है- छोटा-सा ही दर्द सही मगर सच्चा दर्द ...भावुकता, ललक, आकांक्षा, तड़प और आशा, कभी घोर रूप से निराशा भी लिए हुए, कभी उदासी, कभी-कभी उल्लास भी... एक प्रेमी कवि कलाकार, एक मध्यवर्गीय भावुक नागरिक का, जो मार्क्सवाद से रोशनी भी ले रहा है और उर्जा के स्रोत भी (अपनी सीमा में अपनी शक्ति भर) तलाश कर रहा है । एक ऐसा व्यक्ति जिसको सभी देशों और सभी धर्मो और सभी भाषाओं और साहित्यों से प्यार है और सबसे अपने दिल को जोड़ता है । [(प्रेम की भावुकता ने जो बीज बोया वह मै देखता हूँ कि अकारथ नहीं गया; क्योंकि वह पूरे मनुष्य जाति से प्रेम, युद्ध से नफरत और शांति की समस्याओं से दिलचस्पी– यह सब बातें उसी से धीरे-धीरे मेरे अन्दर पैदा हुई ..)] तो उपर्युक्त तमाम सूत्रों से मैं इंसान के साथ जुड़ता हूँ, तो मेरे लिए फिलहाल इतना ही काफी है।"[17] स्पष्ट है कि शमशेर के उक्त विचार उनकी काव्य-दृष्टि को समझने के लिए बेहद अहम हैं। मानव के जीवन में मौजूद भावनाओं, अनुभूतियों,

खुरदरी सच्चाइयों से जुड़ाव स्थापित किया जा सकता है। वृहद स्तर पर जनता से जुड़ाव के लिए मार्क्सवादी विचारधारा एक रोशनी की तरह काम करती है।

संसार के समस्त भाषाओं के साहित्य और विभिन्न धर्मों, मानवतावादी चिंतन, युद्ध के बजाय शांति, सुखी और समृद्ध मानवता की कल्पना प्रगतिशील कविता और प्रगतिशील कवियों का सपना है। त्रिलोचन बिल्कुल स्पष्ट लिखते हैं कि- "...मेरा कहना है मनुष्य में विश्वास रखो। वह मुसलमान भी हो सकता है...वह ईसाई भी हो सकता है... अमेरिकी..और कहीं का भी।"[18] जाहिर है मनुष्य में विश्वास और मनुष्यता में आस्था प्रगतिशील कवियों की काव्यदृष्टि की महत्वपूर्ण विशेषता है। इन कवियों के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी घर है, भले ही उस घर के कोने-कोने से वाकिफ न हो, लेकिन मनुष्यता की पक्षधरता खुल कर जाहिर करते हैं। त्रिलोचन की कविता है-

"पृथ्वी मेरा घर है

अपने इस घर को

अच्छी तरह मैं ही नहीं जानता"[19]

प्रगतिशील कविता मनुष्य और मनुष्यता के अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों, मान्यताओं और आदर्शों से प्रेरित है।

रचना के सृजन के लिए कलात्मकता का गुण होना अनिवार्य है। यह ऐसा गुण है जो सामान्यजन में नहीं होता। इसके कारण एक कलाकार निर्जीव को सजीव, नीरस को सरस, विकृत को सुन्दर बना देता है। इसकी विशेषताओं को केदारनाथ अग्रवाल ने कुछ इस तरह बताया है कि- "वही तो कृति को विकृति होने से बचाती है। वही तो सूक्ष्म संवेदनों को रूप और आकार देती है। वही तो भावनाओं और विकारों

को सुन्दर सजीव स्थापत्य देती है। वही तो असम्बद्ध वस्तुनिष्ठता को मानवीय चेतना से गत्यात्मक बनाती है। और जड़ता का संहार करती है। वही तो सृष्टि का रूपांतरण करती है। और वही उसे मानव का वशवर्ती बनाती है। वही मानवीय बोध को निरंतरता में जीवित रखती है। वही मानव-मूल्यों की महत्ता के फहराते केतुओं का रंग बदरंग नहीं होने देती। संबंधों को दृढ़तर और पावनतम बनाती है। वही अरूप को रूप और कुरूप को सुघर बनाती है। वही मर्त्य जीवन को अमर्त्य बनाती है। वही भूतल को स्वर्ग बनाती है।"[20] इस प्रकार कलात्मकता का महत्व असंदिग्ध है। केदारनाथ अग्रवाल ने इस कथन से साहित्य सर्जन हेतु जिस कलात्मक चेतना के महत्व को बताया है; वह कोई दैवीय चमत्कार नहीं है, इसका निर्माण इसी जीवन में संभव होता है।

एक कलात्मक चेतना सबके पास नहीं होती। इस चेतना से कवि जीवन के अनुभव को कला में ढाल देता है। मुक्तिबोध कहते हैं कि इस चेतना की पुष्टि और तुष्टि ऐसी भाव संवेदनाओं के आवेगों से होती है जो कलाकार को अपने से परे और अपने से ऊपर लेकर चली जाती है। और उसे जीवन की व्यापकता में डुबोकर उदात्त बना देती है। कलाकार के लिए परकाया प्रवेश और परदुखकातरता का गुण बहुत उपयोगी होता है। जब तक व्यक्ति अपने लाभ-हानि, हित-अहित, लोभ-मोह से ऊपर नहीं उठता तक मानवता की सामान्य भावभूमि पर नहीं पहुँच सकता और जब तक यह गुण कलाकार में आ नहीं जाता तब तक एक सफल रचना का सृजन नहीं होता। यह वास्तविक जीवन में डूबकर ही संभव होता है। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि यह कलात्मक चेतना केवल कलम या ब्रश लेकर चित्रित करते समय आती है, लेकिन मुक्तिबोध इसे जीवन में निरंतर चलने वाली प्रक्रिया मानते हैं। जो विभिन्न क्रिया-व्यापारों-- सोते-जागते, चलते-फिरते, उठते-बैठते, पढ़ते-लिखते, श्रम करते और आसपास के जन-जीवन को सूक्ष्मता से निरीक्षण-परीक्षण करते रहने के दौरान विकसित होती रहती है। किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में नए विचार श्रम करते समय

आते हैं और कोई भी रचना जीवन की वास्तविक अनुभूतियों को रचकर ही मूल्यवान बनती है। मुक्तिबोध की कविता है-

"विचार आते हैं—

लिखते समय नहीं,

बोझ ढोते वक्त पीठ पर

सिर पर पर उठाते समय भार

परिश्रम करते समय

चाँद उगता है व

पानी में झलमलाने लगता है

हृदय के पानी में।"[21]

मुक्तिबोध ने एक अच्छी कृति की रचना के लिए कलाकार के तीन प्रकार के संघर्षों का उल्लेख किया है- "...एक, सुन्दर कलाकृति की रचना के लिए अभिव्यक्ति का संघर्ष; दो, कलात्मक चेतना के अंगरूप संवेदनात्मक उद्देश्यों के अनुसार, जीवन-जगत में भीगने, रमने अपने को निज-बद्धता से अधिकाधिक दूर करने और अधिकाधिक मानवीय बनाने के लिए आत्म-संघर्ष; तीसरे वास्तविक जीवन की बुनियादी तथ्यों के कारण बनने वाली हलचलों का, जिंदगी के अलग-अलग तानों-बानों का, तजुर्बा हासिल करने के लिए मानव-समस्याओं को (गहराई से, ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक रूप से) अनुभूत करके, मानवता के उद्धार लक्ष्यों से एकाकार होकर

वास्तविक जीवन-अनुभवों की समृद्धि प्राप्त करने हेतु, वह संघर्ष जिसे हम तत्व के लिए, तत्व प्राप्ति के लिए संघर्ष कह सकते हैं।"[22] इस प्रकार मुक्तिबोध आगे कहते हैं कि "सच्चे मनीषी कलाकार के जीवन में ये तीनों संघर्ष एक साथ स्वाभाविक रूप से चलते रहते हैं। और इसलिए कलाकार का जीवन पीड़ा से ग्रस्त जीवन होता है, केवल सृजन-पीड़ा से नहीं, अन्य पीड़ाओं से भी।"[23] स्पष्ट है एक श्रेष्ठ कृति का निर्माण जीवन-संघर्ष की जटिल एवं पीड़ादायक प्रक्रिया से होकर ही प्राप्त होती है।

इस प्रकार कलात्मकता क्या है, यह किसी कवि या रचनाकार में कैसे विकसित होती है, श्रेष्ठ रचना के लिए किस प्रकार के संघर्षों से होकर गुजरना पड़ता है और एक कवि या रचनाकार के जीवन में किस तरह की प्रवृत्ति, मनोवृत्ति और जीवन दृष्टि का होना जरुरी है; यह हम देख चुके हैं। इससे यह समझना ज्यादा कठिन नहीं रह गया है कि प्रत्येक कवि या रचनाकार की रचना-प्रक्रिया सम्बन्धी दृष्टि अलग-अलग होती है। जैसे- कविता की सम्प्रेषणीयता को कवि की दृष्टि से जोड़कर देखते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है कि- "यदि कवि की दृष्टि सही और सटीक समाजवादी चेतना और जनवादी वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठता से विरचित हुई है तो निश्चय ही उस दृष्टि से रची गयी कविताएँ सम्प्रेषणीय होंगी..."[24] जाहिर है केदारनाथ अग्रवाल के इस विचार में कुछ असहमति के बिंदु भी खोजे जा सकते हैं। भक्तिकाल के अधिकांश कवियों की दृष्टि में समाजवादी चेतना और जनवादी वस्तुनिष्ठता की मौजूदगी आधुनिक अर्थ में नहीं मिलती परन्तु उनकी कविताओं में सम्प्रेषणीयता भरपूर है।

रचना-प्रक्रिया को लेकर रचनाकारों के विभिन्न मत होने को मुक्तिबोध भी स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि कवि का स्वभाव और उसकी दृष्टि में बदलाव विषयवस्तु के अनुसार होता रहता है। रचना-प्रक्रिया के मूल तत्व ही सर्व-सामान्य हैं।

वे रचना-प्रक्रिया को स्वायत्त मानते हुए मन के मूल उद्वेगों और अनुरोधों को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे लिखते हैं कि- "रचना-प्रक्रिया वस्तुतः एक स्वायत्त प्रक्रिया है। और वह किन्हीं मूल उद्वेगों और अनुरोधों के सहारे चली चलती है। ये उद्वेग और अनुरोध ही वह लालटेन है, जिसको हाथ में लेकर उसे आगे चलना होता है।"[25] इस तरह भावनाओं और संवेदनाओं के उद्वेग रचना-प्रक्रिया के मार्गदर्शक होते हैं।

दरअसल, हर कवि की सर्जनात्मक प्रक्रिया उसके निजी अनुभवों से बनी होती है जिससे वह एक काव्य-लोक का निर्माण करता है। इस काव्य-लोक में वह अपने द्वारा अनुभूत समाज के सत्य का मर्म ही व्यक्त करता है। अपनी आत्मपरकता से वह जिंदगी की खुरदरी सच्चाइयों और जीवन-स्थितियों का मार्मिक चित्रण करता है। कवि-कर्म के सन्दर्भ में शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है कि- "कवि का कर्म अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणाओं में, अपने आतंरिक संस्कारों में, समाज के सत्य के मर्म को ढालना-उसमें अपने को पाना है, और उस पाने को पूरी कलात्मक क्षमता से, पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है जहाँ तक वह हो सकता है।"[26] इस तरह कवि अपनी रचना में अपनी सार्थकता की प्राप्ति करता है। समाज-सत्य का मर्म उद्घाटित कर अपनी आत्मपरकता से समाजोन्मुखी उद्देश्य की प्राप्ति करता है।

शमशेर ने 'काल तुझसे होड़ है मेरी' की भूमिका में लिखते हैं कि- "मैं सदा ही अपने मानसिक परिवेश को चित्रित करता रहा हूँ। परिवेश के साथ-साथ उसके माहौल को भी 'अपने पास' 'इतने अपने पास' खींचता रहा हूँ कि मेरा अंदरूनी व्यक्तित्त्व, अंदरूनी कवि और चित्रकार, अपने अक्स को उसमें उतरने से बाज़ नहीं रख सके।"[27] इस तरह कवि का मन जब तक पूरे परिवेश में रमने नहीं लगता है तब तक रचना का जन्म नहीं होता है। अपने एक लेख 'आसु कविता' में शमशेर का विचार है कि- "(सच्चा कवि) 'स्थितियों को अपनी आँखों से देखता, अपनी अनुभूति

की रोशनी में उसे समझता, अपने निजी तर्क से उन्हें परखता और उसे अपनी निजी शैली में प्रस्तुत करता है। दूसरों की मुँहदेखी बात करना उसकी शान के खिलाफ है।"[28] अतः रचना रचनाकार के वैचारिक और संवेदनात्मक अनुभूति के रंग में रंगी नितांत निजी होते हुए भी सामाजिक होती है। एक ही दृश्य या घटना हर व्यक्ति पर अलग-अलग प्रभाव डालती है। हर व्यक्ति अपनी ग्राह्य शक्ति द्वारा उसे ग्रहण कर प्रतिक्रिया करता है। एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण एवं अनुभूति के साथ लिखी गयी कविताएँ इसका प्रमाण हैं।

रचना-प्रक्रिया के जिन तीन क्षणों का जिक्र मुक्तिबोध ने अपनी पुस्तक 'एक साहित्यिक की डायरी' में किया है, वह महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने लिखा है कि- "कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना मानों वह फैंटेसी ही अपनी आखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैंटेसी के शब्द बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया के परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह में वह फैंटेसी अनवरत रूप से विकसित-परिवर्तित होती हुई आगे बढ़ती जाती है।"[29] यहाँ मुक्तिबोध ने रचना-प्रक्रिया को जिस रूप में बताया है वह लम्बी कविता के सृजन से ज्यादा जुड़ती है। वे दरअसल फैंटेसी शैली का सर्जनात्मक उपयोग करने वाले रचनाकार हैं। कला का दूसरा और तीसरा क्षण ध्यान देने योग्य है। दूसरे क्षण में ही यथार्थ के जटिल और गतिशील होने के कारण जीवन का तीव्र अनुभव क्षण फैंटेसी का रूप धारण कर लेता है। अंतर्जगत में मौजूद अनुभूति के बहुस्तरीय अर्थ को धारण करने एवं वहन करने की जो क्षमता फैंटेसी शैली में है कला की अन्य शैलियों में नहीं। फैंटेसी जब शब्दबद्ध होने लगती है तो उस प्रक्रिया में वह निरंतर बढ़ते भावों की

सघनता, समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह तथा गतिशील यथार्थ की जटिलता को धारण करते हुए लगातार विकसित-परिवर्धित होती रहती है।

मुक्तिबोध ने कला के जिन तीन क्षणों का सिद्धांत दिया उसकी मौलिकता पर विद्वानों ने सवाल खड़े किये हैं। नंदकिशोर नवल ने अपनी पुस्तक 'मुक्तिबोध की कविताएँ:बिम्ब प्रतिबिम्ब' में लिखा है कि- "ड्राइडन ने कभी कवि-कल्पना के तीन स्तरों की बात कही है- अन्वेषण, फैंसी और वक्तृत्व । उनके अनुसार पहले स्तर पर कवि बीज-भाव को प्राप्त करता है, दूसरे स्तर पर उसे अपनी फैंसी से रूपाकृति प्रदान करता है और तीसरे स्तर पर वह उसे उपयुक्त शब्दों में अभिव्यक्त करता है। इलियट ने इसकी व्याख्या करते हुए ड्राइडन द्वारा प्रयुक्त एक शब्द को पकड़कर यह संकेत किया है कि फैंसी के स्तर पर बीज-भाव में शाखा विस्तार अथवा परिवर्तन भी हो सकते हैं। कदाचित इसी से प्रेरणा लेकर मुक्तिबोध ने कला के तीन क्षणों की कल्पना की है और उनकी व्याख्या के क्रम में लम्बी कविता की रचना-प्रक्रिया को उजागर किया है।"[30] लेकिन एक अन्य जगह मुक्तिबोध की सृजन-प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए नन्द किशोर नवल ड्राइडन के विचार को मुक्तिबोध द्वारा हूबहू पुनरावृत्ति नहीं मानते हैं। इसका तर्क उन्होंने मुक्तिबोध द्वारा दिए गए विस्तृत रूप में अपने अनुभवों और सृजन प्रक्रिया में शामिल गतिमयता और विकासमानता के गंभीर वर्णन प्रक्रिया के रूप में दिया है, लेकिन उनका मुक्तिबोध की कल्पना के पीछे ड्राइडन का मत और उससे अधिक इलियट द्वारा की गई व्याख्या की प्रेरणा का प्रभाव को निराधार न मानना सही है।

अपनी कविताओं की रचना-प्रक्रिया को बहुत ही सहज और सरल तथा तार्किक ढंग से केदारनाथ अग्रवाल ने 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' की भूमिका में लिखा है। उन्होंने इन्द्रियबोध, अनुभूत जीवन से बने व्यक्तित्व, इन्द्रियबोध का अमूर्त से मूर्त

और अस्पष्ट से स्पष्ट होने, शब्द संकेत तथा छंद में ढल कर कविता के बाहर आने की पूरी प्रक्रिया को समझाते हुए लिखा है कि- "अपने इन्द्रियबोध से मैंने बहिर्जगत का ज्ञान प्राप्त किया। मेरा इन्द्रियबोध मेरे हृदय और मस्तिष्क में पहुँचा। जहाँ उद्वेल हुआ अनुभूत जीवन से बने व्यक्तिव से, उद्वेल में मेरे इन्द्रियबोध का संपर्क हुआ और वह उससे समन्वित हुआ। उस संपर्क और समन्वय के समय मेरा इन्द्रिय-बोध एक दिशा पाने लगा। आकार और प्रकार में परिवर्तित होकर वह अस्पष्ट से स्पष्ट और अमूर्त से मूर्त की ओर प्रयाण करने लगा। बाहर से आया हुआ ज्ञान भीतर के ज्ञान से गुम्फित होने लगा। वहां स्थित शब्द संकेत उसे मिले। वह उनसे जुड़ गया। जुड़कर अर्थवंत हो गया। छंद में शिल्पित होकर वही बाहर निकल आया। यही कविता हुआ। मेरी कविताएँ इसी रचना-प्रक्रिया से समझ लेना जरूरी होता है।"[31] यहाँ केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी रचना-प्रक्रिया को चरणों या बिन्दुओं में नहीं समझाया है। उन्होंने मुक्तिबोध की तरह फैंटेसी की बात नहीं की है और करते भी क्यों उन्हें लम्बी कविता के रचना-प्रक्रिया को नहीं बताना था। फिर भी दोनों लोगों की रचना-प्रक्रिया सम्बन्धी मान्यता में काफी कुछ समानता है।

मुक्तिबोध और केदारनाथ अग्रवाल ने काव्य की रचना-प्रक्रिया को वैज्ञानिक और तार्किक रूप से समझाया है। शमशेर बहादुर सिंह प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। उन्होंने रचनात्मकता को 'सुन्दरता' में देखा है। 'दूसरे सप्तक' के वक्तव्य में उन्होंने अपने विचार को इस रूप में व्यक्त किया है कि- "सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। अब यह हमारे पर है, खासतौर से कवियों पर कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनंत और अपार लीला को कितना अपने अन्दर घुला सकते हैं।"[32] शमशेर की दृष्टि सौन्दर्य की सत्ता को क्षण-क्षण महसूस करती है। वैविध्य से भरे इस संसार में सुन्दरता के नित नवीन होते रूप को देखना कवि के संवेदनशीलता का परिचायक है। वे इस संसार में अपने चारों तरफ सृष्टि के लीला को

देखते हैं। शमशेर की इस मान्यता के सन्दर्भ में विजयदेव नारायण साही ने 'शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट' शीर्षक अपने लेख में महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है। उन्होंने शमशेर को 'विशुद्ध सौन्दर्य का कवि' कहा है। उनका मानना है कि शमशेर के इस सूत्र में आयी 'हूबहू वैष्णव शब्दावली' आकस्मिक नहीं है। 'अवतार' 'लीला' और 'अपने अन्दर घुलाना' जैसे शब्दों और पदों पर जोर नहीं देते हुए उन्होंने 'सुन्दरता' को लेकर सूक्ष्म विवेचन किया और लिखा है कि- "... तात्विक रूप में शमशेर की काव्यानुभूति सौन्दर्य की ही अनुभूति है। जिन लोगों का ख्याल है कि छायावाद के बाद हिंदी कविता ने सौन्दर्य का दामन छोड़ दिया है, उन्होंने शायद शमशेर की कविताओं का आस्वादन करने का कष्ट कभी नहीं किया। मैं एक कदम आगे बढ़कर कहना चाहूँगा कि आज तक हिंदी में विशुद्ध सौन्दर्य का कवि यदि कोई हुआ है, तो वह शमशेर हैं। और इस 'आज तक' में हिंदी के सब कवियों को शामिल करके कह रहा हूँ।"[33] निश्चित तौर से शमशेर के रचना संसार में सौन्दर्य की व्याप्ति हर कोने में मौजूद है। उनकी रचनाधर्मिता संबंधी दृष्टिकोण इसी सौन्दर्यबोध की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। वे लिखते हैं कि- "मेरे चारों तरफ जो लीला हो रही है, मैं दूर-दूर तक देख रहा हूँ देश में और विदेश में; जो नया सृजन हो रहा है और कला-सृजन से जन वो कभी-न-कभी (शायद शीघ्र) किसी एक या दो-चार कविताओं के रूप में जन्म ले लेगा अवश्य !..."[34] यहाँ शमशेर जिसे 'लीला' कहते हैं वह अपने आसपास के वातावरण में या कहीं दूर इसी संसार में घट रही इन्द्रियजन्य या इन्द्रियातीत घटनाएँ हैं। जो मानव सभ्यता और संस्कृति को सामाजिक रूप से उत्कर्ष की ओर ले जाने वाले मनुष्य के क्रिया-व्यापार हैं। लीला क्या है इसके विषय में वे 'चुका भी हूँ मैं नहीं' के 'आभार ज्ञापन' में लिखते हैं- "काव्य-कला-समेत जीवन के सारे व्यापार एक लीला ही हैं- और यह लीला मनुष्य के सामाजिक जीवन के उत्कर्ष के लिए निरंतर संघर्ष की ही लीला है"[35] इस तरह

उनके लीला का रूप इहलौकिक है। जो एक सुन्दर, सुखमय, शोषणहीन, समतामूलक समाज के स्वप्न से जुड़ा है।

शमशेर बहादुर सिंह इस संसार को लीलामय कहते हैं और अपने को सदैव 'बहुत से काव्य-कला-रूपों से' घिरा हुआ पाते हैं। उनके अनुसार यही लीला हर समय कलाकार के माध्यम से नया जन्म ले रही है। कलाकार निरंतर अपनी सृजनात्मक शक्ति एवं कलात्मकता से उसके नूतन रूप को गढ़ रहा है। शमशेर के इस विचार से स्पष्ट है कि जिस रचनाकार में लीला के प्रति संवेदनशीलता और सौन्दर्य को अपने अन्दर घुला पाने की क्षमता जितनी ही अधिक होती है, वह उतना ही अधिक सृजनशील होता है।

शमशेर की सूक्ष्म दृष्टि एक दूसरे में मिली हुई कलाओं के विविध रूपों का दर्शन करती है। उनकी दृष्टि विविध कलाओं में अलग-अलग तरीके से कही गयी संवेदना और सौन्दर्य के रूप की पहचान कर ही लेती है । दूसरे सप्तक में वे कहते हैं कि- "ललित कलाएँ काफी एक दूसरे में समाई हुई हैं- तस्वीर, ईमारत, मूर्ति, नाच, गाना और कविता- इन सब में, बहुत कुछ एक ही बात अपने-अपने ढंग से खोल कर या छिपा कर या कुछ खोल कर कुछ छिपा कर कही जाती है"[36] इस तरह शमशेर कविता की रचना-प्रक्रिया को लीला, प्रेम और सौन्दर्य के धरातल से जुड़ा हुआ मानते हैं ।

शमशेर बहादुर सिंह के सौन्दर्यबोध और सृजनात्मक दृष्टि का विवेचन-विश्लेषण करते हुए गोबिन्द प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'कविता के सम्मुख' में लिखा है कि- "जीवन के समस्त व्यापार काव्य-कला समेत-लीला हैं। उन्नत और अपार लीला। एक अजब तरह के लीला से कवि (शमशेर) हर समय घिरा रहता है। इस अनंत और अपार लीला में सुन्दरता का अवतार पल-छिन होता रहता है। कवि-कर्म और उससे

जुड़ी समस्याओं का प्रस्थान बिंदु यहीं से आरम्भ होता है। वस्तुतः उसका सारा संघर्ष और साधना यही है कि चारों ओर इस अनंत और अपार लीला में सुन्दरता के पल-छिन होने वाले अवतार को काव्य-कला-रूपों में जस का तस अथवा सजीव से सजीव, सम्पूर्ण रूप में शब्द विधान के अंतर्गत कैसे प्रस्तुत किया जाय-बिना अपने अस्तित्व, अहं बोध अथवा माध्यम को लाए (अपनाए) अर्थात् मूल समस्या है माध्यम और सौन्दर्य के अवतार के द्वैत को लाँघ कर एक सर्जनात्मक अद्वैत के क्षण को कैसे उपलब्ध किया जाय।"[37] इस तरह शमशेर रचनात्मकता के स्तर पर सौन्दर्य और प्रेम को आधारभूत तत्व मानते हैं। सौन्दर्य के सृजनात्मक स्वरूप के अनुभूति का यह स्तर किसी भी प्रगतिशील कवि के दृष्टि में नहीं है। केदारनाथ अग्रवाल ने सौन्दर्य के कई प्रकारों को अनुभूत किया है। उनका मानना है कि 'सभी प्रकार के सौन्दर्य काव्य-सौन्दर्य नहीं होते हैं।' जाहिर है केदारनाथ अग्रवाल ने काव्य-सृजन के लिए उपयोगी और अनुपयोगी दोनों तरह के सौन्दर्य की पहचान की।

कोई भी सफल रचना पाठक को और अधिक संवेदनशील तथा मनुष्यता प्रेमी बनाती है। वह अपने चरित्र में मानवता के लिए कल्याणकारी होती है। उसमें उच्च मानव मूल्यों और आदर्शों की प्रतिष्ठा करना रचनाकार का दायित्व और कर्तव्य है। रचनाकर में यह दृष्टि कैसे विकसित होती है, इस सन्दर्भ में केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है कि- "मेरा विवेक कहता रहा है कि समग्र जीव में पैठो-भीतर-बाहर का निरीक्षण–परीक्षण करो-वैज्ञानिक दृष्टि से सत-असत को समझो और आदमी को ऐसा कृतित्व दो, जो उसे नेक आदमी बनाये ...अच्छी कविता आदमी के विकास क्रम की मानवीय गरिमा की कविता होती है।"[38] जाहिर है कवि की आकांक्षा पाठक के हृदय को 'तेजोदीप्त' और 'परदुखकातर' बनाकर और ज्यादा संवेदनशील बनाने की होती है। साहित्य के उद्देश्य की यह आकांक्षा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी व्यक्त की है।

केदारनाथ अग्रवाल ने कविता के विषयवस्तु को लेकर अपनी काव्य-दृष्टि का उद्घाटन बहुत साफ-साफ 'अनहारी हरियाली' की भूमिका में भी किया है। उन्होंने अपने रचनाकाल के शुरुआती दौर में समाजवाद, यथार्थवाद और मार्क्सवाद के प्रभाव को स्वीकार किया है। इनके प्रभावस्वरूप अपनी निरंतर वैज्ञानिक और विस्तृत होती दृष्टि का उल्लेख भी किया है। उन्हें सत्य का दर्शन समाजवाद एवं यथार्थवाद के गहराते प्रभाव से धीरे-धीरे होने लगा था। अपने ही भीतर घटित हुए इस बदलाव को रेखांकित करते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है- "तब मैं जाना कि मुझे सत्यदर्शी होना चाहिए और मेरी काव्य चेतना को अब इस सही और सार्थक मानवतावादी दिशा की ओर जाना चाहिए, ताकि समता, न्यायप्रियता, मानवीय विवेक की रचनायें रच सकूँ।"[39] इस तरह केदारनाथ अग्रवाल की तर्कशील चेतना को मार्क्सवाद का वैचारिक आधार मिला। उनकी काव्य-दृष्टि में वर्गीय चेतना मौजूद है। उनकी कविताएँ श्रमजीवी जनता की पक्षधरता से युक्त हैं तथा समता, न्यायप्रियता, शोषणहीन मूल्यों से संचालित हैं। उनकी दृष्टि कलावादी नहीं, बल्कि आधुनिक है। हालाँकि अज्ञेय जैसे कुछ बड़े रचनाकारों ने उन्हें एक स्तर तक कलावादी भी माना है।

श्रम को सामाजिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने वाली कविताओं का सृजन सबसे अधिक केदारनाथ अग्रवाल ने किया है। ये कविताएँ पाठक को जागरूक करती हैं साथ ही उन्हें स्वस्थ प्रेरणा देकर संवेदनशील बनाती हैं। उनका मानना है कि- "कविता केवल कला नहीं होती । कविता कर्म का विधान-मंडल तैयार करती है। कर्म आदमी के हाथ करते हैं। मैंने यही सोचा, समझा और जाना है। मैं तभी तो सत्यदर्शी कविता को श्रेष्ठ कविता मानता हूँ।"[40] इस तरह सत्यदर्शिता और कर्मशीलता को महत्व देना प्रगतिशील कवियों की काव्य-दृष्टि की विशेषता है। केवल शब्दों की कारीगरी कविता नहीं है। जब तक उसमें कोई जीवन का सत्य नहीं होता है। वे

कविता को अपने में जीवन के विविध आयामों को धारण करने वाली एक 'संश्लिष्ट इकाई' मानते हैं। उसमें केवल विवरण, बिम्ब, आलोचना, जीवन-दर्शन, नीतिपरकता या उपदेश नहीं होते, बल्कि जीवन के विभिन्न, अनुभव, मर्म इत्यादि एक साथ संगुम्फित होते हैं।

काव्य-निर्माण की मनोभूमि लम्बे समय में निर्मित होती है। यह कविता के संवेदनात्मक उद्देश्य पर निर्भर करती है। एक प्रदीर्घ कविता प्रदीर्घ रचनात्मक तनाव का परिणाम होती है। बूँद कविता या छोटी कविता का रचनात्मक तनाव अथवा चेतना जगत में उमड़न का काल कम होता है। छोटी कविता का सृजन भी एक कला है। जिनका सृजन करना सभी रचनाकारों के लिए सुगम नहीं होता है। जैसे मुक्तिबोध ने स्वीकार किया है कि उन्हें छोटी कविता लिखने की कला नहीं आती है। वे जब भी छोटी कविता लिखते हैं, लम्बी हो जाती है। उसका अंत वे नहीं कर पाते। इसका कारण वे यथार्थ के गतिशील एवं जटिल स्वरुप को मानते हैं। वहीं अज्ञेय छोटी कविता के समर्थ कवि हैं। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' समेत उनकी कई काव्य-संग्रहों में अनेक छोटी-छोटी सुन्दर कविताएँ संकलित हैं।

रचना और रचनाकार के व्यक्तित्व में संबंधों को लेकर भी प्रगतिशील कवियों ने विचार किया है। रचना में रचनाकार का व्यक्तित्व किस सीमा तक निहित रहता है इसे लेकर मुक्तिबोध ने अपनी पुस्तक 'नई कविता का आत्मसंघर्ष' में लिखा है कि- "संवेदनात्मक उद्देश्यों का उत्पत्ति स्थल, उनका उद्गम स्रोत, आत्मचरित्रात्मक है। उनके सम्बन्ध-सूत्र कलाकार की मनोरचना से उसके व्यक्तिगत इतिहास तक में समाये रहते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक साहित्य, मूलतः और सारतः आत्मचरित्रात्मक है, भले ही बाहर-बाहर से वह चाहे जितना वस्तुवादी क्यों न दिखाई दे। उसकी यह आत्मचरित्रात्मकता मुख्यतः, अभिव्यक्ति के लिए लाए जाने

वाले अनुभवों के संवेदनात्मक महत्व-बोध में है।"[41] इस तरह मुक्तिबोध मानते हैं कि कोई रचना चाहे जितना ही वस्तुवादी क्यों न दिखे उसमें रचनाकार के जीवन-संघर्ष और उसका व्यक्तिगत इतिहास तक समाया रहता है।

मुक्तिबोध व्यक्ति के चेतना-निर्माण प्रक्रिया को सामाजिक मानते हैं। दरअसल, प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन इसी समाज में जीता है। उसकी मनोभूमि और वैचारिकता का निर्माण उसके अपने आर्थिक और सामाजिक स्थिति, जीवन-संघर्ष, ज्ञान-विज्ञान के विविध अनुशासनों और कलाओं इत्यादि से होता है। रचनाकार जिस प्रकार के अनुभूतियों, संवेदनाओं, मूल्यों और मान्यताओं से युक्त रचना करना चाहता है, वह अपने मूल चरित्र में निजी और सामाजिक होता है। इस तरह हम पाते हैं कि कलात्मक चेतना से संपन्न जिन कवियों का जीवन जितना अधिक खुरदुरा और संघर्षमय रहा है उनकी रचनाएँ समाज के संघर्षशील चेतना के जड़ों को उतना ही अधिक सींचने वाली रही हैं| 'तोड़ती पत्थर', 'कुकुरमुत्ता', 'अँधेरे में' इत्यादि जैसी काव्य-कृतियाँ निराला, मुक्तिबोध जैसे रचनाकार ही रच सकते थे।

केदारनाथ अग्रवाल ने स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है कि- "मेरी कविताओं में मेरा अनुभूत व्यक्तित्व तो है ही। साथ ही साथ उसमें युग-बोध और यथार्थ बोध भी है। प्रत्येक कविता आत्मान्वेषिणी होते हुए भी यथार्थान्वेषिणी भी है। एक ओर वह व्यक्तित्व में भरपूर डूबी हुई है। दूसरी ओर वह व्यक्तित्व से हटी हुई तटस्थ भी।"[42] जाहिर है रचना में एक साथ रचनाकार का अनुभूत व्यक्तित्व, युग-बोध और यथार्थ बोध के साथ-साथ कवि/लेखक के व्यक्तिव से तटस्थता का भाव भी गूंथा होता है। इसीलिए पाश्चात्य विद्वान तेन ने किसी कृति का मूल्याँकन हेतु देश, काल और स्थान को महत्वपूर्ण माना है।

2.2 भाषा-शिल्प सम्बन्धी दृष्टिकोण :

चयनित कवियों की श्रम-सम्बन्धी कविताएँ सहजता, सरलता और प्रवाहमयता का दामन थामे हुए अपने प्रभाव को कायम करती हैं। कविताओं में भाषा-शिल्प पर इन कवियों का विचार लोकतान्त्रिक है। भाषा का जनवादी रूप प्रगतिशील कविता के प्राण हैं। साहित्य को वे जन-जन से जोड़ने के पक्षपाती हैं। त्रिलोचन शास्त्री का विचार है- "भाषा के अंतर्गत उन तमाम रूपों को ले लिया जाय जो समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों में परस्पर संचार के माध्यम हैं।"[43] त्रिलोचन का यह विचार जन-जन को जोड़ने वाला है। आमजन को कविता के और नजदीक लाने वाला है। भाषा को सुरक्षित रखने और कविता को और समृद्ध बनाने वाला है। जनजीवन में प्रचलित बोलचाल की भाषा में कविता करना एक प्रकार का भाषाई और रचनात्मक जनतंत्र का रूप है। जिसमें जनता के जीवन की सादगी, कठिनाइयाँ, हर्ष और उल्लास सब व्यक्त होता है। त्रिलोचन जीवन और भाषा के प्रति संवेदनशील कवि हैं। उन्हें शब्द-शब्द में हाड़-मांस अर्थात् जीवन दिखाई देता है। वे भाषा की लहरों में जीवन के स्पंदन को महसूस करते हैं।

शमशेर बहादुर सिंह ने स्वयं को हिंदी-उर्दू का दोआब कहा है। भाषा के प्रति वे बेहद सजग और संवेदनशील कवि हैं। उनका कथन है कि- "कविता में मेरी यह खास कोशिश रही है कि हर चीज की, हर भावना की जो एक अपनी भाषा होती है, जिसमें वह कलाकार से बातें करती है, उसे सीखूं ।"[44] निश्चित तौर पर हर विषयवस्तु की अपनी-अपनी भाषा होने एवं उसे सीखने की ललक बेहद महत्वपूर्ण बात है। एक बड़े रचनाकार के लिए हर विषयवस्तु के अनुसार भाषा को सीखना, उसे बरतना और भावों के अनुकूल शब्द चयन करना महत्त्वपूर्ण होता है। रामकुमार कृषक की त्रिलोचन से शमशेर विषयक बातचीत 'उद्भावना' पत्रिका में 'बला-ए-जाँ है ग़ालिब

उसकी हर बात' शीर्षक से छपी है। उसमें त्रिलोचन ने अपने और शमशेर के भाषाई दृष्टिकोण का तुलना करते हुए कहा है कि- "भाषा के बनाव पर मुझमें और शमशेर में एक बारीक अंतर था, वो मै बता दूँ। मेरा यह कहना है कि शब्दों का अपना एक परिवार होता है। तो जहाँ एक शब्द आप लाते हैं, वहाँ उसके परिवार के शब्द आयेंगे। पर शमशेर मेरी इस बात के विरोधी थे। अगर मैं किसी पंडित की मानसिकता को दे रहा हूँ तो जाहिर है कि संस्कृत के शब्द काफी आयेंगे। मैं वैदिक काल के विषय को लेकर कोई कविता कर रहा हूँ तो वैदिक शब्दों का प्रयोग भी मेरी कविता में आएगा। इसको शमशेर अच्छा नहीं मानते थे।"[45] आगे रामकुमार कृषक ने त्रिलोचन से प्रश्न किया कि- "माने रचना की जो अंतर्वस्तु है, भाषा भी उसकी उसके अनुरूप हो, इसको स्वीकार नहीं करते थे शमशेर ?"[46] इस पर त्रिलोचन ने हाँ कहते हुए हामी भरी कि 'हाँ वे इसे स्वीकार नहीं करते थे।' शमशेर त्रिलोचन की तरह इस बात में विश्वास नहीं करते थे कि भाषा रचना की अंतर्वस्तु के अनुरूप होनी चाहिए । मसलन, एक शब्द को बरतने का अर्थ उसके पूरे परिवार के शब्दों का प्रयोग करना पड़ेगा। शमशेर की दृष्टि में अंतर्वस्तु की भावना के अनुकूल शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जरूरी नहीं कि कौन-सा शब्द प्रयोग करने से उसके परिवार के कौन-कौन से शब्द छूट रहे हैं, या प्रयोग हो रहे है; या किस परिवार से आ रहे हैं। शमशेर इसमें विश्वास करते थे कि भाव के अनुकूल यदि एक शब्द ही है तो उसके परिवार के दूसरे शब्दों को लाने की कोई जरूरत नहीं होती। जाहिर है कि त्रिलोचन और शमशेर के भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण में बड़ा फ़र्क है।

शमशेर ने सन् 1945 ई. में अपनी रचना शैली को मजबूत करने के उद्देश्य से अपनी डायरी में कुछ बातें याद करने के उद्देश्य से लिखी है। उनकी इन बातों से हमें उनकी भाषा और विषयवस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण का पता चलता है। अपने विचार को

ग्यारह बिन्दुओं में नोट करते हुए उन्होंने लिखा है कि- "(1)कोई समास न हो (2) जिसको समझ लें, एकदम आसानी से, आँख पड़ते ही। (3) जो पढ़कर भुलाया न जा सके। (4) जिसे कोई भी पढ़े बगैर ना रहे। (5) जो एक बार पढ़ने पर ही याद हो जाय (6) जिसको पढ़कर कहे कि बात सोलहो आने खरी हैं। (7) जो हर बार पढ़ने पर ताजा लगे (8) जो एक अपढ़ तक पहुँच जाय जल्दी। (9) जो विदेशियों को भी झुमा दे। (10) जो समय को आगे बढ़ाये यानी आदमी को बड़ा भी बनाए- चाहे जिस तरह। (11) जिसको बार-बार पढ़ने-याद करने की हर आदमी की इच्छा हो।"[47] स्पष्ट है कि शमशेर रचना को केवल पुस्तक में ही नहीं रखना चाहते थे, बल्कि उसे पाठक के स्मृति का हिस्सा बनाने में भी विश्वास करते थे जिसे बिंदु 3 और 5 में देखा जा सकता है। रचना में जीवन की सच्चाई आनी चाहिए कोरी कल्पना रचना को ही अवास्तविकता के धरातल पर पहुँचा देती है। शमशेर की दृष्टि आधुनिक और प्रगतिशील है। वे रचना की सार्थकता आदमी को बड़ा बनाने, बार-बार पढ़ने और याद करने की इच्छा करने तथा विदेशी व्यक्ति के भी रस पाने में समझते हैं। इस तरह उनकी भाषा-सम्बन्धी सोच को बिंदु 1, 2 और 8 से जान सकते हैं। वे भाषा की जटिलता, बोझिलता और सामासिकता के नहीं, बल्कि सहजता और सरलता के पैरोकार हैं। भाषा इतनी सरल और सहज होनी चाहिए कि एक अपढ़ आदमी भी समझ सके।

प्रगतिशील कवियों की यह विशेषता रही है कि वे अपनी रचनाओं की पहुँच जन-जन तक सुलभ कराने के पक्षधर रहे हैं। वे अपढ़ व्यक्ति को भी साहित्य के लिए समान रूप से हकदार मानते हैं। इस तरह साहित्य के लोकतान्त्रिक मूल्य को इन कवियों ने आगे बढ़ाया। केदारनाथ अग्रवाल ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि- "मैंने कविता को सरिता के रूप में जनता तक पहुँचाया है।"[48] इन कवियों के काव्य में जनधर्मी चेतना हमेशा मौजूद रही है। इस सन्दर्भ में मुक्तिबोध का विचार थोड़ा अलग है। वे

'जनता का साहित्य' का अर्थ जनता को तुरंत समझ में आने वाला साहित्य नहीं मानते। 'जनता का साहित्य किसे कहते हैं' अपने लेख में उन्होंने लिखा है- " 'जनता का साहित्य' का अर्थ 'जनता के लिए साहित्य' से है, और वह जनता ऐसी हो जो शिक्षा और संस्कृति द्वारा कुछ स्टैण्डर्ड प्राप्त कर चुकी हो।"[49] इसलिए मुक्तिबोध का साहित्य जनता के लिए है, लेकिन जटिल संवेदना और शिल्प के कारण अपने प्रकृति में दुरूह है। उनके लिए साहित्य का उद्देश्य सांस्कृतिक और मानसिक परिष्कार करना है इसलिए उनके साहित्य के लिए एक शिक्षित और संस्कारवान पाठक की अपेक्षा रहती है। अपने इस निबंध में उन्होंने अपने आलोचकों को जबाव दिया है- "जो लोग 'जनता का साहित्य' से यह मतलब लेते हैं कि वह साहित्य जनता के तुरंत समझ में आये, जनता उसका मर्म पा सके यही उसकी पहली कसौटी है—वे लोग यह भूल जाते हैं कि जनता को पहले सुशिक्षित और सुसंस्कृत करना है। वह फ़िलहाल अंधकार में है। जनता को अज्ञान से उठाने के लिए हमें पहले उसको शिक्षा देनी होगी। शिक्षित करने के लिए जैसे ग्रंथों की आवश्यकता होगी, वैसे ग्रंथ निकाले जायेंगे और निकाले जाने चाहिए। लेकिन इसका मतलब यह नहीं की उसको प्रारंभिक शिक्षा देने वाले ग्रंथ तो श्रेष्ठ हैं, और सर्वोच्च शिक्षा देने वाले ग्रंथ श्रेष्ठ नहीं हैं । ठीक यही भेद साहित्य में भी है, कुछ साहित्य तो निश्चय ही प्रारंभिक शिक्षा के अनुकूल होगा, तो कुछ सर्वोच्च शिक्षा के लिए। प्रारंभिक श्रेणी के लिए उपयुक्त साहित्य तो साहित्य है, और सर्वोच्च श्रेणी के लिए उपयुक्त साहित्य जनता का साहित्य नहीं है, यह कहना जनता से गद्दारी करना है।"[50] जाहिर है मुक्तिबोध ने अपने साहित्य कर्म को लेकर तार्किक जबाव दिया है। इस सन्दर्भ में नंदकिशोर नवल का मानना है- कि "यह कथन काफी तर्कसंगत है, तथापि हमें इसमें यह कमी दिखलाई पड़ती है कि इसमें जनता के लेखकों के सामने जो एक दायित्व होता है, ऐसे साहित्य की रचना, जो जनता के समझ में भी आये और जिससे उसकी साहित्यिक रुचि का धरातल भी ऊपर उठे,

उसकी चर्चा नहीं की गई। यह समस्या जनता के साहित्य के रचयिताओं की रचना-प्रक्रिया से सम्बंधित समस्या है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।"[51] दरअसल, मुक्तिबोध बेहद संवेदनशील प्रबुद्ध और चिन्तनशील रचनाकार हैं। उनकी रचनाधर्मिता में भी ये विशेषताएं मौजूद हैं। ऐसे में उनकी रचना द्वारा कम से कम एक अध्ययनशील और शिक्षित पाठक वर्ग की माँग बनी रहती है।

चयनित कवि अपनी कविता में संवेदना अथवा कथ्य को अक्षत रखते हुए भाषा को सहज बोलचाल के स्तर पर रखने के पक्षपाती हैं। तत्सम या उर्दू-फ़ारसी शब्द वहीं तक स्वीकार्य हैं, जहां तक भावों के अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण में सरलता, सहजता और सादगी बनी रहे। अंतर्वस्तु में निहित भाव और संवेदना को व्यक्त करने में खपने योग्य शब्द ही चयनित किये जाते हैं। इस सन्दर्भ में त्रिलोचन का मत है कि- "कविता में बोलचाल की भाषा आनी चाहिए। जो शब्द खपते हों उन्हें लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। हाँ, कोई फ़ारसी का ज्ञान दिखाने के लिए फ़ारसी के शब्द रखता है, वह गलत है।"[52] उदाहरण द्रष्टव्य है-

1. "बिस्तरा है न चारपाई है,

   ज़िन्दगी ख़ूब हमने पाई है।

   कल अँधेरे में जिसने सर काटा,

   नाम मत लो हमारा भाई है।

   ठोकरें दर-ब-दर की थीं हम थे,

   कम नहीं हमने मुँह की खाई है।"[53]

2. “ज़िंदगी को

वह गढ़ेंगे जो शिलाएँ तोड़ते हैं,

जो भगीरथ नीर की निर्भय शिराएँ मोड़ते हैं।”[54]

निश्चित तौर पर यहाँ ज्ञान के आडम्बर और बोझ का विचार नहीं है। यहाँ पाठकों को चुनौती देने वाली भाषा का मिज़ाज नहीं है। कविता के किले की बनावट भाषाई दुरूहता और जटिलता से नहीं, बल्कि आम जन-जीवन में बोली और प्रयुक्त की जाने वाली सादगीपूर्ण भाषा के ईंटों से हुई है। अतः इन कविताओं की भाषा लोक जीवन से जुड़ी हुई है।

सभी चिंतन पद्धतियाँ भाषा से ही उद्‌भूत हुई हैं। भाषा की समृद्धता चिंतन का स्तर तय करती है। मसलन, एक समृद्ध भाषा में ही उच्च स्तर का चिंतन संभव है। भाषा का निर्माण मेहनतकश वर्ग के जीवन में होता है। काव्य का मूल सम्बन्ध भी उनके जीवन से ही है। अभिजात्य वर्ग सुविधाजीवी होता है। भाषा के निर्माण की संभावना उसमें सबसे कम होती है। जैसे छोटे-छोटे जनजातीय समूहों की अपनी-अपनी भाषाएँ होती हैं। इनका निर्माण श्रम की प्रक्रिया में होता रहता है। हर भाषा मानव-जीवन के विविध अनुभवों, ज्ञान भंडार और विभिन्न दृष्टिकोणों से समृद्ध होती है। भाषा में जीवन का स्पंदन बहुत कम कवियों ने सुना और महसूस किया है। अपने एक साक्षात्कार में त्रिलोचन ने कहा है कि- “उन लहरों के तल में हूँ जिनमें भाषाएँ कितनी बैठ गयी हैं, कितने जीवित सपने बिला गए हैं पानी में मैं उन भाषाओं के तल में पड़ा हूँ जिनमें कितनी ही भाषाएँ डूब गईं, जहाँ भाषाएँ डूब गईं हैं।...जैसे प्राकृत।”[55] स्पष्ट है भाषाएँ केवल शब्द मात्र नहीं हैं बल्कि उसमें हजारों, लाखों वर्षों के समाज के जीवनानुभव, ज्ञान और मूल्य-मान्यताएँ आदि सब कुछ मौजूद होते हैं।

प्रगतिशील कवियों के लिए अलंकार काफी हद तक उपेक्षणीय काव्य-तत्व है। वे इसका प्रयोग बहुत कम करते हैं। इस पर विचार-विमर्श और चिंतन-मनन कम मिलता है। दरअसल, आधुनिकताबोध के कारण बदलते सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में जीवन-यथार्थ के चित्रण का महत्त्व बढ़ गया। जिससे कविता में संवेदना या अनुभूति पक्ष प्रमुख हो गया और अलंकार का महत्त्व घट गया । अलंकारों की बहुलता को केदारनाथ अग्रवाल ने वाणी-व्यसन कहा है। उनका कथन है कि- "अलंकारों की बहुलता वाणी-व्यसन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। परिणाम होता है कि जीवन भुला दिया जाता है। और केवल सौन्दर्य-लिप्सा की पूर्ति का सफल प्रयास होने लगता है इस प्रयास में वाक्पटुता इस हद तक पहुँच जाती है कि उसे कवियों की मानसिक ऐयासी अथवा व्यभिचार कहना पड़ता है।"[56] इस तरह प्रगतिशील कविता में अलंकारों की बहुलता नहीं है। उनका प्रयोग केवल वहीं तक मान्य है जहाँ तक उनकी जरूरत भावों की अभिव्यक्ति और संवेदना की सटीकता को व्यक्त करने हेतु जरूरी हो। उनका मानना है कि अलंकार के चक्कर में पड़कर कवि उलझकर रह जाता है और जीवन को भुला देता है। इस तरह कविता का सौन्दर्य अंतर्वस्तु से अधिक सम्बंधित है।

प्रगतिशील कविता में कई काव्य-रूढ़ियाँ टूटीं। बदली हुई दृष्टि से कवियों ने रचनाओं में नवीन दृष्टिकोण का सृजन किया। इन कवियों ने जन जीवन के लिए लिखी गयी कविता में अलंकार का स्थान बेहद कम माना है। इसे लक्षित करते हुए त्रिलोचन ने लिखा है कि- "कविता के लिए अलंकार आवश्यक तत्व था किन्तु आज की कविता में यही उतार फेंका गया। पहले पांचों टूक कपड़े पहनकर निकलने में सम्मान की बात थी, आज हम केवल कुरता, पाजामा पहनकर बाहर निकल आये।"[57] स्पष्ट है एक समय में कविता में बाह्य सौन्दर्य को बढ़ा देना विद्वत्ता, सम्मान की बात थी, किन्तु आज उस दृष्टि को ठीक नहीं माना जाता है। कविता भी जन-जीवन से

जुड़कर अपनी अभिव्यक्ति में सरल हो गयी। सामान्य जन की तरह कविता में भी सादगी आ गयी। भाषाई चमक-दमक का लिबास उतार दिया। हालाँकि यह सादगी सभी कवियों के यहाँ समान रूप से नहीं है। यह सबसे अधिक नागार्जुन-केदार-त्रिलोचन की कविताओं में मौजूद है।

प्रगतिशील कविता में शिल्प के अवहेलना का आरोप भी लगाया जाता है। यह माना जाता है कि ये कविताएँ कलात्मक रूप से कमजोर हैं। इनमें सपाटता और वर्णनात्मकता अधिक है। प्रगतिशील कविता के शिल्प के सम्बन्ध में नामवर सिंह ने महत्वपूर्ण टिप्पणी की है। उन्होंने प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की कविताओं के अंतर्वस्तु और शिल्प की तुलना करते हुए लिखा है कि- "बहुत सजाव-सिंगार और पेंचीदगी प्रगतिशील कविता में नहीं मिलती। अपनी बात को सुलझाकर उसे कितने सहज ढंग से कह दिया जाये- यही प्रगतिशील कवि का प्रयत्न रहता है। उसके भावों की तरह भाषा भी गाँठ-रहित होती है। प्रगतिशील कवि अपना हर शब्द और हर वाक्य चमत्कारपूर्ण बनाने की चेष्टा नहीं करता। यदि दो-चार शब्द बेकार भी आ जायें तो वह उन्हें निकाल देने के लिए बहुत चिंतित नहीं होता। उसका विश्वास है कि जबर्दस्त भाव भाषा की ढीली-पोली के बावजूद अपने को प्रकाशित करते रहते हैं। इसलिए प्रगतिशील मुक्तछंदों के बंद प्रयोगवादी कविता की अपेक्षा काफी शिथिल मिलेंगे लेकिन यही सहजता उनकी शोभा है।"[58] इस तरह प्रगतिशील कविता में शिल्प के प्रति अलग दृष्टिकोण है। यह अपने मूल्यों और मान्यताओं में समाजवादी और मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित है।

प्रगतिशील कवियों की श्रम-सम्बन्धी कविताएँ मूलतः 'लय' की डोर में बधीं हैं। कहीं गद्य और विचार की लय तो कहीं बोलचाल की लय मौजूद है। मुक्तिबोध कविता में भावनाओं और विचारों पर नियंत्रण बनाये रखने में लय की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं। उनका कथन है कि- "मैं कविता में लय को आवश्यक मानता हूँ। इससे कुछ-न-कुछ नियंत्रण रहता है।"[59] जाहिर है कविता की सृजन प्रक्रिया में भावों

और विचारों में पकड़ रखने तथा तारतम्यता बनाए रखने में लय महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह नियंत्रण पैदा करती है। इसका सम्बन्ध संरचना से है। लय का टूटना संरचना में विखंडन पैदा करता है।

चयनित कवियों की श्रम-सम्बन्धी कविताओं में बिम्बधर्मिता भी मौजूद है। इसमें दृश्य या चाक्षुष बिम्ब, श्रव्य बिम्ब, स्पृश्य बिम्ब, सरल बिम्ब, मिश्र बिम्ब, जटिल बिम्ब, एकल और संश्लिष्ट बिम्ब इत्यादि मौजूद हैं। जैसे 'कानपुर' कविता में एक दृश्य बिम्ब का उदहारण-

"कई टनों के पर्वत : जैसे / सड़क कूटने वाले इंजन, /

मनों बोझ के टायर पहने / चलने वाले लाखों मोटर, /

लोहे की पटरी की सड़कें, / भारी भरकम रेलगाड़ियाँ /

उस हड्डी पर–उस पसली पर / चलने-फिरने में तन्मय हैं।"[60]

एक जटिल बिम्ब का उदाहरण-

"सावधान! यह मार्ग तिलिस्मी है अचीन्ह ।

मंत्रानुशासनों का काला जादुई देस

अब हुआ शुरू ।

औ' उसके बीचोबीच तुम्हारा मार्ग –

भूरा साँप- । !"[61]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- "काव्य का काम कल्पना में बिम्ब (इमेज) या मूर्तभावना उपस्थित करना है, बुद्धि के सामने कोई विचार (कांसेप्ट) लाना नहीं।"[62] इस तरह बिम्बात्मकता का गुण कविता को प्रभावशाली बनाता है। अर्थबोध को सुगम करता है। सभी प्रगतिशील कवियों ने बिम्बधर्मी कविताओं का सृजन किया है।

प्रगतिशील कवियों ने परंपरागत छंदों को यदा-कदा प्रयोग किया है। वे मुक्त छंद में रचना करना प्रायः पसंद करते हैं। छंदों के मोह को त्यागना आसान नहीं था। मुक्त छंद में रचना करने हेतु रचनाकारों के दृष्टिकोण में बदलाव की जरूरत थी जिसे निराला ने शायद सबसे पहले पहचाना। 'परिमल' की भूमिका में उन्होंने मनुष्य की मुक्ति उसके कर्मो के बंधन से और कविता की मुक्ति छंदों के बंधन से मानी। केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है कि- "छायावाद के बाद यथार्थवाद और प्रगतिवाद आया, तब कवि की दृष्टि आसमान से उतर कर भौतिक जगत में आयी और आर्थिक धरातल का कठोर स्पर्श मिला। मनुष्य की भूख ने, मनुष्य पर मनुष्य के शासन के अत्याचारों और शोषण की विभीषिका ने उसे सक्षम बनाया कि वह मुक्त-छंद में जनता की बात व्यक्त करे।"[63] इस प्रकार छंदों से मुक्ति का सम्बन्ध जनता से उसकी बोली-भाषा में कविता सृजित करने से है। इस तरह गद्य कविता का सृजन भी शुरू हुआ।

प्रगतिशील कवियों ने छंदों के स्तर पर प्रयोग भी किये। कुछ विदेशी छंदों को अपने भावानुकूल बनाया। इस क्रम में उसका भारतीयकरण भी हुआ। जैसे त्रिलोचन ने इटली के सॉनेट छंद को भारतीय रूप दिया। उन्होंने सॉनेट को रोला छंद के आधार पर चौदह पंक्तियों में चौबीस मात्राओं वाले चतुष्पदी के रूप में अपनाया। उन्होंने उसमें बोलचाल की भाषा और लय का प्रयोग किया। इस प्रकार इस चतुष्पदी को लोकरंग में रंग दिया।

प्रगतिशील कवियों के छंद और संगीतात्मकता सम्बन्धी दृष्टि को लेकर नामवर सिंह ने लिखा है कि- "प्रगतिशील कवि जानबूझकर विचित्र धुन निकालने का प्रयत्न तो नहीं करते; लेकिन यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील कवियों ने लोकगीतों की अनेक नई धुनों को कविता में पुनर्जीवित किया।"[64] इस प्रकार प्रगतिशील कवियों ने कविता में लोकजीवन के विविध पहलूओं को चित्रित किया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर चयनित सभी प्रगतिशील कवियों की काव्य-दृष्टि के विषय में यह कहा जा सकता है कि- सामान्य तौर पर सभी कवियों पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव है। उनकी कविताओं में मार्क्सवादी रक्तिम क्रांति का उद्घोष और हँसिया, हथौड़ा जैसे प्रतीक मिलते हैं। वे परमात्मवाद को नकार कर इसी जगत को सत्य मानते हैं। मनुष्य को धरती का श्रेष्ठ प्राणी मानते हैं। वे समाज से शोषण और असमानता इत्यादि मानवता विरोधी तत्वों को नष्ट करना चाहते हैं। एक समतामूलक, न्यायपरस्त और स्वतंत्रता आधारित समाज की स्थापना में विश्वास रखते हैं। वे 'कला कला के लिए' नहीं बल्कि 'कला समाज के लिए' सिद्धांत को मानते हैं। कला को सामाजिक बदलाव करने वाली हथियार की तरह स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में कला कर्म का विधानमंडल तैयार करती है। इसीलिए वे कविता सृजन के लिए कवि में समाजवादी चेतना और जनवादी वस्तुनिष्ठता का होना स्वीकार करते हैं।

प्रगतिशील कवि संवेदना की तुलना में शिल्प को कम महत्त्व देते हैं, इसीलिए अधिकतर कविताएँ शिल्प की दृष्टि से कमजोर हैं। दरअसल, कविता में केवल विचारबोध नहीं होता है बल्कि उसमें भावबोध और ऐन्द्रियबोध भी होता है| किसी भी एक विचारधारा से प्रेरित और प्रभावित होकर काव्य-सृजन करने पर कविता नारेबाजी के बहुत करीब पहुँच जाती है।

प्रगतिशील कवि वैज्ञानिक, मूर्त और तेजस्वी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। उनकी दृष्टि में रचना में इंसान का सच्चा दर्द, भावुकता, ललक, आशा-आकांक्षा, उल्लास और उदासी, राग-विराग होना चाहिए। वे कवियों में सत्यदर्शिता, सभी देशों, धर्मों और सभी साहित्यों से प्यार का भाव होने के साथ ही साथ सबसे अपना दिल जोड़ने को आवश्यक मानते हैं।

प्रगतिशील कवि जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को कला में सजीवतम रूप में चित्रित करना अपनी साधना का हिस्सा मानते हैं। निरंतर चल रहे मनुष्य के क्रिया-व्यापार में निहित मानवतावादी मूल्यों की पहचान करना और सृजन के रूप में अपनाना उनके काव्य-दृष्टि का हिस्सा है। उनकी दृष्टि में कविता सृजन के लिए कलात्मकता का गुण होना चाहिए। कवि वैज्ञानिक दृष्टि से विषयवस्तु पर विचार करता है और स्थितियों को अपनी आँखों से देखकर अपनी अनुभूति की रोशनी में समझता है। उन्हें तर्क से परखकर निजी शैली में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार प्रगतिशील कवि रचना का उद्देश्य आदमी को और नेक आदमी बनाने में विश्वास रखता है। एक अच्छी कविता को आदमी के विकास क्रम की मानवीय गरिमा की कविता मानता है।

प्रगतिशील कविता ने अभिव्यक्ति के स्तर पर सहजता और सरलता को अपनाया है। प्रगतिशील कवि कविता में गाँठ रहित भाव और भाषा का प्रयोग करते हैं। उनकी दृष्टि में कविता की भाषा समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों में मौजूद परस्पर संचार की भाषा होनी चाहिए। इन कवियों का विचार है कि भाषा अंतर्वस्तु के अनुरूप होनी चाहिए, जो शब्द खपते हों उन्हें लेने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। ज्ञान का आडंबर नहीं होना चाहिए तथा कविता की भाषा समासरहित होकर भी अपने प्रभावशीलता में बेजोड़ होना चाहिए।

इस प्रकार प्रगतिशील कविता में बहुत सजाव-श्रृंगार और पेचीदगी नहीं है। ये कवि अलंकार की अधिकता को गैरजरूरी और वाणी व्यसन मानते हैं। विषयवस्तु को ठीक-ठीक चित्रित करने के लिए जिस सीमा तक अलंकार सहायक है, उसका महत्त्व वहीं तक स्वीकार किया है। छंद के बंधन को न मानते हुए अधिकांशतः मुक्त छंद में ही कविताएँ लिखीं हैं। लय और बिम्ब को कविता के लिए जरूरी माना गया है।

इस प्रकार प्रगतिशील कवियों की काव्य-दृष्टि ने कविता को एक नई दिशा दी। कविता आम जनता के और करीब आयी। जन जीवन में मौजूद समस्याओं, कठिनाइयों और संघर्षों को कविता में स्थान मिला। कविता अब और भी सहज हो गयी। 'मजदूरों, किसानों के जीवन की विभिन्न समस्याएँ अब काव्य-विषय के रूप में अपनायी गईं। उनके भावों और विचारों, संघर्ष के ढंगों, समस्त आन्दोलनों और उसकी प्रक्रियाओं को कविता के आवश्यक तत्त्व समझा जाने लगा।' अब रचनाओं में निम्नवर्गीय विविध श्रमिक चरित्र और उनका श्रमशील- जीवन चित्रित हुआ। समाज की उन्नति में अपने श्रम से योगदान देने वाले मनुष्येतर प्राणियों को भी उचित स्थान मिला।

सहायक-ग्रंथ सूची:

---

[1] समय-समय पर : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 35, साहित्य भंडार इलाहाबाद प्रकाशन, 2010

[2] तारसप्तक : सिद्धांत और कविता, कवियों के काव्य सिद्धांत और उनकी कविता : बोधिसत्व, पृष्ठ 100, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 2016

[3] नई कविता का आत्मसंघर्ष : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ 62, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1977

[4] वही, पृष्ठ 66

[5] समय-समय पर : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 27, साहित्य भंडार इलाहाबाद प्रकाशन, 2010

[6] वही, पृष्ठ 25

[7] नई कविता का आत्मसंघर्ष : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ 45, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1977

[8] कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 75, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति संस्करण 2004

[9] तारसप्तक : अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), पृष्ठ 21, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , नौवाँ संस्करण 2005

[10] दूसरा सप्तक : अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), पृष्ठ 88, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण 1999

[11] खुली आँखें खुले डैने : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 11, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[12] तारसप्तक : अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), पृष्ठ 22-23, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, नौवां संस्करण 2005

[13] नागार्जुन चयनित कविताएँ : मैनेजर पांडेय (चयन एवं संपादन), पृष्ठ नौ (भूमिका), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, पाँचवी आवृत्ति संस्करण 2019

[14] अनहारी हरियाली : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 8, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[15] तारसप्तक : अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), पृष्ठ 22, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, नौवाँ संस्करण 2005

[16] समय-समय पर : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 6, साहित्य भंडार इलाहाबाद प्रकाशन, 2010

[17] भारतीय साहित्य के निर्माता शमशेर बहादुर सिंह : प्रभाकर श्रोत्रिय, पृष्ठ 29, साहित्य अकादेमी, पुनर्मुद्रण संस्करण 2011

[18] साक्षात् त्रिलोचन : कमलाकांत द्विवेदी, दिविक रमेश, पृष्ठ. 172, सिद्धार्थ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली,1990

[19] मेरा घर : त्रिलोचन, पृष्ठ 34, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2002

[20] पंख और पतवार : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 11, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[21] मुक्तिबोध रचनावली भाग- 2 : नेमिचंद जैन(संपा.), पृष्ठ 447, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 1986

[22] नई कविता का आत्मसंघर्ष : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ 49, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1977

[23] वही, पृष्ठ 49

[24] पंख और पतवार : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 14, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[25] नई कविता का आत्मसंघर्ष : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ 55, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1977

[26] भारतीय साहित्य के निर्माता शमशेर बहादुर सिंह : प्रभाकर श्रोत्रिय, पृष्ठ 55, साहित्य अकादेमी, पुनर्मुद्रण संस्करण 2011

[27] काल तुझसे होड़ है मेरी : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 8, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2002

[28] भारतीय साहित्य के निर्माता शमशेर बहादुर सिंह : प्रभाकर श्रोत्रिय, पृष्ठ 41, साहित्य अकादेमी, पुनर्मुद्रण संस्करण 2011

[29] एक साहित्यिक की डायरी : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ 18, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, चौथा संस्करण 1976

[30] मुक्तिबोध की कविताएँ : बिम्ब और प्रतिबिम्ब : नंदकिशोर नवल, पृष्ठ 151, प्रकाशन संस्थान, 2009

[31] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 6, साहित्य भंडार इलाहाबाद, संस्क. 2009

[32] दूसरा सप्तक : अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), पृष्ठ 87, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण 1999

[33] होड़ में पराजित काल- उद्भावना शमशेर बहादुर सिंह विशेषांक : विष्णु खरे(संपा.), पृष्ठ 15, अंक 97 फरवरी 2012

[34] काल तुझसे होड़ है मेरी : शमशेर बहादुर सिंह, डॉ. रंजना अरगड़े (चयन), पृष्ठ 9, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2002

[35] कविता के सम्मुख : गोबिन्द प्रसाद, पृष्ठ 43, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2015

[36] दूसरा सप्तक : अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), पृष्ठ 87, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पेपरबैक संस्क. 1999

[37] कविता के सम्मुख : गोबिन्द प्रसाद, पृष्ठ 44, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2015

[38] अपूर्वा : केदारनाथ अग्रवाल, अशोक त्रिपाठी (संपा.), भूमिका, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[39] अनहारी हरियाली : केदारनाथ अग्रवाल, भूमिका, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[40] पुष्पदीप : केदारनाथ अग्रवाल, अशोक त्रिपाठी (संपा.), भूमिका, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[41] नई कविता का आत्मसंघर्ष : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ 68, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1977

[42] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 6, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[43] काव्य और अर्थबोध : अवधेश प्रधान त्रिलोचन, पृष्ठ 64, साहित्य वाणी, इलाहाबाद, 1995

[44] दूसरा सप्तक, अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), पृष्ठ 85, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण 1999

[45] होड़ में पराजित काल : उद्भावना शमशेर बहादुर सिंह विशेषांक, संपा. विष्णु खरे, पृष्ठ 544-545, अंक 97 फरवरी 2012

[46] वही, पृष्ठ 545

[47] शमशेर का संसार : रमण सिन्हा, पृष्ठ 23, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

[48] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 201, साहित्य भण्डार इलाहाबाद, 2009

[49] मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना : नंदकिशोर नवल, पृष्ठ 433, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

[50] वही, पृष्ठ 433

[51] वही, पृष्ठ 433

[52] साक्षात् त्रिलोचन : कमलाकांत द्विवेदी, दिविक रमेश, पृष्ठ 75, सिद्धार्थ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1990

[53] प्रतिनिधि कविताएँ, त्रिलोचन : केदारनाथ सिंह (संपा.), श्याम सुशील (सह-संपा.), पृष्ठ 21, राजकमल पेपरबैक, तीसरा संस्करण, 2017

[54] जो शिलाएँ तोड़ते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, अशोक त्रिपाठी (संपा.), पृष्ठ 198, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[55] साक्षात् त्रिलोचन : कमलाकांत द्विवेदी, दिविक रमेश, पृष्ठ 87, सिद्धार्थ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1990

[56] समय-समय पर : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 25, साहित्य भंडार इलाहबाद प्रकाशन, 2010

[57] काव्य और अर्थबोध : अवधेश प्रधान त्रिलोचन, पृष्ठ 93, साहित्य वाणी इलाहाबाद, 1995

[58] आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ : नामवर सिंह, पृष्ठ 81, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2014

[59] नई कविता का आत्मसंघर्ष : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ 192, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1977

[60] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 191, साहित्य भण्डार इलाहाबाद, संस्क 2009

[61] मुक्तिबोध रचनावली भाग-1 : नेमिचंद्र जैन(संपा.), पृष्ठ 249, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपर बैक्स 1985

[62] हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली : डॉ. अमरनाथ, पृष्ठ 248, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण 2015

[63] समय-समय पर : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 35, साहित्य भंडार इलाहबाद प्रकाशन, 2010

[64] आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ : नामवर सिंह, पृष्ठ 82, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2014

तीसरा-अध्याय

प्रगतिशील कविता में श्रम-सौन्दर्य : संवेदना के आयाम

3.1. खेती-किसानी से जुड़ी श्रम-सम्बन्धी कविताओं में संवेदना के आयाम

3.2.कारखानों और इतर क्षेत्र में श्रम करने वाले श्रमिकों से जुड़ी कविताओं में संवेदना के आयाम

अंग्रेजी का 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' अनुदित होकर हिंदी में 'प्रगतिशील साहित्य' के रूप में जाना जाता है। ई.एम. फार्स्टर के सभापतित्व में फ्रांस की राजधानी पेरिस में हुए 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' के प्रथम अधिवेशन से अंग्रेजी में यह काफी चर्चा का विषय रहा है। भारत में मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर के सहयोग से 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। जिसका प्रथम अधिवेशन प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ। यहीं से प्रगतिशील साहित्य का प्रचार-प्रसार शुरू हुआ। प्रगतिशीलता तो हिंदी साहित्य में आरम्भ से ही मौजूद रही है लेकिन अब जिस अर्थ में प्रगतिशील साहित्य की चर्चा होती है उसके पीछे दरअसल, मार्क्सवादी, समाजवादी एवं साम्यवादी जीवन दर्शन जुड़ा हुआ है। इसके प्रभावस्वरूप साहित्य-सृजन गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं में हुआ है। इसके शुरुआती प्रभाव को कविता में रेखांकित करते हुए नामवर सिंह ने लिखा है कि- "... कविता में पहली बार किसानों- विशेषतः मजदूरों के गंदे पैरों की पवित्र धूल दिखाई पड़ी। सन्ध्या के झुटपुटे में पन्त जी को चिड़ियों के 'टी-वी-टी – टुट्-टुट्' के साथ ही डगमग डग घर का मग मापते हुए कुछ श्रमजीवी दिखाई पड़ गए; और टीले पर उन्हीं के नंगे तन गदबदे बदन वाले लड़के भी आ गए। कविता में पहली बार इतनी व्यापक सहानुभूति का प्रवेश हुआ। परिस्थितिवश यह सहानुभूति 'बौद्धिक' ही थी और यह मानवता भी केवल सहानुभूति रही, फिर भी हृदय की इस विशालता ने साहित्य में नवजीवन का संचार कर दिया- और साहित्य का क्षेत्र व्यापक बना दिया और उसमें उच्चकोटि की नैतिकता प्रतिष्ठित कर दी।"[1] यहाँ से लेखकों की दृष्टि सामाजिक यथार्थ की ओर झुकी। गद्य में तो प्रेमचंद पहले से ही इस दृष्टिकोण से लिख रहे थे, लेकिन कवियों में यह बदलाव धीरे-धीरे परिलक्षित हुआ। उनके छायावादी संस्कार में धीरे-धीरे बदलाव हुआ।

प्रगतिशील कविता जीवन के वैविध्यमय रूप-रंग और छवियों से भरी पड़ी हैं। इसमें रचनाकारों की सामाजिक-यथार्थ दृष्टि और ग्रामीण-संस्कृति उन्मुक्त

सहजता के साथ है। प्रकृति पर स्वस्थ्य सामाजिक प्रगतिशील दृष्टि से विचार किया गया है। इसमें किसान-मजदूर के जीवन गीत, उनका संघर्षमय जीवन के साथ श्रम-शक्ति पर आस्था भी है। इसमें प्रेम का स्वस्थ्य, स्फूर्तिदायक और उदात्त रूप अभिव्यक्त है। निराशा में आशा की दीप्ति, उत्साह, उल्लास एवं उमंग है। गाँव के विविध चित्र और चरित्र हैं। सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ का वर्णन है। शोषित, उत्पीड़ित, पिछड़े और अतिपिछड़े जन की पक्षधरता है। अपने गाँव, जनपद, ग्रामीण जन एवं परिवेश से प्रेम का भाव है । इस तरह मातृभूमि और देशप्रेम का भाव है जिसमें छोटे-छोटे गाँव, जनपद, तालुका की मिटटी, वातावरण और लोगबाग शामिल है। संवेदना के साथ-साथ प्रगतिशील साहित्य में शिल्प के प्रति भी यह दृष्टि मौजूद है। प्रगतिशील कविता में शिल्प के प्रति दृष्टिकोण को नामवर सिंह के इस कथन से समझा जा सकता है कि- "बहुत सजाव-सिंगार और पेचीदगी प्रगतिशील कविता में नहीं मिलती । अपनी बात को सुलझाकर उसे कितने सहज ढंग से कह दिया जाये- यही प्रगतिशील कवि का प्रयत्न रहता है। उसके भावों की तरह भाषा भी गाँठ-रहित होती है।"[2] इस तरह प्रगतिशील कविता में सामान्यतः आम जनजीवन में बोली और समझी जाने वाली भाषा मिलती है। अलंकारों का प्रयोग भावों को सघन, प्रभावी और संप्रेषणीय बनाने एवं भाषा के सौन्दर्य को बढ़ाने हेतु होता है न कि, भाषाई पांडित्य को दिखाने के लिए। काव्य-सृजन मुक्त छंद में करने के साथ ही परम्परागत छंदों के भूमि में रहकर नए प्रयोग भी मिलते हैं।

प्रगतिशील कविता आधुनिक दृष्टिकोण से युक्त है। वह अपने मूल्यों, मान्यताओं और आदर्शों में नूतन है। प्रेम और प्रकृति के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अंतर्विरोधों आदि पर नए दृष्टि से विचार किया गया है। इसमें श्रम-

शक्ति में आस्था एवं विश्वास मौजूद है। श्रम को एक सामाजिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा है। चयनित सभी कवियों की कविताओं में श्रम एवं श्रमजीवी समाज के संवेदनाओं से जुड़े विविध आयाम हैं। इसलिए अध्ययन की सुविधा से इन्हें दो वर्गों में बांटकर विवेचन-विश्लेषण करना सुविधाजनक रहेगा। पहला खेती-किसानी से जुड़ी श्रम-सम्बन्धी कविताओं में संवेदना के आयाम । दूसरा कारखानों में एवं कारखानों से इतर क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों से जुड़ी कविताओं में संवेदना के आयाम ।

3.1 - **खेती-किसानी से जुड़ी श्रम-सम्बन्धी कविताओं में संवेदना के आयाम :-**

चयनित कवियों के श्रम-सम्बन्धी कविताओं में कृषक-जीवन से जुड़ी संवेदना के विविध आयाम हैं। इसमें कृषक-जीवन का आधार बैल और बछड़ों के प्रति भावपूर्ण कविताएँ हैं। जैसे- 'भोगिला', 'बछड़ा', 'देबी के बैल' और 'बैल' इत्यादि। खेतों में जुताई-बुआई के समय होने वाले श्रम से जुड़ी कविताएँ हैं। जैसे- 'भूमि धन्य हुई', 'अपने खेत में', 'करमवान' इत्यादि। यहाँ सिंचाई करते हुए किसान दंपत्ति के भावपूर्ण चित्र हैं। लगी हुई फसल का सौन्दर्य है, किसान-मन में उठने वाले सुखद भविष्य की आशा और उम्मीद है। पकी हुई फसल काटने पहुँचे किसानों के मन का उमंग और उल्लास है। खेत-खलिहान से घर पर अनाज पहुँचने के बाद किसानों के ख़ुशी का चित्र है। श्रम करने के दौरान गाये जाने वाले श्रम-गीत भी हैं। जैसे- ओसौनी का गीत, मजदूरी का गीत आदि।

ग्रामीण परिवेश के किसानी-जीवन में महिलाओं की महत्वपूर्ण सहभागिता होती है। प्रगतिशील कविता में अलग-अलग तरह के श्रम करती महिलाओं का चित्र है। चक्की से आटा पीसती, भोजन पकाती और घर को संभालती, खेत में मेहनत करती और बाज़ार में सब्जी बेचती यानी घर में घुटते रहने से लेकर बाज़ार में सब्जी बेचने

तक के भावपूर्ण चित्र मौजूद हैं। इस सन्दर्भ में 'गाँव की औरतें', 'सीता मैया', 'घर का अनुभव', 'घर की घुटन में पड़ी औरतें', 'चंपा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'परदेशी के नाम पत्र' और 'सब्जी वाली बुढ़िया' जैसी कविताएँ देखी जा सकती हैं। ग्रामीण-जीवन में मौजूद अलग-अलग तरह के लोगों की जीवन-शैली और जीवन-प्रसंग भी मौजूद है। इस सन्दर्भ में 'पैतृक संपत्ति', 'नगई महरा', 'भोरई केवट' जैसी कविताएँ मौजूद हैं। किसानों के जीवन से कवियों ने बैल, बैलगाड़ी, गेंहूं जैसे प्रतीक लेकर राजनीतिक चेतना से युक्त कविताएँ भी लिखीं हैं। जैसे केदार की कविता 'गेहूं', 'बैलगाड़ी', शमशेर की 'बैल' और मुक्तिबोध की कविता 'इसी बैलगाड़ी को' देखा जा सकता है। शमशेर की कविता 'बैल' आत्मचित्रण से आगे बढ़कर सम्पूर्ण मनुष्य-समाज के श्रम से सम्बंधित है। उनकी 'स्वतंत्रता दिवस पर-1940' और 'बम्बई में वर्ली के ७० किसानों को देखकर' जैसी कविताएँ; किसानों-मजदूरों के क्रांतिधर्मी और परिवर्तनकामी चेतना का चित्रांकन करती हैं।

केदारनाथ अग्रवाल खेतों में चल रही मेहनत को दूर से नहीं बहुत करीब से उसे महसूस कर कविता में सृजनात्मक रूप देते हैं। जैसे कल के सुखद भविष्य की आशा में बीज बो रहे कर्मवान किसान के उम्मीद को इस तरह सृजित किया है-

"माटी का यह खेत जोतकर

करमवान बो रहा बीज-बल

पहले अंकुर नए उगेंगे

फिर उपजेगी नई फसल कल"[3]

इसी भावभूमि की कविता 'भूमि धन्य हुई' भी है। जिसमें हिम्मती किसानों ने अपने हिष्ट-पुष्ट बैलों के सहयोग और श्रम से खेत की नमी चले जाने के बाद भी बुआई किया है। वे 'दिगंत-व्यापी आशा' से खेत का एक-एक इंच जोत कर कोटि-कोटि प्यारे बीजों को बोकर धरती को भी धन्य और प्रसन्न बना देते हैं। नागार्जुन की कविता 'अपने खेत में' जनवरी के प्रथम सप्ताह में दिन के ढाई बजे तक गेहूं के बुआई के संकल्प भाव को लेकर रची गयी है। इसमें काव्य-नायक अपने खेत में हल चला रहा है। हल चलाते हुए अपने जीवन अनुभव को बयां करता है-

"जनवरी का प्रथम सप्ताह ...

खुशगवार दुपहरी धूप में

इत्मीनान से बैठा हूँ...

अपने खेत में हल चला रहा हूँ

इन दिनों बुआई चल रही है

इर्द- गिर्द की घटनाएँ ही

मेरे लिए बीज जुटाती हैं"[4]

कवि मानस से युक्त इस कविता का किसान छोटी-छोटी घटनाओं की ओर बहुत संवेदनशील तरीके से ध्यान देता है क्योंकि ये घटनाएँ ही चेतना में सृजन का निर्माण करती हैं।

'बैल' किसान जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण सहचर रहा है। आज ट्रैक्टर एवं अन्य नवीन कृषि उपकरण आने से इस पशु का अखिल भारतीय स्तर पर महत्त्व भले कम हुआ है लेकिन अभी भी यह सुदूरवर्ती गांवों के लिए बहुत महत्त्व का पशु है। खेतों की जुताई करने के अलावा अन्य बहुत से कामों के लिए यह अपरिहार्य

है। यह किसान जीवन का प्रतीक बन चुका है। प्रगतिशील कवियों के यहाँ इसकी श्रमशीलता और कर्मठता जैसे नैसर्गिक गुण को बहुत महत्त्व प्राप्त हुआ है। मानव के सर्वोच्च मूल्य जिजीविषा को जीवन भर अपने श्रम से पोषित करते-रहने के कारण इस पर कविताएँ विविध दृष्टिकोण से लिखी गई हैं। जैसे 'भोगिला', 'देबी के बैल' शीर्षक कविताएँ किसान-जीवन में बैल के सांस्कृतिक महत्त्व को लेकर लिखी गयी हैं। दूसरी तरफ तो 'बैलगाड़ी' और 'इसी बैलगाड़ी को' जैसी कविताएँ राजनीतिक चेतना से लिखीं गयी हैं। इसी तरह शमशेर की 'बैल' कविता मनुष्य और उसकी श्रमशीलता से जुड़ी है। इसके संवेदना का आयतन इतना विस्तृत है कि पूरी दुनियाँ बैल के श्रम से जुड़ती प्रतीत होती है। उदाहरण-

"कभी-कभी मैं अपने इसी श्रम में

कहाँ खो जाता हूँ, कुछ पता नहीं चलता

यह सारी दुनियाँ मुझे बैल मालूम होती है

बाँ।।।।।। ! बाँ।।।। ! बाँ।।।।। !"[5]

'देबी के बैल' शीर्षक कविता में तो बैलों के चोरी होने का दर्द और पुनः एक जोड़ी बैल खरीद लाने की कथा गंवई शैली में कही गयी है एक काव्यांश-

"देबी के बैल कोई खोल ले गया ।

रस्सी समेत कोई चोर ले गया ।।

बेटों की जोट कोई मार ले गया।

आँखों में आँसू की धार दे गया।।

काली थी रात कोई भाग्य ले गया।

सोते में कोई अभाग्य दे गया।"[6]

इसे पढ़कर प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की कथा' याद आती है। इस कविता के विषय में विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि- "यह कविता से ज्यादा ग्राम-वार्ता है। मानो गाँव का कोई सहानुभूति रखने वाला व्यक्ति देवी की हालत का बयान कर रहा हो। कवि, देवी की हालत का बयान देवी जैसों के मुहावरे में कर रहा है। यदि इसमें गाँव का मुहावरा, सरलता, छोड़कर कोई भद्रलोकीय शैली अपनाई जाय तो कविता में ऐसी मार्मिकता नहीं रह जायेगी। यहाँ सरलता मार्मिकता का रूप है।"[7]

इसी तरह एक कविता का शीर्षक है 'भोगिला'। शीर्षक देखकर यह अंदाज लगाना मुश्किल है कि यह एक बैल के बारे में कविता है। दरअसल, किसान अपने पशुओं को परिवार के सदस्य की तरह प्यार करता है। इसलिए नामकरण भी वैसा होना स्वाभाविक है। भोगिला पारिवार के सदस्य से कम नहीं है; वह 'काठी का बलीन, पुष्ट और प्रवीन है। उसकी चाल अकाट्य तर्क की तरह है। उसमें ज्ञान की तरह समय से गंतव्य पर पहुंचने की आदत है, न राह में रुकने, न चलते-चलते थकने की अक्षमता और योग्यता है। इस तरह इस पशु के चित्रण से कवि ने कर्मठता और कर्तव्य-परायणता जैसे नैतिक मूल्यों और आदर्शों का सृजन किया है। इसी तरह 'बछड़ा' शीर्षक कविता में गाय का नन्हा, कोमल, चंचल, काजलयुक्त आँखों वाले बछड़े का चित्रण है। इसमें उसे परिवार के बच्चे की तरह प्यार और दुलार देने का भाव है साथ ही खेतों में हल लेकर जाने की आशा और उम्मीद है।

'बैल' और 'बैलगाड़ी' प्रतीक की तरह भी प्रयुक्त हुए हैं। केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'बैलगाड़ी' औपनिवेशिक चेतना से युक्त है। यह अंग्रेजी सत्ता का प्रतीक है। सन् 1946 ई. की इस कविता में अंग्रेजी सत्ता की बैलगाड़ी की प्रगतिशील

भारत में न चल सकने की संभावना व्यक्त की गयी है। शमशेर की कविता 'बैल' में शमशेर का यथार्थवादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। इसमें 'बैल' मेहनतकश मनुष्य का प्रतीक है। इसमें जिंदगी के जुए में जुतकर जी तोड़ श्रम करने वाले मनुष्य के जीवन-संघर्ष का भाव निहित है। साथ ही सम्पूर्ण मानव-समाज के प्रत्येक मनुष्य के श्रमरत होने की बेबसी का भाव भी है। दिन-रात काम में जुटे रहने वाले मनुष्य की तुलना काली कड़ी कूब वाले बैल से की गयी है। भाव दृश्यमान सा प्रतीत होता है-

"मैं वह गुट्ठल काली कड़ी कूबवाला बैल हूँ

जो अकेला धीरे-धीरे छः मील खींचकर ले जाते हुए

ठेले पर ऊपर तक लदा हुआ माल

स्टेशन से दूर गोदाम तक

चुपचाप धीरे-धीरे, आंखे बाहर को निकली हुईं,

त्यौरी चढ़ी हुई, काँधे जोर लगाते हुए

सीना और छाती आगे को झुककर, जोर लगाते हुए

राने भरी हुईं गर्म पसीने से तर, मगर

ज़ोर लगाती हुईं,

नथुने फूले हुए, साँस और दम

अपनी ज़ोर आजमाई में लगे हुए"[8]

इस कविता में चित्रित 'बैल' को विश्वनाथ त्रिपाठी ने शमशेर का ही आत्मचित्रण बताया है। वे इसे 'न बैल पर, न मेहनतकश पर बल्कि खुद पर' लिखी हुई कविता मानते हैं। उनका कथन है कि- "मैं यानी शमशेर । इसमें आत्मचित्रण है। दुखहरन मास्टर, चित्रकूट के यात्री, या काले अच्छर न जानने वाली चंपा जैसे वस्तुगत चित्रण नहीं। 'वह गहरा लगातार श्रम / पुट्ठों को श्लथ कर देने वाला श्रम। स्वयं मेरी नींद का कर्ब बन जाता है।' यह बैल से बहुत दूर की बात है। जैसे धूमिल ने 'मोचीराम' में मोची को दार्शनिक बना दिया, वैसे ही शमशेर ने बैल को शमशेर बना दिया है।"[9] आगे इस अंश के शिल्प के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि शब्दों के ऐसे चित्र को तूलिका से वही बना सकता है जिसमें वान गॉग की क्षमता हो। इस तरह श्रम करते हुए बैल की जो शब्द-चित्र शमशेर ने खींचा है, कविता पढ़कर बैल पशु से ऊपर उठकर श्रम के मूल्य को स्थापित करने वाला और मानव सभ्यता को आगे बढ़ाने वाला साक्षात् व्यक्ति बन जाता है। जो मनुष्यता के धरातल को और उच्च कर देता है। इस कविता में कवि का जीवन-संघर्ष, पूरे समाज का संघर्ष बन गया है। जिसमें मनुष्य की उद्दाम जिजीविषा व्यक्त हुई है। मालिक द्वारा काम लेने के तरीके से करुणा का भाव पैदा होता है-

"मगर मुश्किल यह है

कि मालिक मेरी नस-नस को जानता और समझता है

वह मुझे मेरी मूक भाषा में अच्छी तरह

बात करता है

मुझे वह इस तरह निचोड़ता है जैसे

घानी में एक-एक बीज कसकर दबाकर

पेरा जाता है”[10]

इस तरह यहाँ कवि मार्क्सवादी चेतना से संपन्न होने के बावजूद मालिक के प्रति कोई विरोध भाव नहीं व्यक्त करता है। वह भी उसे दो टांगों पर खड़ा रहने वाला और मुँह वाला कपड़ा पहनने वाला बैल ही मालूम होता है। श्रमरत काव्य-नायक ‘बैल’ को पूरी दुनिया ही श्रम के जुए में जुतती हुई महसूस होता है। इसमें एक ऐसा बिंदु आता है जब उसे दुनियाँ का हर व्यक्ति जिंदगी के जुए में जुतता हुआ बैल मालूम पड़ता है। जो अपने खून-पसीने से, शरीर के पोर-पोर से श्रम करते हुए सिर्फ दो जून के चारे के लिए जीवन जी रहा है। इस तरह श्रम-सौन्दर्य को लेकर लिखी कविताओं में यह एक बेहद मार्मिक कविता है।

मुक्तिबोध की ‘इसी बैलगाड़ी को’ कविता में ‘बैलगाड़ी’ किसान-मजदूर वर्ग के जीवन का प्रतीक है। जो मुख्यतः उत्पादक वर्ग का द्योतक है। इसमें शहरी बुद्धिजीवियों और निम्नवर्गीय बुद्धिजीवियों को ‘तुम’ और ‘मै’ के चारित्रिक रूप देकर रची गयी है। यह पूरी कविता ही ‘मैं’ और ‘तुम’ के संबोधन के सहारे बुनी गयी है। इसमें ‘मैं’, शहरी बुद्धिजीवी ‘तुम’ का चरित्रोद्घाटन करता है। शहरी बुद्धिजीवियों के कम क्रांतिकारी होने और निम्नवर्गीय बुद्धिजीवियों द्वारा किसान-मजदूर परस्त होने की संवेदना को भावनात्मक स्तर पर रचा गया है। एक बात जो दोनों पर लागू होती है कि पूंजीवादी तंत्र के चक्की में आखिर दोनों पिसने को मजबूर हैं। लेकिन निम्नवर्गीय चरित्र ‘मैं’ अपने क्रन्तिकारी विचारों को ग्रामीण जन-जन तक पहुँचाकर पूंजीवाद के विनाश का बीज बो रहा है। जबकि दूसरा शहरी जीवन में अपने कम क्रान्तिकारी विचारों से इस तंत्र को दीर्घायु बनाने में मदद कर रहा है। इसीलिए काव्य नायक ‘मैं’, ‘तुम’ के इस दृष्टिकोण, उद्देश्य पर सवाल उठाता है। कविता की शुरूआती पंक्तियाँ हैं-

-

"इसी बैलगाड़ी को पहाड़ी ढालों पर

चढ़ाता-उतारता बढ़ाता हूँ मैं

इसी बैलगाड़ी को

बहुत दूर तुम

खींच रहे हो

शहरी अँधेरे में

वही बैलगाड़ी

वही हांकना

सिर्फ एक

फर्क है

फ़र्क आबोहवा का"[11]

इस तरह इस कविता में जन प्रतिबद्धता वैचारिक स्तर पर व्यक्त हुई है। इसमें शहरी बुद्धिजीवियों की पूंजीवादी तंत्र के जटिल संरचना को न पहचान पाने की अक्षमता और पहचान छिपाकर जीने की आदत को भी उद्घाटित किया गया है। पूंजीवादी तंत्र से मुक्ति की चाहत दोनों को है लेकिन दोनों का मार्ग अलग-अलग है। एक अपनी पहचान छिपा कर काम करता है एक बिना छिपाये। इसीलिए निम्नमध्यवर्गीय बुद्धिजीवी 'मैं' कहता है कि-

"डाकुओं से तो हम भी लड़ते हैं

ताज़ी कटी फसलों का अनाज

बचाने को

किंतु तुम जड़ और ठस हमें कहते हो

क्योंकि हम सिपाही

क्योंकि हम गाड़ीवान

और तुम शहराती

नुक्कड़ के काफ़े में

बताना न चाहते पहचान "[12]

केदारनाथ अग्रवाल की 'गेहूं' शीर्षक कविता में 'गेहूं' सिर्फ अनाज के रूप में ही नहीं चित्रित है। वह शोषक सत्ता के विरुद्ध किसानी चेतना का प्रतीक है। वह अपनी लाखों की संख्या में नुकीले भाले ताने, ताकत से मुट्ठी बांधे, सिर ऊँचा करके लाल-फ़ौज सा डटकर खड़ा है। जो सिर्फ हँसिया से आहत होकर अपने तन की, मन की बलि देकर और सतत घोर संकट सहकर अपने पौरुष का परिचय देता है। अपने बलिदानों से वह किसानों को सबल करता है-

"आर-पार चौड़े खेतों में

चारों ओर दिशाएं घेरे

लाखों की अगणित संख्या में

ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है।

ताकत में मुट्ठी बांधे है;

नोकीले भाले ताने है;

हिम्मत वाली लाल फ़ौज-सा

मर मिटने को झूम रहा है।"[13]

कवि ने यहाँ सुन्दर कल्पना किया है। गेहूँ के बीज को उसके आकार के कारण बंधी मुट्ठी का प्रतीक माना है। वह उसे न केवल शोषकों बल्कि व्यवस्था के शोषण मूलक चरित्र के विरोध में खड़ा कर दिया है। जो किसानों के लिए अपना बलिदान देकर व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन का आकांक्षी है।

'दूसरा सप्तक' में संकलित शमशेर की 'स्वतंत्रता दिवस पर-1940' और 'भारत की आरती' शीर्षक कविताएँ राजनीतिक रुझान की हैं। क्रांतिकारी चेतना से युक्त आह्वानपरक कविता 'स्वतंत्रता दिवस पर-1940' के बारे में ओम भारती ने लिखा है कि- "आश्चर्य होता होगा कि यह आह्वान ऐसा कवि कर रहा है जिसे रोमान से परहेज नहीं था, न ही प्रेम से, न ही उसकी मांसलता से। इसे कोई द्वंद्वात्मकता कहे किंवा विरुद्धों का सामंजस्य, सरलता और जटिलता की असाध्य-सी संबंधता तथा अटूट संबंद्धता ही तो शमशेर की पहचान है। वे देश के दीन-हीन किसानों की माटी की काया में प्रचंड आग और आंच देख रहे हैं और उसमें कवियों के विरह-मिलन की ही रचनाओं में डूबे रहने के पाप को जला डालने की बात कर रहे हैं।"[14] मानवीय स्वतंत्रता में आस्था रखने वाले शमशेर देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के भी उद्गाता हैं। इलाहबाद में प्रभात फेरी से उठने वाली आवाजें कवि को आंदोलित करती हैं। उसे आजादी के नूतन भाव से रहित कविताएँ 'अंध-कूप गीतों' सी अर्थहीन प्रतीत होती हैं। कविता का एक अंश-

"फिर वह एक हिलोर उठी –

गाओ !

वह मजदूर किसानों के स्वर कठिन हठी

कवि हे, उन में अपना हृदय मिलाओ !

उन के मिट्टी के तन में है अधिक आग,

है अधिक ताप !

उस में कवि हे,

अपने विरह मिलन के पाप जलाओ !"[15]

इसी तरह 15 अगस्त 1947 को भारत की आजादी के अवसर पर भी शमशेर ने 'भारत की आरती' शीर्षक कविता लिखी। इसमें उन्होंने वैश्विक स्वतंत्रता देवी द्वारा भारत की स्वतंत्रता देवी की आरती करने का भाव अनुस्यूत किया है। इसमें उन्होंने भारत का गौरव गान किया है। इसमें देश दुनिया- निकटपूर्व, पूर्व, दक्षिण-पूर्व, एशिया, अरब, चीन, मिस्र, हिन्द एशिया यानी हर देशों की युग-युग की आशाओं को भारत पर वारने का भाव बाँधा गया है। साथ ही साम्राज्यवाद और समाज में ऊँच-नीच के विधान के नाश होने की आशा की गयी है। समाजवादी मूल्यों से जनता के उन्नति एवं प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होने की आकांक्षा को भी अभिव्यक्ति मिली है। भारत की भौतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक गरिमा तथा सौन्दर्य को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है-

"जन का विश्वास ही हिमालय है

भारत का जन-जन ही गंगा है

हिन्द महासागर लोकाशय है

यही शक्ति सत्य को उभारती ।

यह किसान कमकर की भूमि है।

पावन बलिदानों की भूमि है

भव के अरमानों की भूमि है

मानव इतिहास को सँवारती ।"[16]

भारत के विजय, गौरवगान और सुख-समृद्धि की प्रार्थना को निराला की 'भारति, जय, विजयकरे !' और 'वर दे, वीणावादिनी वर दे!' शीर्षक कविताओं में भी देखा जा सकता है।

सत्तर आदिवासी किसानों ने बम्बई में थाना जिले के क्रूर जमींदारों और पूंजीवादी नौकरशाहों के विरुद्ध सन् 1945-1946 ई. में अपने किसान सभा के नेतृत्व में काफी हद तक सफल विद्रोह किया था। किसानों के शोषण के विरुद्ध हुए इस विद्रोह से शमशेर काफी प्रभावित हुए और अपना समर्थन दिया। उन्होंने इन वीर आदिवासी किसानों के क्रांतिधर्मी चेतना को काव्यात्मक स्वर 'बम्बई में वर्ली के ७० किसानों को देखकर' शीर्षक कविता में दिया। इसमें उन्होंने उन आदिवासी किसानों के शौर्य और वीरता का गान किया। उन्हें बिजलियाँ चमकाने वाली घटाटोपी बादल की संज्ञा दी। जिनमें अपार शक्ति निहित होती है। उनके अदम्य साहस, मजबूत इरादे और महत्व को निम्न पंक्तियों में रेखांकित किया है-

"इनकी आँखों में तड़कती धूप

सख्त बंजर की ।

इनकी वाणी में हमारी मूक

बोलती धरती"[17]

इस तरह कवि ने शोषण के विरुद्ध इन आदिवासी किसानों की शक्ति में आस्था और विश्वास प्रकट किया है।

बुआई से सम्बंधित श्रम-संवेदना के अलावा सिंचाई से सम्बंधित श्रम-संवेदना भी कविता में सृजित हुई है। कड़ी दोपहरी में, जब हवा भी बहुधा थम जाती है ऐसे में कुएं या तालाब के जल से ढेकुल द्वारा पानी खींचकर सिंचाई करने का दृश्य है। सिंचाई करते दंपत्ति के श्रमपूर्ण सौन्दर्य को त्रिलोचन ने अपनी कविता में उतारा है-

"है धूप कठिन सिर - ऊपर

थम गयी हवा है जैसे

दोनों दूबों के ऊपर

रख पैर खीचते पानी

उस मलिन हरी धरती पर

मिलकर वे दोनों प्राणी

दे रहे खेत में पानी"[18]

प्रगतिशील कवियों ने श्रम से तैयार हुए फसल को देखकर किसानों के मन में उठने वाले उमंग, उल्लास और ख़ुशी जैसे भावों को कविताओं में रचा है। फसल से सजी धरती के सौन्दर्य को भी कविता में रचा है। इन भावों को 'हरा भरा संसार है आँखों के आगे', 'तभी लोग जीते हैं', 'गेहूँ जौ के ऊपर सरसों की रंगीनी' (त्रिलोचन),

'चंद्रगहना से लौटती बेर', 'खेत का दृश्य', 'गेहूँ', 'बसंती हवा' (केदारनाथ अग्रवाल), 'झूमें बाली धान की', 'बहुत दिनों के बाद'(नागार्जुन) जैसी कविताओं में देखा जा सकता है। बढ़िया लहलहाते फसल से युक्त धरती के सौन्दर्य को देखकर कृषक के मन की ख़ुशी और उल्लास यहाँ द्रष्टव्य है-

1. "आसमान की ओढ़नी ओढ़े,

धानी पहने

फसल घंघरिया,

राधा बनकर धरती नाची,

नाचा हँसमुख

कृषक सँवरिया "[19]

2. "हरा-भरा संसार है आँखों के आगे

ताल भरे हैं, खेत भरे हैं

नई-नई बालें लहराए

झूम रहे हैं धान हरे हैं

झरती हैं झीनी मंजरियाँ

खेल रही हैं खेल लहरियां

जीवन का विस्तार है आँखों के आगे"[20]

कुछ इसी तरह खेत के मेड़ पर बैठा कवि खेत की सुन्दरता को किसान की आँखों से देखता है। फसलों से सजी हुई धरती के सौन्दर्य से मुग्ध कवि को प्रकृति में स्वयंवर का दृश्य दिखता है-

"देख आया चंद्रगहना।

देखता हूँ दृश्य अब मैं

मेड़ पर इस खेत की बैठा अकेला।

एक बीते के बराबर

यह हरा ठिंगना चना,

बांधे मुरैठा शीश पर

छोटे गुलाबी फूल का,

सज कर खड़ा है।"[21]

इसी तरह 'खेतिहर' शीर्षक कविता में धरती पर लदी हुई सुनहरी पकी फसल को काटने पहुंचे किसानों, मजदूरों के आखों में चमक का भाव और श्रम के सफल होने के भाव को बुना गया है। इसमें फसल-कटाई करने के दृश्य का बहुत ही सौन्दर्यपूर्ण चित्रण है। 'चंदनवा चैती गाता है', 'किसानी गाना' शीर्षक कविता में फसल काटकर घर में सुरक्षित रख लेने के बाद किसान के ख़ुशी की अनुभूति को दिखाया गया है।

ग्रामीण और कृषक परिवेश से जुड़ी कविताओं में स्त्रीवादी विमर्श और दृष्टि से लिखी गयी कविताएँ नहीं मिलतीं। बल्कि यथार्थपरक दृष्टिकोण से उनका चित्रण

किया गया है। महिलाओं के श्रम और उनके दुर्दशा का भाव तो है लेकिन उनके प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण और नीचा दिखाने का भाव नहीं है। भगवान राम और सीता के मिथकीय चरित्र को आधुनिक युग के पात्रों-चरित्रों में रूपांतरित करने का भाव है। राजपरिवारों के इन चरित्रों को राजघराने के सुख-सुविधाओं भरा जीवन से निकाल; खेत-खलिहान में श्रम करने वाले और अभावभरे जीवन जीने वाले श्रमजीवियों से जोड़ा गया है। केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन ने इस भाव की कविता 'सीता मैया' और 'जय जन-सीता, जय जन-राम' शीर्षक से रची है। केदारनाथ अग्रवाल के कविता की पात्र 'सीता' का जन्म जनकपुरी में हुई है। वह अवधपुरी में 'रामचंदा' से ब्याही गयी है लेकिन वह एक गरीब श्रमशीला औरत है। इस कविता में उसके श्रमशीलता और अभाव से भरे जीवन यापन को चित्रित किया गया है, साथ ही शासन सत्ता के प्रति गहरा व्यंग्य भी व्यक्त हुआ है-

"मूसल, चक्की, कुटना- पिसना,

सब तड़के से करती है।

खपरे-छाये कच्चे घर में,

रामराज्य में रहती है।।

भेड़ों को बकरी को लेकर,

हार चराने जाती है ।

'घम घम' घाम हवा खाती है,

दिन छिपते फिर आती है ।।"[22]

इस कविता में व्यक्त भाव से निराला की कविता 'रानी और कानी' और 'चर्खा चला' की स्मृति स्वाभाविक है। मनुष्य को ही धरती का नियामक और मनुष्यता को श्रेष्ठतम मूल्य मानने वाले प्रगतिशील कवियों ने पीड़ा से कराहती मानवता को सभ्य समाज के लिए अभिशाप की तरह देखा है। नागार्जुन की 'जय जन-सीता, जय जन-राम' शीर्षक कविता इसी भावबोध की है।

केदारनाथ अग्रवाल की 'गाँव की औरतें' कविता में गाँव में महिलाओं को घर के भीतर जटिल से जटिल कार्य करने की बेबसी का चित्रण है। सबसे ज्यादा काम के बावजूद खाने-पीने के अभाव को मार्मिक रूप में दिखाया गया है। केदारनाथ अग्रवाल की ही एक अन्य कविता 'घर का अनुभव' में एक बेहद गरीब परिवार की औरत का चित्रण है। जो टूटे हुए घर में नौ लोगों के लिए स्नेह से अकेले परात भर आटा गूंथकर रोटी-चावल बनाकर खिलाती है। भूख से क्षुधा शांत होने पर परिवार के पुरुष जन को टूटे घर को बनवाने का ख्याल आता है। जबकि घर की महिलाएं प्रतिदिन गरीबी, जहालत और शोषण को कई स्तरों पर झेलती और महसूस करती हैं। त्रिलोचन शास्त्री के 'सब्जी वाली बुढ़िया' शीर्षक कविता में एक वृद्ध महिला का मार्मिक चित्रण है। अपने जीवन के अंतिम अवस्था में पहुंची यह गरीब किसान वृद्ध महिला बाजार में ठण्ड से कांपने के बावजूद तब तक ग्राहकों से सिफारिश करती है जब तक कि उसकी थोड़ी सी बची हुई सब्जी किसी ने खरीद नहीं लिया-

"बुढ़िया ने साँस ली

और कहा-

दिन हैं ये ठण्ड के

ले लो

तो मैं भी घर को जाऊँ

.....

लेकिन उस की बातें

जो कानों में पड़ीं

उन को अनसुना

कर नहीं पाया मैं"[23]

संवादात्मक शैली में रचित इस कविता में दया और करुणा को सृजनात्मक आयाम दिया गया है। इस पूरी कविता में सबसे मार्मिक पंक्ति 'लेकिन उस की बातें/ जो कानों में पड़ीं / उन को अनसुना/ कर नहीं पाया मैं' है। मनुष्य होने के नाते ग्राहक ने बुढ़िया के दर्द और एहसास को समझा और दाम चुकाकर चला गया। इसी तरह त्रिलोचन की एक और कविता 'चंपा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती' ग्वाला की अपढ़ बच्ची चंपा की भावनाओं और पूंजीवादी सत्ता से सम्बंधित है। एक समय में कलकत्ता पूंजीवादी औपनिवेशिक शक्ति का प्रतीक था। जो मजदूर के जीवन की खुशियाँ और प्रेम को छीन लेता था। 'परदेशी के नाम पत्र' की महिला एक पढ़ी-लिखी चंपा ही है। जो अपने पति को बहुत ही कम शब्दों में सार्थक और भावनात्मक पत्र लिखती है। इस कविता में परम्परागत पत्र लेखन-शैली सुरक्षित है। जिसमें वह अपने और अपने पास-पड़ोस का खबर देती है। साथ ही पति को घर के प्रति विमुखता की याद दिलाती है।

ग्रामीण समाज में जीवन के विभिन्न अनुभवों और अनुभूतियों को इन कवियों ने दर्ज किया है। केदारनाथ अग्रवाल की 'पैतृक संपत्ति', 'किसानी जीवन' और त्रिलोचन की 'नगई महरा', 'भोरई केवट' जैसी कविताओं में ग्रामीण समाज में

आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक रूप से पिछड़े हुए लोगों का जीवन चित्रण हुआ है। अभिजात्य वर्ग की विलासी, दिखावटी जीवन शैली से दूर छोटी-छोटी आशाओं और उम्मीदों में जीवन जीने की उत्कंठा का चित्रण है। इन कविताओं में गरीब जन की निर्मलता, कोमलता और विनम्रता मौजूद है। केदारनाथ अग्रवाल के कविताओं में प्रकृति और जन जीवन इस तरह से समायी हुई है कि जीवन के प्रति रागात्मकता जगाती है। उनकी कविताओं में प्रकृति की स्वायत्त सत्ता नहीं के बराबर मिलेगी। कर्मशील हाथों में कमल का सौन्दर्य दर्शन है, जो मिट्टी को सोना करके और मधुमक्खी की तरह तन्मय होकर मधुकोषों से घर बनाते हैं। साथ ही दही मथ कर और नागों को नाथ कर मौलिक ग्रंथों की भी रचना करते हैं। इस तरह ये कर्मशील हाथ अनेक कर्मों से मानव-जीवन में सौन्दर्य की छटा बिखेर देते हैं। इनमें छोटे हाथों में सौन्दर्य लोक गढ़ने की शक्ति छिपी है। किसान जीवन से इनका जुड़ाव कुछ इस प्रकार है -

"छोटे हाथ

किसानी करते-

बीज नए बोया करते हैं।

आने वाले वैभव के दिन,

उँगली से टोया करते हैं।।"[24]

इस तरह केदारनाथ अग्रवाल अपनी कविताओं से समतामूलक और न्यायप्रिय समाज का स्वप्न रचते हैं। उनकी कविताओं के सन्दर्भ में अशोक त्रिपाठी का यह वक्तव्य सच प्रतीत होता है कि- "केदार जी गहन इन्द्रिय-संवेदना, सामाजिक

प्रतिबद्धता के गहरे सरोकार, आधुनिकता बोध और विकासमान ऐतिहासिकता की संयुक्त समझ से पैदा हुई भीतरी छटपटाहट, लोक-सौन्दर्य और किसान-चेतना की मस्ती और उसकी उत्सव-धर्मिता के उर्ध्वमुखी कवि हैं।"[25] किसान और उसकी धरती के भरोसे ही पूरा समाज टिका हुआ है। उसके द्वारा उत्पादित अनाज से देश-दुनिया के लोग जीते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था उसी का शोषण कर रही है। समाज में आर्थिक विषमता पैदा कर बड़े पैमाने पर लोगों को गरीबी, जहालत और अभाव में जीने को मजबूर कर रही है।

केदारनाथ अग्रवाल ने किसानों और मजदूरों की पक्षधरता के संवेदना को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। उनकी 'किसान-स्तवन', 'धरती', 'किसानी गाना' जैसी कविताएँ इसी भावबोध की हैं। 'धरती' कविता में कारखानें लगाने हेतु पूंजीवादी शक्तियों के बीच मची लूट को दर्शाया गया है। इसे अमानवीय बताते हुए जमींदारी व्यवस्था को धिक्कारने का भाव है। कवि ने इस कविता में धरती पर केवल किसान के अधिकार को माना है-

"यह धरती है उस किसान की
जो बैलों के कन्धों पर
बरसात घाम में,
जुआ भाग्य का रख देता है,
खून चाटती हुई वायु में,
पैनी कुसी खेत के भीतर,

दूर कलेजे तक ले जाकर,

जोत डालता है मिट्टी को

पाँस डालकर,

और बीज फिर बो देता है

नए वर्ष में नयी फसल के ।"[26]

'किसान-स्तवन' कविता किसानों के महत्त्व को उजागर करती है। उनको श्रद्धा एवं पूजनीयता के स्तर का सम्मान देती है। त्रिलोचन शास्त्री की कविता 'तभी लोग जीते हैं' में यह भाव व्यक्त हुआ है कि 'किसान की किसानी दिन रात में भेद नहीं करती इसीलिए लोग जीते हैं।' किसानों के श्रम से ही पूरा समाज चल रहा है क्योंकि वे 'अपने हाथों में विधि से ज्यादा ताकत रखते हैं, फसलों की उम्दा नस्लें हर साल नयी पैदा करते हैं, ठगते नहीं ठगे सब दिन जाते हैं, सरकारी पेटी में टैक्सों से पैसा भरते हैं, अफसर के वेतन को अपने ही लहू से मोटा करते हैं, मेहनत की मस्ती में ज्ञानी-विज्ञानी को भी शरमाते हैं और उनकी वजह से ही भारत का बाहर-भीतर अच्छा रहता है। इतना कुछ होने के बाद भी शासन उनको थोड़ा भी महत्व नहीं देता है।' कवि ने उन्हें 'असली भारत-पुत्र' का दर्जा देकर उनके महत्व को अपनी सृजनधर्मिता से नया आयाम दिया है। इस उत्पादक वर्ग की श्रमशीलता पर ही मानव समाज टिका हुआ है। लेकिन विडम्बना यह है कि आज यही वर्ग आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से पिछड़ा हुआ है। गरीबी, जहालत और अभाव का शिकार यही किसान और मजदूर हुए हैं। सन् 1946 ई. की 'पैतृक संपत्ति' कविता में

केदारनाथ अग्रवाल ने एक किसान के पैतृक संपत्ति का बहुत मार्मिक वर्णन किया है। जो किसान के मृत्योपरांत उसके पुत्र को मिलती हैं -

"जब बाप मरा तब यह पाया,

भूखे किसान के बेटे ने :

घर का मलवा, टूटी खटिया,

कुछ हाथ भूमि- वह भी परती ।

... बस यही नहीं, जो भूख मिली

सौगुनी बाप से अधिक मिली ।"[27]

सन् 1946 में लिखी गयी यह कविता आज भी बहुत हद तक प्रासंगिक है। आजादी के 74 साल बीत जाने के बाद भी किसानों और मजदूरों के जीवन में गरीबी और पिछड़ापन पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2014 में 12,360 और वर्ष 2015 में 12,602 किसान आत्महत्या जैसे जघन्य कृत्य करने को विवश हुए हैं। ज्यादातर किसान कर्ज, लागत बढ़ने, फसल की कीमतों में कमी और फसल बर्बाद होने तथा आर्थिक अभावों के चलते आत्महत्या कर रहे हैं। आज समाज का कौन सा वर्ग आर्थिक रूप से कितना संपन्न हो रहा है, इसका अनुमान हर साल प्रकाशित होने वाली ऑक्सफैम रिपोर्ट के आधार पर भी लगाया सकता है। देश के संसाधनों और संपत्ति पर लगातार कुछ चुनिन्दा प्रतिशत लोगों के ही अधिकार बढ़ने से समाज में आर्थिक विषमता बढ़ रही है।

2.कारखानों और इतर क्षेत्र में श्रम करने वाले श्रमिकों से जुड़ी कविताओं में संवेदना के आयाम:

प्रगतिशील कविता में कारखानों और इतर क्षेत्रों में श्रम करने वाले श्रमिकों से सम्बंधित अनेक कविताएँ हैं। इन कविताओं में गाँवों, कस्बों, नगरों, महानगरों और तालाबों, झीलों तथा नदियों इत्यादि में मेहनत-मजदूरी करने वाले श्रमिकों की श्रम-संवेदना के विविध आयाम देखने को मिलता है। श्रम की श्रेष्ठता, मजदूर परिवार का पुत्र-जन्मोत्सव, हाथों के महत्व इत्यादि से जुड़ी संवेदना को 'श्रम', 'मजदूर का जन्म', 'चौथी पीढ़ी का प्रतिनिधि', 'हरिजन गाथा' 'गुलाबी चूड़ियाँ' जैसी कविताओं में अभिव्यक्त किया गया है। मनुष्य के कर्म में अपार शक्ति होती है। यह शक्ति सामान्यतः हाथों के माध्यम से ही रूपायित होती है। मनुष्य के सौन्दर्यबोध के विकास का मूल 'श्रम' को बताते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि- "श्रम का सौन्दर्यबोध प्रकृति या मनुष्य के सौन्दर्य को सुखदतर बनाता है। श्रम मनुष्य को सुख और सुन्दरता का स्वाद पाने की क्षमता प्रदान करता है। इसके बिना वह न सुख सौन्दर्य पहचान सकता है न पा सकता है।"[28] केदारनाथ अग्रवाल ने 'श्रम' कविता में श्रम के महत्व को कुछ इस प्रकार चित्रित किया है-

"खो सकता है

मेरा तेरा

रत्ती-रत्ती जोड़ा सोना ।

हो सकता है

पूर्ण असंभव

का भी पूरा संभव होना ।।

किन्तु नहीं श्रम

मेरा तेरा

इन हाथों का खो सकता है।"[29]

इसी तरह मजदूर के परिवार में पुत्र-जन्मोत्सव की ख़ुशी और हर्ष-उल्लास का चित्रण भी हुआ है। विश्वनाथ त्रिपाठी ने केदारनाथ अग्रवाल की 'मजदूर का जन्म' शीर्षक कविता को खड़ी बोली कविता में रचित श्रम-सौन्दर्य की एक उत्तम कविता माना है। इसे अवकाश भोगी साहित्यकारों द्वारा लिखे साहित्य से अलग माना है। जिसमें निराशा, कुंठा, रुग्णता, विकार और अकेलापन इत्यादि का चित्रण होता है। उन्होंने अपने गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी के हवाले से कहा है कि वे श्रम-स्वेद को गंगा जल से भी शुद्ध मानते थे। इस कविता में एक सम्पन्न और अभिजात्य वर्गीय परिवार में पुत्र जन्म पर जैसी खुशियाँ, उल्लास और आकांक्षाएं अभिव्यक्त होती है उससे भिन्न रूप में चित्रित है। इस संवेदना को कविता में महसूस किया जा सकता है। एक कवितांश द्रष्टव्य है-

"एक हथौड़े वाला घर में और हुआ !

हाथी-सा बलवान,

जहाजी हाथों वाला और हुआ !

सूरज सा इंसान,

तरेरी आँखों वाला और हुआ !"[30]

नवजात शिशु के शारीरिक पुष्टता से घर भर की अभिलाषाएं पूरी होती दिखने लगती हैं। माता को अँधेरा हरने वाला, दादा को सबेरा करने वाला और जनता में सलामत लाने वाला प्रतीत होता है। कवि ने अंतिम पंक्ति में बच्चे को सरकार के लिए 'क़यामत ढाने वाला' के रूप में चित्रित किया है। वह पंक्ति इस प्रकार है- 'सुन ले री सरकार! / कयामत ढाने वाला और हुआ'। इस पंक्ति के विषय में विश्वनाथ त्रिपाठी का मत उचित ही प्रतीत होता है कि 'यदि इस उल्लास पर्व के अवसर पर सरकार को थोड़ा राहत दे दिया गया होता तो कोई बुरा ना होता।' इस कविता की संवेदना के महत्त्व को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं कि- "पुत्र-जन्मोत्सव का वर्णन साहित्य में प्रायः संपन्न लोगों के सन्दर्भ में होता है। कसीदे लिखे जाते हैं। श्रमिक के घर का पुत्र-जन्मोत्सव संपन्न-हरामखोर वर्ग के घर के पुत्र-जन्मोत्सव से भिन्न होता है। वह पुत्र राज करने वाला या समधिन के द्वारे घोड़ी नचाने वाला लाड़ला नहीं है, हथौड़ा चलाने वाला है । वह नाजुक फूल सा, कोमल चाँद सा नहीं, बलवान हाथी सा जहाजी (मजबूत) है। कविता में दादी, दादा, पिता आदि को लेकर ऐसी मार्मिकता पैदा की गयी है कि जो वास्तविक तो है किन्तु प्रगतिशील कविता में भी आसानी से मिलती नहीं"[31] इस प्रकार मजदूर के घर पुत्र जन्मोत्सव का यह भावपूर्ण चित्रण विरल है।

नचिकेता 'श्रम-सौन्दर्य और किसान-चेतना का दमकता सूरज' शीर्षक अपने लेख में नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में श्रमशील भारतीय किसान और मजदूरों के दुःख दर्द के साथ जीवन के प्रति अथाह उल्लास और भविष्य के आशावाद को आकस्मिक नहीं मानते। उनकी दृष्टि में निराला की कविताओं में यह बीज रूप में व्यक्त है जो आगे चलकर इनकी कविताओं में छतनार वृक्ष बन गया है। केदारनाथ अग्रवाल ने मजदूर बालक के जन्म पर परिवार के सभी सदस्यों के मनोभावों एवं संघर्ष से भरे जीवन की आकांक्षा को व्यक्त किया है तो नागार्जुन ने भी

कुख्यात 'बेलछी कांड' के उपरांत पैदा हुए दलित परिवार के बच्चे की भविष्यवाणी कुछ इस तरह किया है-

" अरे भगाओ इस बालक को

होगा यह भारी उत्पाती

जुलूम मिटायेंगे धरती से

इसके साथी और संघाती

...हिंसा और अहिंसा दोनों

बहनें इसको प्यार करेंगीं

इसके आगे आपस में वे

कभी नहीं तकरार करेंगी..."[32]

नागार्जुन की एक अन्य कविता 'चौथी पीढ़ी का प्रतिनिधि' सन् 1985 ई.में प्रकाशित हुई। जो एक श्रमशीला स्त्री और उसके शिशु के प्रति वात्सल्य भाव को लेकर रची गयी कविता है। वह उत्तराखंड के गढ़वाल में कोटद्वार-पौड़ीवाली सड़क पर गिट्टी बिछाने वाली मजदूरनी माँ है। अपने पुत्र को मकई का टिक्कड़ देकर वह काम पर चली गयी है। दोपहर की धूप में भूख के कारण बच्चा मकई के मोटे टिक्कड़ को सतृष्ण नजरों से देखता है। दरअसल उसे अपनी माँ के हाथों खाने की आदत अभी छूटने नहीं पाई है। उसकी माँ दोपहर के एक बजे आने वाली है। इस माँ द्वारा बच्चे को मिलने वाला प्यार, स्नेह और दुलार का तरीका अभिजात्य वर्गीय परिवार के शिशु से बिल्कुल भिन्न है। प्रतिदिन पसीने से लथपथ होकर आने वाली यह माँ पास के झरने

में हाथ-मुंह धोकर और जूड़ा बांधकर फिर बच्चे के पास आती है। उसके बाद का चित्र द्रष्टव्य है-

"और तब शिशु को चूमकर

पास बैठा लेगी

मकई के टिक्कड़ से तनिक-सा

तोड़कर

बच्चे के मुंह में डालेगी

उसे गोद में लेकर

उसकी आँखों में झाँकेगी

पुतलियों के अन्दर

अपनी परछाईं देखेगी

पूछेगी मुन्ना से;

मेरी पुतलियों में देख तो, क्या है !

वो हँसने लगेगा...

माँ की गर्दन को बाँहों में ले लेगा।"[33]

यहाँ श्रमजल से लथपथ माँ जिस तरीके से अपने नन्हे बच्चे को दुलारती और पुचकारती है; ऐसा मार्मिक चित्रण दुर्लभ है। इस बच्चे में कवि ने चौथी पीढ़ी का प्रतिनिधि और बछेन्द्रीपाल का भतीजा होने की संभावना व्यक्त किया है। जिन्होंने

दुनिया के सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट पर पहुंचकर अपने नाम विश्व रिकॉर्ड दर्ज किया। इस कविता को पढ़कर नागार्जुन की ही दूसरी मोहक वात्सल्य की कविता 'गुलाबी चूड़ियाँ' स्मृति हो आती है। 'गुलाबी चूड़ियाँ' शीर्षक कविता में प्राइवेट बस का ड्राइवर अपने सीट के सामने ऊपर लगे हुक में अपनी छोटी बेटी 'मुनिया' की गुलाबी चूड़ियाँ लटका रखा था। बस चलने पर ये चूड़ियाँ हिलती रहती हैं और उसे अपने बेटी की याद दिलाती रहती हैं। इस तरह वह वात्सल्य भाव को करीब से महसूस करता रहता है। इस कविता में उसके बड़ी-बड़ी आँखों में मौजूद दुधिया वात्सल्य को कवि ने चित्रित किया है।

श्रमजीवी स्त्री 'वीरांगना' को कवि केदारनाथ अग्रवाल ने इस तरह चित्रित किया है कि कविता में संवेदना कम कलात्मकता अधिक दिखाई देती है-

"मैंने उसको

जब-जब देखा,

लोहा देखा,

लोहा जैसा-

तपते देखा,

गलते देखा,

ढलते देखा,

मैंने उसको

गोली जैसा

चलते देखा”[34]

इसी तरह कुछ अन्य कविताओं में कारखानों के अमानवीय परिस्थिति में काम करने वाले श्रमिकों की दुर्दशा से जुड़ी संवेदना अभिव्यक्त हुई है। आदमी से मशीन बनते जाने की विवशता, शहरों के निर्माण में मजदूरों के योगदान और अभिजात्यवर्ग की संवेदनहीनता का मार्मिक चित्रण हुआ है। इस सन्दर्भ में ‘मजदूर’, ‘घंटा’, ‘उलट-पुलट शब्द’, ‘कानपुर’, ‘घिन तो नहीं आती है?’, ‘आरर डाल’ जैसी कविताएँ उल्लेखनीय हैं। मुक्तिबोध ने पूंजीवादी तंत्र में मनुष्य को जड़ बनाने वाली उत्पादन प्रक्रिया को ‘उलट-पुलट शब्द’ कविता में रची है। जिसमें आदमी के निरंतर मशीन में रूपांतरित होते जाने के विरुद्ध विद्रोह का भाव है। उनके अनुसार यह पूंजीवादी तंत्र लोगों को पहले प्रशिक्षण के लिए रखता है फिर धीरे-धीरे संवेदनशून्य बनाता है। उदाहरणस्वरूप कविता का एक अंश उल्लेख्य है-

“मंद प्रशिक्षणार्थी मैं ।

साँचे में जबरदस्त

पिघला हुआ सीसा उड़ेलता हूँ

द्रवीभूत कुमकुमी रंग वह

बनता है ईंटनुमा

धीरे-धीरे साँवला ।

संवलाए सीसे की देह पर

चिनगियाँ जमीं फिर ।

विक्षोभ पड़ गया साँवला

और फिर उसी लौह

साँचे से मूर्ति एक

निकली है जड़ीभूत।

और, फिर, मुझसे यह कहा गया

यह मूर्ति तुम हो

तुम खुद ।"[35]

कारखानों में अमानवीय परिस्थितियों में काम करने की विवशता और हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी कम वेतन मिलने का दर्द केदार की 'मजदूर' शीर्षक कविता में व्यक्त हुई है। उदाहरण स्वररूप एक अंश देखा जा सकता है-

"भिंसारे फाटक में घुसते हैं;

काम कर आधा दिन,

चूर हो हड्डी से, पसली से, मुरदा हो

दो तक;

फिर सांसे भर छाती में,

सूरज के डूबे तक,

पंजों को, पावों को, पीठ को, पेट को,

कुत्तों से बदतर हम घिसते हैं रोटी के दीवाने;"[36]

इस तरह रोटी का सवाल मजदूरों के लिए अहम सवाल है। लेकिन इसकी कीमत बहुत ज्यादा है। परिवार को ठीक से चलाने के पीछे उनका शारीरिक और मानसिक शोषण होता रहता है। इसी तरह केदारनाथ अग्रवाल की एक अन्य कविता 'मजदूरिन' में एक मजदूरिन स्त्री के दुःख-दर्द की संवेदना को व्यक्त किया गया है। जो समाज में न्याय न पाकर, अपने भीतर का नेह सुखाकर और अपने रोम दुखाकर दुःख दारिद्र्य भरा जीवन जीने के लिए मजबूर है।

पूंजीवादी तंत्र ने श्रमिकों के अल्पकालिक प्रवृत्ति की नौकरी और बाजारवाद ने जीवन में बहुत सी समस्याएं पैदा किया है। बेहतर भविष्य की आशा में व्यक्ति मशीनी जीवन जीने लगता है। इस संवेदना को त्रिलोचन की कविता 'आरर डाल' में अभिव्यक्ति मिली है। इस कविता में श्रमिक पत्र में पत्नी और परिवार को भूलते जाने की अपनी विवशता को लिखता है। वह बताता है- पूरे दिन मशीन पर खटने, बासे पर आकर पड़ जाने, कमाई का हिसाब जोड़ने, बराबर चित्त उचटने, इस-उस पर मन दौड़ाने और खाना पकाने-खाने में ही दिन बीत रहा है।

मानव सभ्यता का विकास श्रम से हुआ है। इसलिए श्रम का सम्मान मानवता के विकास से जुड़ा हुआ है। वर्ष 2020 में आई 'कोविड-19' वैश्विक महामारी ने सबसे ज्यादा नुकसान श्रमजीवी समाज का किया है। भारत में दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ़, मुंबई, सूरत, बंगलुरु आदि शहरों से मजदूर वर्ग की प्रवास बहुत पीड़ादायक रही है। जिस शहर को मजदूरों ने अपने हाथों से बनाया वही उन्हें आसरा न दे सके। केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'कानपुर' में नगरों और महानगरों के निर्माण में श्रमिकों के महत्व को बहुत मार्मिक रूप में चित्रित किया है। इसमें श्रमजीवियों का

चित्र यथार्थ रूप में रचा गया है। इसमें श्रमिकों की निर्माण प्रवृत्ति और उनका उत्पीड़न मूर्तिमान हो उठा है -

"घाट धर्मशाले, अदालतें

विद्यालय, वेश्यालय सारे

होटल, दफ्तर, बूचड़खाने,

मंदिर, मस्जिद, हाट, सिनेमा,

श्रमजीवी की उस हड्डी से

टिके हुए हैं- जिस हड्डी को

सभ्य आदमी के समाज ने

टेढ़ी करके मोड़ दिया है!!"[37]

प्रगतिशील कवियों में केदार-त्रिलोचन-नागार्जुन त्रयी ने अपने रचनाकाल के आरम्भ से अंतिम दौर तक किसानों, मजदूरों और ग्रामीण संस्कृति से सबंधित कविताएँ रचते रहे हैं। इन कवियों ने पूंजीपतियों और अभिजात्य वर्ग पर बहुत ही करारा व्यंग्य किया है। इस दृष्टि से नागार्जुन की 'घिन तो नहीं आती है?' शीर्षक कविता उल्लेखनीय है। इस कविता में कलकत्ता के ट्राम में गलती से मजदूरों के डिब्बे में यात्रा कर रहे सफेदपोश व्यक्ति पर कवि ने तीक्ष्ण व्यंग्य किया है-

"पूरी स्पीड में है ट्राम

खाती है दचके पै दचका

सटता है बदन से बदन-

पसीने से लथपथ ।

छूती है निगाहों को

कत्थई दाँतों की मोटी मुस्कान

बेतरतीब मूझों की थिरकन

सच-सच बतलाओ

घिन तो नहीं आती है?

जी तो नहीं कुढ़ता है?"[38]

इस तरह इस कविता में दिन भर की मेहनत के उपरांत थके हारे, पसीने से भीगे हुए श्रमिकों के अपने-अपने घर जाने का वर्णन है। कवि ने श्रम-जल से भीगे इन मजदूरों की दशा पर हँसने, तंज कसने और घिन करने वाले पूंजीपति वर्ग के सोच पर व्यंग्य किया है।

प्रगतिशील कविता में ग्रामीण परिवेश में मेहनत मजदूरी करने वाले ऐसे जन से जुड़ी हुई कविताएँ भी हैं जिनके भरोसे ग्रामीण-समाज टिका हुआ है। इनमें नौकर, लुहार, बढ़ई, मोची, लकड़हारा, रुई धुनने वाला इत्यादि मौजूद हैं। इसी तरह रिक्शाचालक, बस-ड्राइवर के जीवन से जुड़ी संवेदनाएं भी अभिव्यक्त हुई हैं। अपनी आजीविका हेतु नदियों, झीलों और तालाबों इत्यादि पर निर्भर जनसमुदाय से जुड़ी

संवेदनाएँ भी अभिव्यक्त हुई हैं। जैसे- 'मछुआहे', 'मल्लाह', 'देखना ओ गंगा मैया', 'बार-बार हारा है' इत्यादि कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

प्रगतिशील कवियों ने समाज को चलायमान रखने वाले साधारण से साधारण जन के महत्त्व को उद्घाटित किया। एक भद्र समाज में लोग जिनकी कभी चर्चा तक नहीं करते उन्हें साहित्य में स्थान दिया। उनके कर्मठता, कर्तव्य परायणता, नैतिकता, ईमानदारी, संस्कारगत सम्पन्नता और जीवन संघर्ष को काव्य का विषय बनाया। उनमें मौजूद गुण और अवगुण को भी काव्य में चित्रित किया। केदारनाथ अग्रवाल की 'भरोसा' शीर्षक कविता घर के भरोसेमंद और कर्मशील नौकर के विषय में है, यह उसके मृत्यु के बाद कृतज्ञता स्वरूप लिखी गयी है। उसने घर के दो बच्चों को बक्से-बिस्तर सहित बहंगी में लटकाकर बरसात के कीचड़ भरे ग्यारह मील रास्ते को पार कराया था। यह बरसाती कीचड़ कमासिन से दाँदोघाट(बुंदेलखंड क्षेत्र के गाँव का नाम) था। इस कविता को पढ़कर मिथकीय चरित्र श्रवण कुमार का चित्र आँखों के सामने उभर आता है। कई दशकों पूर्व बहंगी के द्वारा मजदूर-किसान बोझ ढोते थे। एक साथ एक से अधिक बोझ ढोने का यह आसान तरीका हुआ करता था। त्रिलोचन की 'तहदिल अब नहीं है' शीर्षक कविता गाँव के लुहार पर केन्द्रित है। जो अपनी कर्मशीलता और व्यवहारकुशलता के कारण लोगों में प्रिय रहा। वह खेती बारी में काम आने वाले औजारों को ठीक किया करता था। उसकी श्रमशीलता और सज्जनता को कवि ने इस तरह कथात्मक चित्रण किया है-

"अपना काम करते हुए वह

बातें करता था अच्छी अच्छी,

गाहक जैसे होते बातें भी वैसी ही,

कभी कोई अपना काम जल्दी

निबटाने को कहता था तब वह

समझाता था- जल्दी तो सब को है,

थोड़ी देर बैठ लो, काम हुआ जाता है

अभी- "[39]

इसी तरह केदारनाथ अग्रवाल की एक अन्य कविता 'चैतू' में चैतू (मजदूर व्यक्ति) के दिन भर के अथक मेहनत के बाद अधिक शराब पीने की सहानुभूतिपूर्ण वर्णन किया है।

ग्रामीण समाज के लिए बढ़ई का महत्वपूर्ण स्थान होता है। घर में चतुष्पद चौकियाँ बनवानी हो या लकड़ी के दरवाजे, बैलगाड़ी ठीक कराना हो या फिर मेज, कुर्सी अथवा पशुओं को बांधने हेतु खूंटा बनवाना हो, सब कामों में कुशलता का होना बहुत मायने रखता है। इस संदर्भ में केदारनाथ अग्रवाल की 'भगौता' कविता महत्त्वपूर्ण है। इसमें कवि ने कथात्मक शैली में बचपन के दोस्त 'भगौता' के श्रमशीलता और कार्यकुशलता का चित्रण किया है। उसे बसूला और आरी जैसे औजारों से बचपन में ही दोस्ती हो गयी थी। कवि ने उसके कौशल, लगन और काम के प्रति ईमानदारी का बड़ा ही मर्मिक चित्र खींचा है-

"पहिये जो उसने बनाये

गाड़ियों में लगे तो लगे रहे-

चले तो चलते चले गए घूमते हुए,

बैलगाड़ियों को आगे से आगे ठेलते हुए

न रुके-न टूटे-न चरमराये

न बैलों की चाल से गड़बड़ाये”[40]

समकालीन कवि कृष्ण कल्पित ने भी बढ़ई की योग्यता और कुशलता को लेकर ‘बढ़ई का बेटा’ शीर्षक कविता रचा है। जिसमें पेड़ों के प्रति उसका प्रेम और आत्मबलिदान का भाव अभिव्यक्त हुआ है। उसके महत्व को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

“एक बढ़ई के बेटे का

दुनिया कुछ नहीं बिगाड़ सकती

वह चाहे तो बना सकता है

इस दुनिया से एक मेज

वह बेमतलब नहीं होगा नाराज

बिखेर नहीं लेगा बाल

इतनी देर में वह ठोक लेगा

दरवाजे की जोड़

उसने नहीं बनाई कोई किताब

लेकिन किताब को गिरने से बचाया है!”[41]

प्रगतिशील कवि छोटे से छोटे काम करने वाले जन को बराबरी का दर्जा देते हैं। उनके जीवन-संघर्ष को गरिमापूर्ण तरीके से देखने की दृष्टिकोण विकसित

करते हैं। इस संदर्भ में 'मोची', 'लकड़हारा', और 'दौआ बेहनारुई धुनकता' जैसी कविताओं को देखा जा सकता है। निराला की 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता में कुकुरमुत्ता जिस आत्मविश्वास और गर्व के साथ अपनी खूबियों को बताता है। अपने जनोपयोगी होने का परिचय देता है। कुछ उसी अंदाज में केदारनाथ अग्रवाल की 'मोची' कविता का मोची भी कहता है-

"घिस, चले, मर चुके तलों को

मैं निकालता

जीने वाले जानदार मैं तले डालता ।।

सीकर, पालिश से चमकाकर,

मैं उबारता ।

जूतों से बाबू लोगों की

धज सँवारता ।।"[42]

इस कविता को पढ़कर धूमिल की कविता 'मोचीराम' की स्मृति ताजा हो जाती है। समकालीन कविता में कई प्रगतिशील कवियों ने मोची पर कविताएँ लिखीं हैं। जैसे- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'बतूता का जूता', अनुज लुगुन की 'चाँद चौरा का मोची' और 'गोह की कविता' विपिन चौधरी की 'पुलिया पर मोची', प्रमोद कुमार तिवारी की 'नामकरण' तथा रवि प्रकाश की 'कहता हूँ' इत्यादि।

प्रगतिशील कविता में संवेदना के विविध आयाम हैं। इसमें अपनी आजीविका के लिए तालाबों, झीलों और नदियों पर निर्भर समाज के जीवन-संघर्ष

और श्रमशीलता को काव्य-विषय बनाया गया है। दरअसल इस समाज के लोग अपनी तेज बुद्धि से लहरों के बीच भी जल की गहराई को नाप लेने की योग्यता और जलीय कृषि की समझ होने के बावजूद टूटे-फूटे घर में जीने को विवश हैं। तालाब, झील और नदी आदि ही उनके खेत, खलिहान, कार्यशाला और पाठशाला सब कुछ हैं। इनके जीवन शैली की कुछ विशेषताएं सकारात्मक रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। जैसे केदारनाथ अग्रवाल की 'मछुआहे' कविता का उल्लेख किया सकता है। इसमें मछुआहों द्वारा आदमखोर मगरमच्छ को मारकर खाने का चित्रण है। इसमें इन मछुआहों के प्रति घृणा का भाव नहीं है बल्कि उनके बल और साहस का चित्रण है। इसमें यह कल्पना किया गया है कि यदि ये अपने इसी पराक्रम से देश की गुलामी भगाने में जुट जाँय तो आजादी कितनी जल्दी मिल जाएगी।

इसी तरह नागार्जुन की 'बार बार हारा है' शीर्षक कविता गोवा तट के एक मछुआरे से सम्बंधित है जो मूलतः केरल के एक किसान का पुत्र है। इसमें उसके जीवन-संघर्ष, शौर्य और वीरता का वर्णन है। वह कहता है कि- "लवण उदधि का खारा पानी / मुझसे बार-बार हारा है।"[43] इसी तरह समकालीन कवि वीरेन डंगवाल ने अपनी कविता 'मल्लाह' में मल्लाहों के जीवन की समस्याओं, उनके तेज बुद्धि और नदियों के अनुभवजन्य ज्ञान इत्यादि को सृजनात्मक ढंग से रचा है। इसी भावबोध को लेकर केदारनाथ सिंह ने भी 'मैंने गंगा को देखा' और 'माँझी का पुल' जैसी कविताएँ रची हैं। उनकी कविता 'मैंने गंगा को देखा' में मल्लाह और पानी के रागात्मक सम्बन्ध को रचा गया है। शाम के वक्त बूढ़े मल्लाह द्वारा घर जाने से पहले चंचल जल के प्रति नज़रों से गहरी कृतज्ञता व्यक्त करने का भाव है। इसी तरह अष्टभुजा शुक्ल की 'यह बनारस है', लीलाधर मंडलोई की 'सुब्हान अल्ला', बाबुषा कोहली की 'मुझे अपनी नदी को कुछ जवाब देने हैं' इत्यादि शीर्षक कविताएँ मल्लाहों के जीवन-संघर्ष उनके राग-विराग से सम्बंधित हैं।

नागार्जुन की 'खुरदुरे पैर' और 'तेरी खोपड़ी के अन्दर' शीर्षक कविताओं में श्रमिक जीवन की गरिमामय अभिव्यक्ति हुई है। 'खुरदरे पैर' कविता में उन्होंने सौन्दर्य के सर्वदा नूतन रूप का चित्रण किया है। उन्होंने सौन्दर्य-दर्शन रिक्शाचालक के पैरों में फटी बिवाइयों में किया है। इस कविता के माध्यम से वे अब तक असुंदर और उपेक्षणीय माने जाने वाले जीवन के अंश में सौन्दर्य को देखा है। रिक्शाचालक के पैरों को वामन (पौराणिक चरित्र) के पैरों से बढ़कर रूप में रचा है-

"खुब गए

दूधिया निगाहों में

फटी बिवाइयों वाले खुरदरे पैर

धँस गए

कुसुम-कोमल मन में

गुट्ठल घट्ठों वाले कुलिश-कठोर पैर

दे रहे थे गति

रबड़-विहीन ठूँठ पैडलों को

चला रहे थे

एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन चक्र

कर रहे थे मात त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को

नाप रहे थे धरती का अनहद फासला

घंटों के हिसाब से ढोए जा रहे थे !"[44]

इस तरह रिक्शाचालक अपने श्रम के बल बूते धरती का अनहद फासला नापता रहता है। लेकिन बिडम्बना यह है कि यह सम्मानित श्रमजीवी घंटों के हिसाब से सवारी ढोने को मजबूर है।

प्रगतिशील कवियों की सौन्दर्य दृष्टि और राग भावना छायावादी कवियों से अलग है। जहाँ प्रगतिवादी सौन्दर्य दृष्टि में अनगढ़ता और यथार्थता है वहीं छायावादी सौन्दर्य दृष्टि में परिष्कृत और माधुर्य युक्त संवेदनाओं को रचा गया है। इस सन्दर्भ में विजय बहादुर सिंह का कथन उल्लेखनीय है- "छायावादी आवेगों में सौन्दर्य परकता जिन आधारों पर प्रदर्शित की गयी है, वे संवेदन आधार अत्यंत विशिष्ट और असाधारण है। जबकि प्रगतिशीलों की राग-भावना सामान्य और साधारण संवेदनों की अभिव्यक्ति करता है। स्पष्ट ही दोनों की सौन्दर्य दृष्टि का बारीक भेद इसमें काम कर रहा है। छायावाद परिष्कृत, पवित्र, माधुर्ययुक्त दृष्टि को अंगीकार करता है। कह सकते हैं छायावादी सौन्दर्य अधिक सांस्कृतिक है जबकि प्रगतिवादी सौन्दर्य में अनगढ़ता, लोक सामान्यता और यथार्थोन्मुखता है।"[45] इस प्रकार प्रगतिवादी या प्रगतिशील कवियों की सौन्दर्य दृष्टि लोकधर्मी चेतना से अनुप्राणित है।

नागार्जुन की कविता 'तेरी खोपड़ी के भीतर' मूलतः ब्राह्मणवादी सोच के विरुद्ध रची गयी कविता है। इस कविता के अंत में क्रोध का भाव इस स्तर तक पहुँच गया है कि कवि को गालीसूचक शब्दों का प्रयोग करना पड़ गया है। इसमें कवि ने कथात्मक शैली में रिक्शा चालक 'परेम परकास' का चित्रण किया है। प्रेमप्रकाश मूलतः कलीमुद्दीन था, जिसने कुछ दिन पूर्व ही अपना धर्म बदला है। कलीमुद्दीन बने रहकर वह अपने रिक्शे से परिवार का भरण-पोषण नहीं कर सका। उसमें नाम बदलने की बुद्धि आठ-दस रोज की भुखमरी झेलने के बाद आई है। कलीमुद्दीन भूख की भट्ठी में खाक होकर अब प्रेमप्रकाश बन गया है। प्रेमप्रकाश अब रुद्राक्ष की माला और गेरुआ

वस्त्र धारण कर रिक्शा चला रहा है। वह भविष्य में चुटिया भी रखेगा। इस कविता में गरीबों के जीवन पर धर्म के प्रभाव को महसूस किया जा सकता है।

प्रगतिशील कविता मनुष्येतर प्राणियों को भी पूरी मानवीयता के साथ चित्रित करती है। मनुष्य समाज के विकास में उनके सहयोगी भूमिका को सृजनात्मक आयाम देती है। उनके श्रम को गौरवान्वित करती है। इस सन्दर्भ में त्रिलोचन की कविता 'युग दर्पण' और केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'इक्के का घोड़ा' का उल्लेख किया जा सकता है। कवि ने 'युग दर्पण' कविता में सहयोगी पशु गदहा की सहनशीलता, सधी हुई चाल, सामाजिकता और शिष्टता को उद्घाटित किया है। उसे शेर से श्रेष्ठ रूप में चित्रित किया है। इसी तरह 'इक्के का घोड़ा' कविता में मनुष्य समाज के लिए जिंदगी भर बोझ ढोते-ढोते बूढ़े हुए घोड़े (खच्चर) के जीवन का भावपूर्ण चित्र है। जो अब अपनी ही जिंदगी का बोझ खींचने को विवश है।

प्रगतिशील कविता में निम्नमध्यवर्गीय जन की संवेदना को भी उद्घाटित किया गया है। इन कविताओं में राजनीतिक चेतना कलात्मक रूप में अभिव्यक्त हुई है। इनमें मनुष्य की नियति को राजनीतिक सिद्धांतों के दायरे में चित्रित करने की कोशिश की गयी है। इस सन्दर्भ में 'हाथों के दिन कब आयेंगे', 'जिंदगी का रास्ता', 'पीत ढलती हुई साँझ', 'सूखे कठोर नंगे पहाड़', 'प्रथम छंद', 'दिन-धरती-जनता', 'सागर तट', 'एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों ठेलता', 'वाम वाम दिशा', 'य' शाम' इत्यादि शीर्षक कविताएँ महत्वपूर्ण हैं।

मुक्तिबोध की कविता 'जिंदगी का रास्ता' एक लम्बी और मार्मिक कविता है। यह मुक्तिबोध की आत्मकथात्मक कविता के रूप में मानी जाती है। इसका काव्य-नायक रामू एक मामूली आत्मचेतस कर्मचारी है। जो शाम को 'मिल के काले धुएँ के बल खाते बादलों को देखता हुआ' धूल भरा रास्ता तय करता है। जिसके हृदय को

(बीसवीं सदी के पचासवें चरण में) पूंजीवादी अत्याचारों के बीच उसकी अंतर्चेतना सत्य की शक्ति और हिम्मत की राह देती है। उसके आत्मविश्वास और उत्साह का स्तर भव्यतम दृश्यों का सृजन करती है। काम के तलाश में दिनभर व्यर्थ गुजर जाने के बाद रामू सोचता है कि-

"रात में भिड़ूँगा अब, जूझूंगा, आधी रात

प्रभात के कपोलों को

हृदय के दाह-भरे चुम्बन से

लाल कर दूंगा मैं ।

यांगटीज की बलशाली, अनुभव-गंभीर

अंत स्पर्शिनी बल खाती लहरें

हिये के निभृत शैल विवर सहलाती हुई

कगारों को हिलाती-गुंजाती हुई

मलाया के अरण्य-प्रदेशों के घनच्छाय

मनोहर वृक्षों के घनघोर

गीतों की ऊँची उठती हुई लय में

रामू के हियरे में तूफानी भव्यतम

संगीत जगा गयी।"[46]

रामू पूँजीवादी शक्ति के आधुनिक शोषण को देखता और सोचता है। वह इस पूँजीवादी शक्ति को आधुनिक आदमखोर और सहस्त्रमुख रावण मानता है। जिसके यहाँ बड़े-बड़े बुद्धिमान, नेतागण, साहित्यकार और ईश्वर भी पहरा देते प्रतीत होते हैं। इन लोगों की बौद्धिक प्रवृति को रामू जानता और समझता है-

"स्वार्थी भी चाहते हैं औचित्य, संगति

सामंजस्य,

सुविधा की डोर से वे शोषण के तर्कों को बांधकर

फिराते हैं घुमाकर विचारों के पत्थर।

शोषण की बर्बर तरु-शाखाओं पर लटकाकर

फांसी के झूले में मानव

चाहते हैं छूना वे मानव के सत्य को।"[47]

काव्य नायक रामू को पूंजीवादी शासन व्यवस्था में आधुनिक बुद्धिजीवियों का जीवन ठीकरे सा लगता है। वह इन पूंजीवादी शक्तियों की क्रूरता और अमानवीयता से परिचित है। मुक्तिबोध ने इस कविता में शोषण का शिकार होते मजदूरों और निम्नवर्गीय लोगों के जीवन दशा को चित्रित किया है। पूंजीवादी व्यवस्था के विद्रूपता का चित्रण किया है। निम्न-मध्यवर्ग की दयनीयता को रचा है जिसमें उसे बिक जाने पर भी दूषित उपलब्धि ही हासिल होती है। इस उपलब्धि तक पहुँचने के लिए भी उसे टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर जाना पड़ता हैं। उसे गोल-गोल, घुमावदार, चक्करदार और जंग लगे पुराने लोहे की ऊँची-ऊँची, सिकुड़ी-सिकुड़ी, छोटी-छोटी खतरनाक सीढियाँ चढ़कर ही यह उपलब्धि हासिल होती है।

मुक्तिबोध की 'पीत ढलती हुई साँझ' शीर्षक कविता में काव्य नायक के काम से निराश और हताश होकर घर लौटने का चित्रण है। दरअसल वह 'दिन के निरे व्यर्थ श्रम-भार उपरान्त' घर लौटता है। उसके मन की उदासी ढलती हुई पीत साँझ में समायी हुई है। कठोर मेहनत के बाद भी वह अपने और अपने परिवार की समस्याओं से घिरा रहता है। उसके मन पर छाई हुई निराशा की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"मैं सोचता चल रहा हूँ की कैसे मिटाऊँ

थके पैर में यह समायी हुई मोच

कैसे जलाऊँ लगे जिंदगी में

कठिन आपदा की

ततैयोभरे घोर छत्ते

यही एक अनुशोच

इसी सोच के साथ-ही-साथ

श्यामल गली की कठिन जिंदगी हो गयी दृश्य दु स्वप्न साक्षात्"[48]

यह कविता काव्य नायक के मन पर छाई हुई उदासी से शुरू होती है और सुखद भविष्य के स्वप्न की उम्मीद के साथ अंत होती है। इसी तरह मुक्तिबोध की 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' श्रमिक संवेदना से जुड़ी कविता है। इसमें समाज से शोषण और विषमता को समाप्त कर समानता और बंधुत्व को कायम कायम करने की संवेदना का भावपूर्ण चित्रण है। इसमें कवि ने श्रमिकों के आकांक्षाओं को उनके नेता 'महाश्रमिक' से व्यक्त किया है। इस कविता के विषय में नन्द किशोर नवल ने कहा है कि- " 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' उनकी एक जोरदार कविता है, जो 'कष्टजीवियों के प्रतिनिधि'

यानी मजदूर नेता को संबोधित कर लिखी गयी है। मुक्तिबोध ने मजदूर-नेता को 'महाश्रमिक' और 'जन-क्रांति-रूप' कहा है। 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतीक हैं। कवि ने मजदूर नेता से आग्रह किया है कि वह उन पहाड़ों को अपने बाहु-बल से उठाकर इतिहास के समुद्र में फेंक दे"[49] इस तरह मुक्तिबोध ने इस कविता में श्रमजीवियों को शोषण के चंगुल से मुक्ति की आकांक्षा व्यक्त किया है।

इस शोध हेतु चयनित प्रगतिशील कवियों की वैचारिक प्रतिबद्धता मार्क्सवाद के प्रति रही है। कुछ कविताओं में मार्क्सवादी सिद्धांत इस तरह से रचे गए हैं कि उनमें नारेबाजी का भाव अधिक महसूस होता है। कविता भावनात्मकता को छोड़ कोरे सिद्धांत को व्यक्त करती प्रतीत होने लगाती है। इस सन्दर्भ में शमशेर अलग ठहरते हैं। उनकी क्रांतिधर्मी चेतना से रचित कविताएँ भी नारे के खिलाफ हैं। उनमें जनता से जुड़ने और प्रभावित करने की शक्ति है। दरअसल वे जन आन्दोलनों के ध्वनि और गूँज को कविता में रचते हैं। हर भाव को व्यक्त करने की उनकी अपनी अलग भाषा होती है। वे जनता के संघर्ष को कला के संघर्ष से जोड़कर देखते हैं। उनका मानना है कि 'वर्तमान की कला का असली गुण और भेद तो उन लोक कलाकारों के पास मौजूद है जो जन आंदोलनों में अपनी भागीदारी दे रहें हैं। वे अपने को टूटते हुए मध्यवर्ग का कवि बताते हैं। कला के उस भेद और गुण को वहीं से पाने की बात करते हैं।' उनके इस आत्मसंघर्ष को इस कविता में देखा जा सकता है-

"वाम वाम वाम दिशा,

समय साम्यवादी।

पृष्ठभूमि का विरोध अन्धकार-लीन । व्यक्ति ...

कुहाअस्पष्ट हृदय- भार, आज हीन ।

हीनभाव, हीनभाव

मध्यवर्ग का समाज, दीन।

...भारत का

भूत-वर्तमान औ' भविष्य का वितान लिए

काल-मान-विज्ञ मार्क्स-मान में तुला हुआ

वाम वाम वाम दिशा,

समय : साम्यवादी।"[50]

शमशेर कृषक चेतना और मजदूरों के संघर्ष को सृजनात्मक आयाम देने में सिद्धहस्त कवि हैं। ये जरूर है कि इस तरह की जितनी कविताएँ अन्य कवियों ने लिखीं उतनी शमशेर ने नहीं। यह चेतना नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और मुक्तिबोध की कविताओं में अधिक व्यक्त हुआ है। इस सन्दर्भ में 'सम्पूर्णता के कवि थे शमशेर' शीर्षक अपने लेख में मंगलेश डबराल ने लिखा है कि- "आज अगर हम शमशेर को देखते हैं तो पाते हैं कि उनकी कविताओं का रेंज इतना बड़ा है कि वैसा किसी और कवि का नहीं है। प्रेम और सौन्दर्य की अथाह और गहरी भावना से लेकर आम आदमी तक और जनसाधारण, शोषित, दलित से लेकर मजदूरों तक उनकी कविता का एक व्यापक फलक दिखाई देता है। दिलचस्प यह है कि शमशेर ने लिखा कम है लेकिन इस कम लिखने में जितना दायरा शमशेर का है, उतना बड़ा दायरा शायद कोई और कवि नहीं समेट पाता।"[51] इस तरह शमशेर के काव्य में संवेदना का आयाम बहुत व्यापक है। उन्होंने प्रेम और सौन्दर्य के भावपूर्ण चित्रण के साथ-साथ मजदूरों और किसानों के संघर्ष को भी कलात्मक रूप में रचा है। इस

सन्दर्भ में उनके 'य' शाम है', 'शाम होने को हुई', 'सागर-तट' और 'टूटी हुई बिखरी हुई' शीर्षक कविताएँ देखी जा सकती हैं। 'शाम होने को हुई' शीर्षक कविता में किसानी-जीवन का यह दृश्य द्रष्टव्य है-

"शाम होने को हुई, लौटे किसान

दूर पेड़ों में बढ़ा खग-रव।

धुल में लिपटा हुआ है आसमान :

शाम होने को हुई, नीरव"[52]

वहीं उनकी दूसरी कविता ' य' शाम है' में मजदूर आन्दोलन का भावपूर्ण चित्र इस तरह है-

"य' शाम है

कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का। /

लपक उठीं लहू-भरी दराँतियाँ,

-कि आग है:

धुआँ-धुआँ

सुलग रहा

ग्वालियर के मजूर का हृदय।"[53]

इसी तरह 'सागर-तट' शीर्षक कविता में समंदर की पछाड़ खाती लहरों द्वारा पहाड़नुमा अति कठोर तट को तोड़ने का चित्र-

"यह समंदर की पछाड़

तोड़ती है हाड़ तट का-

अति कठोर पहाड़"[54]

इस तरह शमशेर की कविताओं का यदि समग्रता में विवेचन-विश्लेषण किया जाये तो उनके प्रति अब तक बने धारणा को नया आयाम मिलेगा। विष्णु खरे ने 'उद्भावना' पत्रिका के 'होड़ में पराजित काल' (शमशेर विशेषांक) की भूमिका में यह स्वीकार किया है कि 'शमशेर एक कम्युनिस्ट रचनाकार थे। लेकिन उनकी राजनीतिक समझ, प्रतिबद्धता और पकड़ का अब तक कोई विधिवत मूल्यांकन नहीं हुआ है।' शमशेर की कविता-संसार में आदमी के जीवन की विविध अनुभूतियों, अनुभवों और विचारों इत्यादि को रेखांकित किया जा सकता है। अशोक बाजपेयी ने जीवन के अनेक छवियों और रंगतों की मौजूदगी को दर्शाते हुए 'आदमी' को ही उनकी कविता का केंद्र माना है। उन्होंने 'टूटी हुई, बिखरी हुई' कविता संग्रह की भूमिका में लिखा है कि- "अंततः शमशेर की कविता के केंद्र में है आदमी, दो कुहनियों से पहाड़ों को ठेलता हुआ, पतझड़ के जरा अटके हुए पत्ते- सा, ताक पर अपने हिस्से की धरी होने पर बड़ी रात गए काम से लौटने पर शक करता हुआ, होली के भय, दीवाली और ईद-मुहर्रम के एक ही भांति के आतंक से त्रस्त, अंतिम लोरियों के बजाय अँधेरे की तलवारों से जूझता हुआ, गंगा में कीचड़ की तरह सोता हुआ, बीती हुई अनहोनी और होनी की उदास रंगीनियों में फ़कत उलझा हुआ, शब्द के परिष्कार को स्वयं दिशा मानता हुआ, हृदय की सच्ची सुख-शांति का बहुत आदिम, बहुत अभिनव राग गाता हुआ आदमी।"[55] इस तरह शमशेर की कविताओं में संवेदना का आयतन

बहुत विस्तृत है। यह प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य से होते हुए उनके मित्रों तथा क्रांतिकारियों के साथ ही किसानों एवं मजदूरों तक फैली हुई है।

उपर्युक्त विवेचन-विशेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रगतिशील कविता का दायरा बहुत विस्तृत है। इनमें मानव समाज के उन्नति के लिए सकारात्मक मूल्यों, मान्यताओं और आदर्शों का सृजन किया गया है। जीवन के विविध पक्षों, आयामों और रंगतों को मानवतावादी दृष्टिकोण से रचा गया है। इसमें एक ऐसे समाज का स्वप्न बुना गया है जो शोषण विहीन, न्यायपरस्त और समानता आधारित हो। इस सन्दर्भ में केदारनाथ अग्रवाल के विचार का उल्लेख जरुरी है। उन्होंने 'आत्मगंध की भूमिका' में लिखा है- "मेरी अपनी धारणा यह है कि ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जो समता, न्यायप्रियता और समान अवसर देने की क्षमता रखती हो और आदमी को इसी संसार में द्वंद्व से मुक्त करने के लिए प्रतिबद्ध हो। तभी सच्चा लोकतंत्र होगा, तभी आदमी आदमी को प्यार करेगा; नर-नारी के सम्बन्ध प्रगाढ़ प्रेम से अटूट बनेंगे; और समाज तथा देश का कल्याण होगा। न कोई किसी का शोषण करेगा न कोई किसी का क्रीतदास होगा। लोग जियेंगे और दूसरों को जीने देंगे।"[56] जाहिर है व्यक्ति-व्यक्ति के आत्मोन्नति के लिए, ज्ञान-विज्ञान, कला और संस्कृति के विकास के लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था होना ही चाहिए। इस तरह प्रगतिशील कविता समाज में मौजूद सामजिक व्यवस्था की खामियों को उद्घाटित करती है। वह सामाजिक वास्तविकता के प्रति सजगता और संवेदनशीलता को बढ़ाती है।

प्रगतिशील कविता के विभिन्न तत्वों, प्रवृत्तियों और आयामों में से श्रम-सौन्दर्य भी एक आयाम है। जिसमें मूलतः श्रम को एक सामाजिक मूल्य के रूप में स्थापित किया

गया है। इसमें यथार्थवादी दृष्टि से खेतों, सड़कों, कारखानों, दुकानों, आफिसों आदि में काम करने वाले श्रमिकों के श्रम एवं उनके जीवन-संघर्ष को रचा गया है। यहाँ नागार्जुन की कविताओं के विषयवस्तु को लेकर विजय बहादुर सिंह की टिप्पणी उल्लेखनीय है। यह चयनित सभी कवियों पर बराबर या आंशिक रूप से लागू होती है। उन्होंने लिखा है- "यही वह अस्सी प्रतिशत आबादी है जिसकी चर्चा कवि ने बार-बार की है। खेतों में काम करने वाले खेतिहर मजदूर, किसान, महानगरों में रिक्शा-ठेला खींचने वाले, बोझा ढोने वाले, बस ट्राम के ड्राइवर, फैक्ट्रियों के चटकल मजदूर, धान कूटती किशोरियां, फूटपाथों पर पड़े हुए भिखारी, गूंगे-बहरे लोग, असहाय बुढ़ापा काटते वृद्धजन, हिमालय के बर्फीली घाटियों में देशाभिमानी व्रती सैनिक, विज्ञापन सुंदरियाँ, सामाजिक बर्बरता की बोझ ढोती युवतियाँ, कूड़े-कचरे के ढेर से भोजन की तलाश करते हुए भूखे नंगे भिखारी, सब नागार्जुन के कविता यात्रा के महत्वपूर्ण सहचर हैं।"[57] इस तरह चयनित कवियों की श्रम-संबधी कविताओं में बहुजन समाज के श्रमजीवियों की संवेदना के विभिन्न आयाम मौजूद हैं। इसमें फसलों की उत्पादन प्रक्रिया में वर्ष भर विभिन्न चरणों में होने वाले श्रम से जुड़ी हुई संवेदना व्यक्त हुई है। जुताई से लेकर निराई-गुड़ाई और कटाई-मड़ाई तक यानी हर स्तर पर होने वाले श्रम की संवेदना गीतों और कविताओं में पिरोई गयी है। मजदूर परिवार में जन्मोत्सव से लेकर सड़कों, कारखानों, कार्यालयों, शहरों, नगरों, उपनगरों, महानगरों, कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों में मेहनत-मजदूरी करने वाले जन की संवेदना व्यक्त हुई है। इसी तरह नदियों, झीलों, तालाबों जैसे जलस्रोतों पर निर्भर जन-जीवन की संवेदना है तो साथ ही मनुष्येतर पशुओं की श्रमशीलता से जुड़ी संवेदना भी अभिव्यक्त हुई है।

प्रगतिवादी या प्रगतिशील कविता में संवेदना के विविध आयाम हैं परन्तु उसका शिल्प कमजोर प्रतीत होता है। धर्मवीर भारती ने इस ओर ध्यान दिलाते हुए अपनी पुस्तक 'प्रगतिवाद:एक समीक्षा' में लिखा है कि 'किसी भी रचना को साहित्य मानने के लिए उसे केवल प्रगतिवादी होना ही काफी नहीं होता है उसमें साहित्यिकता और साहित्यिक नियमों से संचालित होना भी जरूरी होता है।' दरअसल प्रगतिवादी कविता छायावादी वायवी, असामान्य और सूक्ष्मता को छोड़ जीवंत भाषा शैली के रूप में उदित हुई थी। उसमें सरलता, सहजता और सुस्पष्टता थी। उसने प्रतीक, बिम्ब, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और चित्र इत्यादि सब कुछ जन जीवन से लिया था। लेकिन "प्रगतिवाद के आरंम्भ में भाषा शैली की यह स्पष्टवादिता, अतिवादिता तक पहुंचकर व्याख्यान की भाषा की तरह सपाट हो गयी, उसमें अभिधा की प्रधानता हो गयी। शैली सांकेतिक और चित्रात्मक न हो कर उपदेशात्मक हो गयी।"[58] इस तरह प्रगतिशील कविता में कलात्मक सौन्दर्य का निखार नहीं के बराबर मिलता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची:

[1] आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां : नामवर सिंह, पृष्ठ 66, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011

[2] वही, पृष्ठ 81

[3] बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी : केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 120, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[4] नागार्जुन रचनावली भाग-2, संपादन और संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 443-444, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2003

[5] काल तुझसे होड़ है मेरी : शमशेर बहादुर सिंह, रंजना अरगड़े (चयन), पृष्ठ 22, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2002

[6] बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी : केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 66-67, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[7] पेड़ का हाथ (केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का विवेचन) : विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 65, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2002

[8] काल तुझसे होड़ है मेरी : शमशेर बहादुर सिंह, रंजना अरगड़े (चयन), पृष्ठ 20, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2002

[9] होड़ में पराजित काल : उद्भावना शमशेर बहादुर सिंह विशेषांक, संपादक विष्णु खरे, पृष्ठ 91, अंक 97 फरवरी 2012

[10] काल तुझसे होड़ है मेरी : शमशेर बहादुर सिंह, रंजना अरगड़े (चयन), पृष्ठ 22, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2002

[11] मुक्तिबोध रचनावली भाग-2, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 88, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 1986

[12] वही, पृष्ठ 94

[13] प्रतिनिधि कविताएँ, केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 50, राजकमल पेपरबैक्स प्रकाशन, पांचवां संस्करण 2020

[14] होड़ में पराजित काल : उद्भावना शमशेर बहादुर सिंह विशेषांक, संपादक विष्णु खरे, पृष्ठ122, अंक 97 फरवरी 2012

[15] अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक) : दूसरा सप्तक, पृष्ठ 99, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण 1999

[16] बात बोलेगी : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 29, संभावना प्रकाशन हापुड़, 1981

[17] वही, पृष्ठ 25

[18] धरती : त्रिलोचन शास्त्री, पृष्ठ 8, प्रदीप प्रेस मुरादाबाद, 1945

[19] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 31, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[20] सबका अपना आकाश : त्रिलोचन, पृष्ठ 17, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1987

[21] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 17, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[22] जो शिलाएं तोड़ते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 150-151, संपादक अशोक त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2009

[23] अरघान : त्रिलोचन, चयन एवं संपादन विष्णुचंद्र शर्मा, पृष्ठ 86, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2015

[24] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 133, साहित्य भण्डार इलाहाबाद, संस्क 2009

[25] जो शिलाएं तोड़ते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 7 (भूमिका) साहित्य भंडार इलाहाबाद 2009

[26] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 55 , साहित्य भण्डार इलाहाबाद, संस्क 2009

[27] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 74, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[28] केदारनाथ अग्रवाल संकलित कवितायें, चयन और संपादन विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ xvi (भूमिका) नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, संस्क 2011

[29] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 159, साहित्य भण्डार इलाहाबाद 2009

[30] कहें केदार खरी-खरी : केदारनाथ अग्रवाल, संपा. अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 113, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[31] पेड़ का हाथ (केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का विवेचन) : विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 60, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क 2002

[32] नागार्जुन रचनावली भाग-2, संपादन-संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 180, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क. 2003

[33] वही, पृष्ठ 373 -374

[34] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 98, साहित्य भंडार इलाहाबाद, संस्क. 2009

[35] मुक्तिबोध रचनावली भाग-1, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 400-401, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स 1985

[36] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 44, साहित्य भण्डार इलाहाबाद, संस्क 2009

[37] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 72 , साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[38] नागार्जुन रचनावली भाग-1, संपादन-संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 351, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2003

[39] जीने की कला : त्रिलोचन, पृष्ठ 21, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, 2004

[40] पुष्पदीप : केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 83, साहित्य भंडार इलाहाबाद, संस्क. 2009

[41] बढ़ई का बेटा : कृष्ण कल्पित, पृष्ठ 25, रचना प्रकाशन, 1990

[42] बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी : केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 144, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[43] नागार्जुन रचनावली भाग-2, संपादन-संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 370, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2003

[44] नागार्जुन रचनावली भाग-1, संपादन-संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 301, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क-2003

[45] नागार्जुन का रचना संसार : विजय बहादुर सिंह, पृष्ठ 83, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क.2014

[46] मुक्तिबोध रचनावली भाग-1, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 262, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स 1985

[47] वही, पृष्ठ 264

[48] वही, पृष्ठ 379

[49] भारतीय साहित्य के निर्माता मुक्तिबोध : नंदकिशोर नवल, पृष्ठ 76, साहित्य अकादमी प्रकाशन, पुनर्मुद्रण संस्करण 2016

[50] कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 88, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरी आवृति संस्करण 2004

[51]https://www.bbc.com/hindi/india/2011/03/110202_spl_shamsher_manglesh_vv

[52] कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 32, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरी आवृति संस्करण 2004

[53] बात बोलेगी : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 51, संभावना प्रकाशन हापुड़, 1981

[54] कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 37, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरी आवृति संस्करण 2004

[55] टूटी हुई बिखरी हुई (चुनी हुई कविताएं) : शमशेर बहादुर सिंह, संपादक अशोक बाजपेयी, भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति संस्करण 2004

[56] आत्मगंध : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 8 (भूमिका), साहित्य भंडार इलाहाबाद, संस्क. 2009

[57] नागार्जुन का रचना संसार : विजय बहादुर सिंह, पृष्ठ 58, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2014

[58] हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक नगेन्द्र, सह-संपादक हरदयाल, पृष्ठ 608, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली

चौथा अध्याय

श्रम-सौन्दर्य और भाषा-शिल्प

4.1. बिम्ब और प्रतीक

4.2. व्यंग्यात्मकता

4.3. नाटकीयता, संवादधर्मिता और फैंटेसी शिल्प

4.4. मुहावरे, लोकोक्तियाँ और अलंकार

श्रम और सौन्दर्य का सम्बंध मानव जीवन से है। श्रम, सौन्दर्य के सृजन का कारक है। 'सौन्दर्य को श्रम की सार्थकता और श्रम को सौन्दर्य का आधार' माना जाता है। श्रम मनुष्य को सामाजिक बनाता है। सौन्दर्य का स्रोत प्रकृति है। मनुष्य अपने श्रम से प्रकृति के समानांतर सौन्दर्य-सृजन करता है। कई मायनों में उससे बेहतर करता है। वह प्राकृतिक सौन्दर्य को यथासंभव अपने सौन्दर्यबोध के अनुरूप परिवर्तित भी करता है। इसीलिए मानव-श्रम को 'द्वितीय प्रकृति' की संज्ञा दी जाती है। दरअसल श्रम की पूरी प्रक्रिया ही सृजनशील है। सामान्यतः 'भांड कर्म' को मनुष्य द्वारा निर्मित पहला शिल्प-कर्म माना जाता है। यह शिल्प-कर्म भी सौन्दर्य के अपने नियमों से परिचालित था। मसलन, प्रत्येक वस्तु का निर्माण सौन्दर्य-नियमों पर टिका होता है। कला भी श्रम का ही उत्पाद है। इसका उद्देश्य मानवता के उन्नति हेतु नवीन मूल्यों और आदर्शों को रचना है। पुराने जर्जर मान्यताओं और रूढ़ियों को छोड़ना भी है।

श्रम के सौन्दर्यात्मक तत्व को लेकर मार्क्स का यह चिंतन बेहद महत्वपूर्ण है कि- 'श्रम को स्वतंत्र एवं रचनात्मक होना चाहिए' अर्थात श्रम करने हेतु मनुष्य को मजबूर और लाचार नहीं होना चाहिए, परन्तु ऐतिहासिक रूप से मजदूर वर्ग मजबूरी में श्रम करने के लिए विवश रहा हैं। श्रम में जब व्यक्ति की सहमति और स्वतंत्रता का अवसर होता है तब उसकी रचनात्मकता और सृजनधर्मिता दिखाई देती है। मसलन, पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम का आनंद गायब हो जाता है। व्यक्ति की इच्छाएं और आदतें मशीनी होने लगती हैं। इस तरह धीरे-धीरे व्यक्ति के मानवीय गुणों का ह्रास होने लगता है। इन्हीं मानवीय गुणों और मनुष्यता को बचाने हेतु रचनाकारों ने अपनी कविताओं में पूँजीवाद और पूँजीवादी तंत्र का विरोध किया है। अपने मानवता का पतन होने लगता है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध की कविता 'उलट-पुलट शब्द' में व्यक्ति के मशीन में परिवर्तित होते जाने की प्रक्रिया का भावपूर्ण चित्रण है। एक अंश द्रष्टव्य है–

"साँचे में जबरदस्त

पिघला हुआ सीसा उंडेलता हूँ

द्रवीभूत कुमकुमी रग वह

बनता है ईंटनुमा

धीरे-धीरे साँवला।

सँवलाये सीसे की देह पर

चिनगियाँ जमीं फिर।

विक्षोभ पड़ गया साँवला

और फिर उसी लौह

साँचे से मूर्ति एक

निकली है जड़ीभूत।

और, फिर, मुझसे यह कहा गया

यह मूर्ति तुम हो तुम खुद। "[1]

मनुष्य का जीवन पूँजीवादी व्यवस्था में मशीनी तंत्र की भांति यंत्रवत हो जाता है। इस कारण मनुष्य का व्यवहार मशीनी पुर्जे की तरह बनने लगता है। खुद की ज़िंदगी को केवल समयबद्ध अनुशासनों में ही गुजारने लगता है। उसकी रचनात्मकता नष्ट हो जाती है। कुल मिलाकर व्यक्ति के अन्दर का मनुष्य मर जाता है; केवल बची रह जाती है मशीन। पाश्चात्य रचनाकार लुईस मक्रेइस ने 'मशीन' शीर्षक

कविता लिखी है, जिसमें एक आस्थावान व्यक्ति की अजन्मी आत्मा पूँजीवादी व्यवस्था में जन्म लेने से पहले ही अपने को मृत मानती है। वह अपनी आत्मा की शांति के लिए भगवान से प्रार्थना करती है-

"मरने से पूर्व प्रार्थना

मैं अभी पैदा नहीं हुआ हूँ।

भगवान, मुझे शांति दे

जिससे मैं उनके खिलाफ खड़ा हो सकूँ।

जो मेरी मानवता को जमा देना चाहते हैं।

जो मुझे प्राणघातक स्वचालित मशीनों में धकेल रहे हैं।

मुझे मशीन का पुर्जा बनाना चाहते हैं

एक चीज बनाना चाहते हैं

आधे चेहरे के साथ, एक चीज।"[2]

इस तरह यह कविता पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध एक मानवतावादी व्यवस्था की संभावना तलाशती है। मनुष्यता को बचाए रखने की पक्षधरता को रचती है। आदमी को मशीन बनने से बचाने की पीड़ा को बयां करती है।

ऊँचे दर्जे की सौन्दर्यात्मक अनुभूति का जन्म दक्षता के विकास से होती है। यह समय के साथ बढ़ती जाती है। इसके विकास से सौन्दर्यानुभूति भी सूक्ष्म होती जाती है। इस सौंदर्यानुभूति में निहित आनंद रचनाकार और रचना दोनों को प्रभावित करती है। निकोलाई सिलायेव ने अपनी पुस्तक 'प्राब्लम्स ऑफ़ मॉडर्न एस्थेटिक्स' के

एक निबंध में उद्धरण योग्य एक प्रकरण का उल्लेख किया है। इसमें श्रम में निहित सौन्दर्य का उद्घाटन हुआ है। कहानी कुछ इस तरह है कि- 'रूस के प्रसिद्ध मूर्तिकार निकोलाई टामस्की को एक श्रमिक की मूर्ति बनाने के लिए एक कारखाने में बुलाया गया। उसे जिस श्रमिक की मूर्ति बनानी थी उससे कार्यालय में भेंट की। उसके दुबले एवं अनाकर्षक काया को देखकर टाम्सकी निराश हुए। मसलन, उन्हें उसमें कुछ विशेष गुण नज़र नहीं आया। बाद में जब उन्हें कारखाने के भीतर ले जाया गया तो वे एक मशीन पर कार्य करते हुए मजदूर को देखकर रोमांचित हो उठे। श्रम के दौरान उस मजदूर के सुगठित और उर्जस्वित शरीर की सुन्दरता, सक्रियता और तन्मयता रोमांचकारी थी। वह बाह्य वातावरण से अप्रभावित रहते हुए श्रम में लीन अपूर्व सौन्दर्य की छटा बिखेर रहा था। श्रमशीलता के सौन्दर्य को देखकर टाम्सकी ने उस मजदूर की मूर्ति बनाने का निश्चय किया। बाद में यह जानकर हैरान हो गए कि यह वही मजदूर था जिससे उनकी कार्यालय में भेंट हो चुकी थी।' अतः श्रम करता हुआ कोई भी व्यक्ति अपने में सौन्दर्य छिपाए रखता है क्योंकि श्रम और सौन्दर्य के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

श्रम-सौन्दर्य से जुड़ी कविताएँ श्रम में आस्था और विश्वास का सृजन करती हैं। कवियों ने श्रमजीवियों के जीवन में व्याप्त दुःख-दर्द, आशा-निराशा, राग-विराग, हर्ष-उल्लास इत्यादि को रचकर उनके महत्त्व को उद्घाटित किया है। इन कविताओं से जिन मूल्यों का सृजन होता है उनका एक राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व है। मानवता के विकास हेतु संसार में चल रही 'श्रम-यज्ञ' में आस्था एवं विश्वास है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'जो शिलाएं तोड़ते हैं' में कवि ने श्रमशील जन को ही ज़िंदगी को गढ़ने और उसे नई दिशा देने का उत्तराधिकारी स्वीकार किया गया है। एक अंश द्रष्टव्य है-

"जिंदगी को

वह गढ़ेंगे जो शिलाएं तोड़ते हैं,

जो भगीरथ नीर की निर्भय शिराएँ मोड़ते हैं।

यज्ञ को इस शक्ति-श्रम के

श्रेष्ठतम मैं मानता हूँ !!"[3]

इस कविता में कवि ने खदानें खोदने, प्रभंजन हांकने, प्रलय को रोकने और रक्त से रंजित धरा पर शांति पथ खोजने वालों को श्रेष्ठतम मनुष्य स्वीकार किया है। इस कविता में श्रमजीवी वर्ग को जिंदगी के असल शिल्पकार के रूप में उद्घाटित किया गया है।

इस अध्याय में चयनित कवियों के श्रम-सम्बन्धी कविताओं में अभिव्यक्ति पक्ष / शिल्प पक्ष पर विचार किया जायेगा। यह भावाभिव्यक्ति और सम्प्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम है। यह कवि के अनुभूति मापन का 'बैरोमीटर' है। मसलन, कवि की अनुभूति के किले में पहुचने के लिए भाषा ही प्रवेश द्वार होती है। अज्ञेय काव्य की बुनियाद ही भाषा को मानते हैं। काव्य में भाषा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए वे तारसप्तक के द्वितीय संस्करण के कवि-वक्तव्य 'पुनश्च' में लिखते हैं कि- "काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अंत में भी यही बात रह जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि-धर्म इसी परिभाषा से निसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान-शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृती बनाती है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं। इतना ही नहीं, सारे सामाजिक सन्दर्भ भी यहीं से निकलते हैं: इसी में युग सम्पृक्ति का और कृतिकार के

सामाजिक उत्तरदायित्व का हल मिलता है या मिल सकता है।"[4] इस प्रकार भाषा अपने समय के वैचारिक सन्दर्भों, द्वंदों और युग बोध को धारण करती है। कविता को स्मृतिजन्य बनाने में शिल्प का बड़ा योगदान होता है। शिल्प दरअसल 'सुनियोजित और सुसंगत शब्दों का समूह' होता है। लीलाधर जगूड़ी का मानना है कि 'गहरी से गहरी मानवीय अनुभूति, उच्च विचार और संवेग आदि को शिल्प के माध्यम से ही हम स्मृति का हिस्सा बनाते हैं।'

इस प्रकार चयनित कवियों की श्रम-सम्बन्धी कविताओं की बनावट और बुनावट को लेकर कुछ सवाल उठते हैं, जैसे- इनकी भाषा-प्रकृति कैसी है, शैलीगत विशेषता- व्यंग्यात्मकता, वर्णात्मकता, संवादधर्मिता, बिम्बधर्मिता और नाटकीयता का स्वरूप क्या है? किस तरह के लोकोक्ति और मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं। श्रम-सम्बन्धी कविताओं की भाषा उनके स्वयं की प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्यपरक कविताओं की भाषा से कैसे भिन्न है? इस प्रकार इस अध्याय में श्रम-सम्बन्धी कविताओं की भाषा-शिल्प सम्बन्धी समग्र अध्ययन एवं विश्लेषण किया जायेगा।

प्रगतिशील कवियों का उद्देश्य स्पष्ट था। उन्होंने भाषा की सहजता, सरलता, प्रवाहमयता तथा लय आदि का विशेष ध्यान रखा है। उनका मानना है कि कविता जनता के लिए है, वह समाज से शोषण और असमानता को समाप्त करने का एक साधन है। इसलिए इन कवियों का उद्देश्य जनता की संवेदनाएँ जनता की बोली-भाषा में रचना है। अतः उन्होंने भाषाई-दुरूहता और शिल्पगत जटिलता का मार्ग नहीं अपनाया। अजय तिवारी ने लिखा है कि- "प्रगतिशील कविता के सामने मुख्य प्रश्न काव्यात्मक समझे जाने वाले प्रश्नों से निर्मित एक ऐसी काव्य-भाषा के प्रयोग का कभी नहीं रहा जो गुणदोष वाचकता से निरपेक्ष शुद्ध कविता की रचना में सहायक

हो। उसके सामने मुख्य प्रश्न रहा है जनता के साथ जीवंत घात-प्रतिघात को मूर्त कर सकने वाली ऐसी भाषा के प्रयोग का जो कवि और पाठक के बीच फासले को कम करे, जनता में संघर्षशील एकता लाये और जीवन के कथ्य को पूरी-पूरी प्रमाणिकता के साथ प्रतिबिंबित करे।"[5] मसलन, जनता के जीवन संघर्ष को, उनके जीवन की खुरदरी सच्चाइयों को कोमल-कोमल शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। उसके लिए जीवन के ताप को वहन करने वाले शब्द ही उपयुक्त होंगें। इसी कारण प्रगतिशील कविता में छायावादी भाषा की लाक्षणिकता और व्यंजकता बहुत हद तक अनुपस्थित है। वह अभिधात्मक भाषा में रूपांतरित हो गयी है। शिल्प की अपेक्षा अंतर्वस्तु ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है। मुक्तिबोध और शमशेर को छोड़ अन्य तीनों कवियों की भाषा इसी प्रकार की प्रतीत होती है। मुक्तिबोध और शमशेर की भी श्रम-सम्बन्धी कविताओं की भाषा उनकी स्वयं की अन्य कविताओं से अपेक्षाकृत सहज और सरल है। इस दृष्टि से शमशेर की 'शाम होने को हुई', 'स्वतंत्रता दिवस पर-1940', 'भारत की आरती', 'वाम वाम दिशा' तथा मुक्तिबोध की 'ओ चीन के किसानों', 'विचार आते हैं', 'सूखे कठोर नंगे पहाड़', 'उलट-पुलट शब्द', 'मुझे याद आते हैं' इत्यादि जैसी कविताओं को देखा जा सकता है। मुक्तिबोध की एक कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

"विचार आते हैं--

लिखते समय नहीं,

बोझ ढोते वक्त पीठ पर

सिर पर उठाते समय भार

परिश्रम करते समय

चाँद उगता है व

पानी में झलमलाने लगता है

हृदय के पानी में।"[6]

स्पष्ट है इस कविता की भाषा अपनी संरचना में सरल और सहज है। शमशेर संवेदना तथा शिल्प को लेकर लेखकीय कर्त्तव्य की बात करते हैं। उन्होंने लिखा है कि- "कवि का कर्म अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणाओं में, अपने आतंरिक संस्कारों में समाज सत्य के मर्म को ढालना, उसमें अपने को पाना है, और उस पाने को अपनी पूरी कलात्मक क्षमता से पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है, जहाँ तक वह कर सकता हो।"[7] शमशेर समाज-सत्य के मर्म को अपनी कविता में अपनी पूरी कलात्मकता से व्यक्त करते हैं, इसलिए उनकी काव्य-भाषा अधिक कलात्मक है। उसमें बिम्बधर्मिता, चित्रमयता, नाटकीयता और संवादधर्मिता है। प्रभाववादी कला का प्रभाव उनकी श्रम-सम्बन्धी कविताओं में भी है। वे शब्दों से मानो एक सजीव पेंटिंग्स बनाते हैं। इस दृष्टि से 'बैल' और 'य' शाम' जैसी कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

शिल्प के सन्दर्भ में त्रिलोचन के स्पष्ट विचार हैं। उनके कविता की एक प्रमुख पहचान भाषा है। वे भाषा के प्रति बहुत सजग और संवेदनशील कवि हैं। 'शब्द' नाम से उनका एक काव्य-संग्रह ही प्रकाशित है। वे ग्रामीण जन के जीवन-संघर्ष, उनकी आशाओं और अभिलाषाओं को नवीन भाषा में अभिव्यक्त करते हैं। उन्होंने 'ध्वनिग्राहक' शीर्षक कविता में लिखा है कि-

"लड़ता हुआ समाज, नई आशा अभिलाषा,

नए चित्र के साथ नई देता हूँ भाषा।"[8]

उनकी श्रम-सम्बन्धी कविताओं की काव्य-भाषा शमशेर और मुक्तिबोध से बिल्कुल अलग है। पूरे-पूरे वाक्य, सरल-सहज देशज शब्दों, उक्तियों, लोकोक्तियों और मुहावरों इत्यादि से युक्त आमजन की पारदर्शी भाषा है। उनका विचार है कि कवि का सम्बन्ध समाज के जिस वर्ग से है वह उसी वर्ग से सम्बंधित काव्य-सृजन करे। बिना इसके अभिन्न भाव की कविता नहीं लिखी जा सकती। मसलन,अभिन्न भाव उनकी कविता की विशेषता है। उन्होंने 'उस जनपद का कवि हूँ' नामक काव्य-संग्रह के एक सॉनेट में लिखा है कि-

"यह तो सदा कामना थी, इस तरह से लिखूं

जिन पर लिखूं, वही यों अपने स्वर में बोलें,

परिचित जन पहचान सकें, फिर भले ही दिखूं

अपनापन थोपने में विफल ।"[9]

इस प्रकार यह अकारण नहीं है कि त्रिलोचन की कविताओं की भाषा में गाँव के निरक्षर और श्रमशील वर्ग के व्यक्तियों का जीवन अभिव्यक्त हुआ है। लोक प्रचलित शब्द, लोकोक्तियाँ और मुहावरे, कहावत और बात कहने की गँवई शैली मौजूद है। इस तरह उनकी काव्य-भाषा ग्रामीण जन-जीवन के बहुत करीब ठहरती है।

केदारनाथ अग्रवाल ने सबसे अधिक श्रम-सम्बन्धी कविताओं की रचना की है। उनका विचार है कि-'कविता जनसाधारण की वस्तु होती है इसलिए जनसाधारण के जो भी आवश्यक तत्व होते हैं वही कविता के भी हैं।' उन्होंने अपनी कविताई के विषय में कहा है कि- "कविताई न मैंने पायी है और न चुराई। इसे मैंने जीवन

जोतकर, किसान की तरह बोया और काटा हूँ।"[10] उनकी कविताओं में किसानों और मजदूरों के जीवन के जितने यथार्थ और सजीव चित्रण है उतने कम कवियों के यहाँ है। जहाँ एक ओर प्रकृति है, खेत-खलिहान है, लहलहाती फसलें और उसका सौन्दर्य है तथा उन्हें काटने वाले मजदूर हैं वहीं दूसरी ओर केन नदी है, पत्नी प्रेम है, मजदूरों के जीवन की कुछ बुराइयाँ हैं। सामाजिक व्यवस्था में बदलाव हेतु संघर्ष की चेतना भी है। इस तरह उन्होंने कविता में श्रमजीवी वर्ग के विभिन्न अनुभवों और अनुभूतियों का मार्मिक वर्णन किया है। दरअसल, वे कृषि और मजदूर जीवन को बहुत करीब से महसूस किये हैं। इसी कारण उनकी कविताओं में ग्रामीण जीवन के विविध जीवंत चित्र और चरित्र मिलते हैं।

नागार्जुन की काव्यभाषा वैविध्यपूर्ण है। उसमें हिंदी, उर्दू, अरबी-फ़ारसी, संस्कृत, मैथिली, बंगाली, अंग्रेजी इत्यादि कई भाषाओं के शब्द बड़े ही स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। शब्दों की यह विविधता श्रम-सम्बन्धी कविताओं में भी मौजूद है। चाहे वह 'गुलाबी चूड़ियाँ', 'खुरदुरे पैर' शीर्षक कविता हो अथवा 'घिन तो नहीं आती है?', 'तेरी खोपड़ी के अन्दर', 'सिके हुए दो भुट्टे', 'प्रेत का बयान', 'हरिजन गाथा' इत्यादि जैसी कविताएँ हों। नागार्जुन की काव्य-भाषा को लक्षित करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि- "हिंदी-भाषी क्षेत्र के किसान मजदूर जिस तरह की भाषा आसानी से समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है।"[11] अतः नागार्जुन जनता की बात जनता की बोली-भाषा में करते हैं। वे बहुजन समाज के प्रति प्रतिबद्ध, सम्बद्ध और आबद्ध रचनाकार हैं।

शमशेर बहादुर सिंह की रचनाओं को लेकर हिंदी साहित्य में यह प्रचलित है कि उनकी कविताओं में प्रेम और सौन्दर्य, बिम्बात्मकता, जटिल भावबोध, सघन

ऐन्द्रियता बोध, मौन, लयात्मकता इत्यादि गुण मौजूद हैं। वे प्रभाववादी कला और सुर्रियलिज्म से प्रभावित रचनाकार हैं। उनके काव्य-संग्रहों में श्रम-सौन्दर्य की दृष्टि से रचित कम कविताएँ मिलती हैं। मसलन, शमशेर की प्रवृत्ति मूलतः श्रम–सौन्दर्य के रचनाकार की नहीं हैं। हालाँकि उन्होंने जो थोड़ी सी कविताएँ सृजित की हैं वे संवेदना और शिल्प की दृष्टिकोण से बेजोड़ हैं। उनमें 'बैल' कविता सर्वप्रमुख है। इसके अलावा 'फिर वह एक हिलोर उठी', 'य' शाम', 'वाम-वाम वाम दिशा', 'सागर तट', 'बाढ़ १९४८' इत्यादि कविताएँ भी उल्लेखनीय हैं। दरअसल, शमशेर मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित रचनाकार हैं लेकिन प्रगतिवादी मानसिकता की कविताएँ उन्होंने कम लिखीं।

यदि शमशेर की 'बैल' कविता की संरचना का विश्लेषण करें तो हम देखते हैं कि यह कविता कृषि संस्कृति का प्रतीक पशु 'बैल' पर लिखी गयी है। यह सहचर पशु रचना के लिए प्रसिद्ध विषय रहा है। इससे सम्बन्धित कई कविताएँ और कहानियाँ लिखी गईं हैं। इनमें प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा' प्रसिद्ध है। इस कविता में संवेदना का वर्णन सूक्ष्म है। दरअसल यह कविता एक आत्म कथ्य की तरह है जो 'मैं' से शुरू होकर पूरी दुनियाँ से जुड़ती है। इसमें न तो आत्मवेदना की अभिव्यक्ति हुई है और न ही आत्मनिवेदन की बल्कि इसमें अनुभूति का विस्तार और बेबसी की सर्वव्यापी अनुगूँज निहित है। इस कविता में बैल एक मूक श्रमिक की तरह चित्रित होकर नायकत्व ग्रहण कर लिया है। वह छायावादी धीरोदात्त नायक एवं मुक्तिबोध के ब्रह्मराक्षस से बिल्कुल अलग है। 'गुट्ठल काली कड़ी कूबवाला बैल' कहने से लघुमानव होने का भी बोध होता है।

दरअसल, यह पूरी कविता छलना जैसी मानी जा सकती है जिसमें कवि अपने आत्म/ अस्तित्व को समाप्त करके बैल का पर्सोनिफाई कर लेता है जैसे अज्ञेय की

कहानी 'कोठरी की बात' में कोठरी ही अपने बारे में सब कुछ कहती है। वैसे यहाँ बैल ही अपने बारे में कहता है। पूरी कविता कुछ दृश्यों/बिम्बों एवं प्रश्नों को लेकर बुनी गयी है। जैसे- श्रमरत बैल का बिम्ब, रात्रि का सघन अन्धकार एवं उस अन्धकार को बढ़ाने वाले तत्त्वों का बिम्ब, मालिक और उसके द्वारा लिए जाने वाले श्रम के स्वरूप का बिम्ब इत्यादि।

इस कविता में श्रमरत पशु 'बैल' का जो शब्द-चित्र शमशेर ने बनाया है, उससे बैल की निरीहता और विवशता उभर कर सामने आती है। मानो लगता है कि सच में कोई बैल आँखों के सामने बेबसी में ठेले पर ऊपर तक लदा हुआ बोझ ले जा रहा है। वह अपने शरीर की सम्पूर्ण ताकत और क्षमता से खींचते हुए धीरे-धीरे चला जा रहा है। यह कविता नाटकीय शैली में कुछ इस प्रकार प्रारंभ होती है-

"मैं वह गुट्ठल काली कड़ी कूबवाला बैल हूँ

जो अकेला धीरे-धीरे छः मील खींचकर ले जाते हुए

ठेले पर ऊपर तक लदा हुआ माल

स्टेशन से दूर गोदाम तक

चुपचाप धीरे-धीरे, आँखें बाहर को निकली हुईं,

त्यौरी चढ़ी हुई, काँधे जोर लगाते हुए

सीना और छाती आगे को झुककर, जोर लगाते हुए

रानें भरी हुईं गर्म पसीने से तर, मगर

ज़ोर लगाती हुईं,

नथुने फूले हुए, साँस और दम

अपनी ज़ोर आजमाई में लगे हुए"[12]

इस उद्धरण में लय के साथ भाषा का प्रवाह बना हुआ है। भाषा इतनी सहज, सरल और सादगीयुक्त है कि शब्दकोश देखने की कोई जरूरत नहीं है। भाव पूरी कविता में अखंडित बहता चला गया है। इसमें 'आँखें बाहर को निकली हुईं', 'काँधे जोर लगाते हुए', 'गर्म पसीने से तर', 'नथुने फूले हुए' जैसे पद इस तरह से इस्तेमाल किये गए हैं कि श्रम-रत बैल का दृश्य आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। एक जीवंत मूर्ति सामने खड़ी हो जाती है। वस्तुतः यह मूर्तिविधायनी कला है; इस गुण को लक्षित करते हुए अशोक बाजपेयी ने लिखा है कि- "शमशेर की आवाज हमें ठेलती या दुलराती नहीं है। वह हमें घेरती है, दूर तक ले जाती है। वह हमें सबकी याद दिलाती है, जो हमारा सहज उत्तराधिकार है, पर जो हमारी चेतना से ओझल होता जाता है। वह चित्र बनाती है, स्थापत्य गढ़ती है, संगीत रचती है, पर प्रथमतः और अंततः कविता की आवाज है। शायद इस शताब्दी में कोई और हिंदी कवि नहीं है जिसकी रचना प्रक्रिया में दूसरे कलामाध्यमों ने ऐसी समृद्धिकारी भूमिका निभाई हो, जैसी शमशेर के यहाँ। बिना मूर्ति गढ़े शमशेर मूर्तिकार हैं, बिना चित्र बनाये चित्रकार और बिना गाये संगीतकार।"[13] इस तरह इस कविता की भाषा बिम्बधर्मी और मूर्तिविधायिनी है। सभी पद श्रम आधारित किसानी संस्कृति को अभिव्यक्त करते हैं। इसे पढ़कर एक साथ कई कविताओं के मजदूर पात्रों की स्मृति हो आती है जैसे 'तोड़ती पत्थर' कविता की मजदूरनी का चित्र- "श्याम-तन, भर-बंधा यौवन/ नत

नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,/ गुरू हथौड़ा हाथ,/ करती बार-बार प्रहार।"[14] नागार्जुन की कविता 'खुरदरे पैर' का रिक्शाचालक, 'चौथी पीढ़ी का प्रतिनिधि' की गिट्टियां बिछाने वाली मजदूरिन माँ का चित्र। जो नित एक बजे दोपहर में पसीने से लथपथ होकर आती है और झरने में हाथ-मुंह धोकर, जूड़ा बांधकर अपने बच्चे को कुछ खिलाकर लाड़-प्यार करती है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'गाँव की औरतें', 'आदमी का बेटा', 'भरा ठेला खींचता हूँ' जैसी कविताएँ भी इसी भावबोध की हैं। जिनमें बोलचाल की भाषा में श्रमिक जन का चित्रण है। एक उदाहरण-

"गांवों की औरतें/ गन्दी कोठरियों में हाँफती–/ खाँसती,

खसोटती रूखे बाल/ घिसती हैं जांता जटिलतर"[15]

'बैल' कविता की भाषा-शिल्प शमशेर के ही प्रेम और सौन्दर्य-सम्बन्धी कविताओं से भिन्न है। 'सौन्दर्य' शीर्षक कविता से एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"एक सोने की घाटी जैसे उड़ चली

जब तूने अपने हाथ उठाकर

मुझे देखा

एक कमल सहस्रदली होटों से

दिशाओं को छूने लगा

जब तूने आंख-भर मुझे देखा ।"[16]

यहाँ कवि ने जिस रोमानियत और कोमलता से युक्त भावपूर्ण बिम्ब का सृजन किया है। वह अपनी शिल्प में अलग है। 'सोने की घाटी जैसे उड़ चली', 'एक कमल सहस्रदली होटो से दिशाओं को छूने लगा' जैसे बिम्ब सौन्दर्य सम्बंधी अपारंपरिक बिम्ब हैं। जिनका सामान्यतः किसानों-मजदूरों के सौन्दर्यबोध से सम्बंध नहीं है। यह प्रेम और सौन्दर्य को नए भावबोध के साथ अभिव्यक्त करने वाली कविता है। कवि ने सौन्दर्य भाव के अनुरूप सहज और कोमल शब्दों प्रयोग किया है। भावों के अनुरूप पंक्तियों में शब्द संख्या, मौन और अन्तराल का प्रयोग शमशेर की कविताओं की एक विशेषता हैं। ये मौन और अंतराल अर्थ विस्तार के स्थल होते हैं।

'बैल' कविता में मूकता की ताकत मालिक का बैल से हाड़तोड़–मेहनत करवाने की अदा में है-

"वह मेरी मूक भाषा में अच्छी तरह

बात करता है

मुझे वह इस तरह निचोड़ता है जैसे

घानी में एक-एक बीज कसकर दबाकर

पेरा जाता है"[17]

यहाँ 'बात करता है', 'पेरा जाता है' दो स्वतंत्र पंक्तियाँ हैं जिनमें मात्र तीन-तीन ही शब्द हैं। परन्तु इन पर अर्थ का भार कई पंक्तियों का है। 'मूक भाषा में अच्छी तरह बात करना, इस तरह निचोड़ना जैसे घानी में एक-एक बीज कसकर दबाकर पेरा जाता है' जैसे वाक्य दृश्य बिम्ब का निर्माण करते हैं। कुछ इसी भावबोध का चित्रण केदारनाथ अग्रवाल ने 'भरा ठेला खींचता हूँ' कविता में किया है। जिसमें

निरीहता, विवशता और एक श्रमिक का संकल्प-भाव का उद्घाटन है। कविता की भाषा का एक उदाहरण-

"भरा ठेला खींचता हूँ

खड़े सूखे चने चाबे

रोट मोटा एक खा के

कड़ी कंकड़ की सड़क पर बाहुबल से खींचता हूँ।

... ...

भरा ठेला खींचता हूँ

कर्म की सच्ची लगन है

पेट का ऐसा जतन है

आदमी हूँ आदमी का भार भारी खींचता हूँ "[18]

यह कविता मुक्त छंद में रची गयी है। इसमें मजदूरों के मेहनत भरी जिंदगी की भाषा है जिसमें 'ठेला', 'सूखे चने', 'कंकड़ीली सड़क', 'गट्ठे', 'ठट्ठे', 'पसीने', 'पेट', 'जतन' जैसे शब्द प्रयुक्त हैं। यह जीवन के यथार्थ से पैदा हुई भाषा है। यह काव्यानुभूति को वहन करने वाली अलंकार रहित जनभाषा है। यहाँ 'मैं' अंत तक 'मैं' ही बना रहता है। हाथ में गट्ठे और पांव में ठट्ठे पड़ने के बाद भी कड़ी कंकड़ की सड़क पर ठेला खींचने का जो दर्द है वह सहज ही पाठक को महसूस होने लगता है। कर्म की सच्ची लगन, पेट का जतन और आदमी होने के नाते आदमी के भार ढोने की जिम्मेदारी जैसे भावों से यह कविता बुनी गयी है। लोकजीवन के मुहावरे 'भरा ठेला

खींचना', 'हाथ में गट्ठे पड़ना', 'पैर में ठट्ठे पड़ना', 'पेट का जतन करना', 'आदमी का भार खींचना' अपनी जीवन्तता में प्रयुक्त हुए हैं।

नागार्जुन की कविताओं में भी बिम्बात्मक भाषा मौजूद है। यह श्रमिक जीवन के संघर्षों, विभिन्न प्रसंगों, अनुभवों और जीवन स्थितियों को बखूबी चित्रित करती है। जैसे 'खुरदरे पैर' शीर्षक कविता में रिक्शाचालक के गुट्ठल घट्ठों वाले कुलिश कठोर पैरों का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। कविता पढ़कर पाठक को रिक्शाचालक के फटी बिवाइयों में सौन्दर्य-दर्शन हो जाता है। पैरों के प्रति श्रद्धा और सम्मान का भाव उमड़ने लगता है। कविता का एक अंश द्रष्टव्य है-

"दे रहे थे गति

रबड़-विहीन ठूँठ पैडलों को

चला रहे थे

एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन चक्र

कर रहे थे मात त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को

नाप रहे थे धरती का अनहद फासला

घंटों के हिसाब से ढोए जा रहे थे !

देर तक टकराए

उस दिन इन आँखों से वे पैर

भूल नहीं पाउँगा फटी बिवाइयाँ

खूब गयीं दूधिया निगाहों में

धँस गयीं कुसुम-कोमल मन में”[19]

यहाँ कवि ने कठिन तत्सम शब्दों को छोड़ बातचीत की भाषा और लय का प्रयोग किया है। इस कविता के रचाव में नागार्जुन ने पौराणिकता का भी सहारा लिया है। मिथकीय चरित्र वामन के पैरों से तुलना कर कविता की प्रभावशीलता को बढ़ाया है।

इसी तरह मुक्तिबोध की कविता ‘इसी बैलगाड़ी को’ लगभग ग्यारह पृष्ठों में लिखी गयी है। इस कविता की अंतर्वस्तु शहरी बुद्धिजीवियों का चरित्रोद्घाटन है जो ‘निम्न मध्यवर्गीय बुद्धिजीवीयों’ से कम क्रांतिकारी होते हैं। इस कविता में न तो लम्बे-लम्बे वाक्य हैं और न ही कोई जटिल बिम्ब। ‘अंधेरी ऊँचाई’, ‘तमभरी चढ़ान’, ‘अँधेरे में पहाड़ी’, ‘तमस्कण’, ‘तमस-अणु’ जैसे शब्दों के माध्यम से इस कविता में भी अँधेरा विद्यमान है। इसमें सीधी और साफ-सुथरी भाषा का उपयोग किया गया है। कुछ तत्सम, उर्दू एवं अंग्रेजी के शब्द और मुहावरे भी प्रयुक्त हैं किन्तु उनका प्रयोग अर्थबोध में व्यवधान नहीं डालते हैं। जैसे- फ़ारसी शब्द ‘ज़िंदगी’, अंग्रेजी वाक्यांश ‘आउट-ऑफ़-डेट’, उर्दू शब्द-‘फ़र्क’, ‘आबोहवा’ के प्रयोग का एक उदाहरण-

“जिंदगी ही ऐसी है कि

सहचर-रूप में

हमारे साथ तारें हैं चाँद है व आसमान

अब जो तुम्हारे लेखे

आउट-ऑफ़-डेट हैं

इसके लिए क्या करें

तुम्हारे हमारे बीच

फ़र्क आबोहवा का कि

शब्दों का अभिधार्थ

एक होते हुए भी

व्यंजना-लक्षणा-ध्वनि और

मर्म भिन्न-भिन्न हैं"[20]

इस प्रकार मुक्तिबोध ने इस कविता में कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है।

केदारनाथ अग्रवाल ने भी किसान-जीवन के आधार स्तम्भ पशुओं- 'बैल', 'बैलगाड़ी', 'बछड़ा' इत्यादि विषय पर कविता लिखी है। जिसमें उनके जीवन की यथार्थ अनुभूति की भाषा और बिम्ब है। सन् 1946 में रचित 'बैलगाड़ी' शीर्षक कविता में बैलगाड़ी अंग्रेजी हुकूमत का प्रतीक है- "बैलगाड़ी राज्य की / चल नहीं सकती प्रगति से दौड़ती।"[21] कवि ने कृषक-जीवन में सहचर पशु बैल के कर्त्तव्य–परायणता को 'भोगिला' शीर्षक कविता में बड़े ही मर्मस्पर्शी रूप में अभिव्यक्त किया है। इसमें 'भोगिला' के गुणयुक्त जीवन का स्मृतिजन्य चित्रण है। केदारनाथ अग्रवाल ने इस कविता में 'काठी का बलीन होना', 'पुष्ट और प्रवीण होना', 'जमीन पर अकाट्य तर्क की तरह चलना' और 'ज्ञान की तरह समय से गंतव्य पर पहुँचना', 'राह में न रुकना न थकना' जैसे मुहावरों और लोकोक्तियों के द्वारा कविता को प्रभावशाली

बनाया है। कवि ने अभिधात्मक भाषा में किसी भव्य और विराट कल्पना का सृजन नहीं किया गया है और न ही किसी वैचारिक द्वंद्व का। उन्होंने सहचर पशुओं के प्रति संवेदनशीलता और श्रम के प्रति सम्मान को अभिव्यक्त किया है। भाषा की सादगी और प्रांजलता से पूरी कविता लयमान हो गयी है। इसे पढ़कर सचमुच एक हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, प्रकृति में तेज-तर्रार पशु 'बैल' का चित्र आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। उदाहरण के रूप में एक अंश इस प्रकार है-

"चलता तो

अकाट्य तर्क की तरह

जमीन पर चलता

ज्ञान की तरह

गंतव्य पर

समय से

पहुँचता

न राह में रुकता,

न चलते-चलते थकता

याद आता है अब, बुढ़ापे में, रोज-ब-रोज,

बनाता है मुझे

कर्मठ और कर्तव्य-परायण"[22]

इस प्रकार यह बातचीत की सहजता के साथ-साथ मूर्त विधायनी भाषा है। इसकी सहजता और सादगी में ही शक्ति है। केदारनाथ अग्रवाल की भाषा के सन्दर्भ में त्रिलोचन ने महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है- "भाषा, शैली और विषय निर्वाह की दृष्टि से केदार ने दलित पथ का अनुसन्धान किया है।"[23]

'प्रगतिवाद' से 'नई कविता' के दौर का ऐतिहासिक महत्त्व है। स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात जनता की आशाएँ और आकांक्षाएं बदल गई थीं। यह बदलाव हिंदी साहित्य में भी दृष्टिगत हो रहा था। इस दौर में प्रगतिशील कवियों और लेखकों ने समाज के बहुसंख्यक जन से सम्बंधित साहित्य सृजन किया। मजदूरों और किसानों के चित्रण से सृजनात्मकता को नया आयाम दिया। किसान जीवन के विभिन्न वस्तुओं, प्राणियों और क्रिया-व्यापारों को साहित्य में विषयवस्तु बनाया गया। कृषि संस्कृति का प्रतीक पशु 'बैल' तो अधिकांश कवियों और लेखकों के साहित्य में दर्ज है। केदारनाथ अग्रवाल ने 'इक्के का घोड़ा' 'बैलगाड़ी', 'बछड़ा' तथा नागार्जुन ने 'सुन रहा हूँ' जैसी कविताएँ लिखीं। त्रिलोचन ने 'युग दर्पण' शीर्षक सॉनेट में गधे की श्रमशीलता और सामाजिकता की प्रशंसा की। उसे मानव-समाज हेतु शेर से अधिक उपयोगी चित्रित किया। इस तरह प्रगतिशील कविता में मानवेतर पशुओं- बैल, गदहा, खच्चर इत्यादि के श्रमशीलता को बोलचाल की सरल और सहज भावपूर्ण भाषा में उद्घाटित किया गया है।

4.1 - **बिम्ब और प्रतीक:**

बिम्बों और प्रतीकों की दृष्टि से शमशेर बहादुर सिंह की कविताएँ उल्लेखनीय हैं। इनमें 'स्वतन्त्रता दिवस पर(1940)', 'भारत की आरती', 'शाम होने को हुई', 'बम्बई में वर्ली के 70 किसानों को देखकर', 'सागर तट', 'एक आदमी दो पहाड़ों को

कुहनियों से ठेलता', 'वाम वाम वाम दिशा', 'बैल', 'य' शाम' इत्यादि शामिल हैं। शमशेर उस अर्थ में श्रम-सौन्दर्य के कवि नहीं जिस अर्थ में प्रेम, सौन्दर्य और सघन ऐन्द्रियता के। विजयदेव नारायण साही उन्हें 'विशुद्ध सौन्दर्य' का कवि मानते हैं। इस सन्दर्भ में उनकी टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपने लेख 'शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट' में लिखा है कि- "सच तो यह कि शमशेर की सारी कविताएँ यदि शीर्षकहीन छपें, या उन सब का एक ही शीर्षक हो 'सौन्दर्य', शुद्ध सौन्दर्य, तो कोई अंतर नहीं पड़ेगा। शमशेर ने किसी विषय पर कविताएँ नहीं लिखीं हैं। उन्होंने कविताएँ, सिर्फ कविताएँ लिखी हैं, या तो कहें कि एक ही कविता बार-बार लिखी है। शमशेर इस पल-छिन अवतार लेते हुए सौन्दर्य के गवाह हैं—ऐसे गवाह जिसने इस अवतार के हर रंग और हर विस्तार को उसके 'अनंत लीला' रूप में स्पृहा के माध्यम से ठीक-ठीक स्वायत्त करने की शपथ ली हो।"[24] शमशेर की श्रम-सौन्दर्य सम्बन्धी कविताओं की भाषा सौन्दर्य का एक नया आयाम गढ़ती है। एक उदाहरण ' य'शाम' कविता से-

"य, शाम है

कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का ।

लपक उठीं लहू-भरी दराँतियाँ,

-कि आग है:

धुआँ-धुआँ

सुलग रहा

ग्वालियर के मजूर का हृदय।"[25]

यह कविता 12 जनवरी, सन् 1944 ई. को लिखी गयी थी। इस दिन ग्वालियर में मजदूरों का एक जुलूस निकला था। मजदूरों के हाथ में लाल झंडे थे जिन पर रोटियां टंगी हुई थीं। ग्वालियर की सामंती सरकार ने रोटियों के बदले इन मजदूरों पर गोलियां बरसाई। इसी दुःख भरी और रक्तरंजित शाम की घटना का भावपूर्ण चित्रण शमशेर ने किया है। यह कविता अपनी संवेदना और शिल्प में विशिष्ट है। इसकी भाषा रचनात्मक है। 'लपक उठीं लहू भरी दरांतियां', 'आसमान खेत है पके हुए अनाज का' और 'धुआँ-धुआँ सुलग रहा मजदूर का हृदय' इन पंक्तियों पर यदि ध्यान दें तो स्पष्ट है कि इनमें भाषा-शैली और बिम्ब की नवीनता है। यह आसमान अपने आप में कितना अलग है। यह वह आसमान नहीं; जो एक प्रेमी-प्रेमिका या संत मुनियों को दिखाई देता है- कुछ-कुछ रोमानियत भरा या ध्यानस्थ। यह किसानों और मजदूरों का आसमान है। जिसमें पके हुए अनाज अपने पूरे सौन्दर्य के साथ लहलहा रहे हैं। मानों किसानों, मजदूरों को खुशियाँ देने और उनका भरण-पोषण करने को तैयार हैं। तुलना हेतु शमशेर की एक अन्य कविता 'उषा' में आये भोर के आसमान को देख सकते हैं। जो नीले शंख की तरह और राख से लीपे हुए गीले चौके के समान है। जो केसर से धुली गयी बहुत काली सिल अथवा स्लेट पर मले लाल खड़िया चाक की तरह है।

इस तरह 'उषा' कविता का आसमान संघर्ष और क्रांति का नहीं बल्कि मांगल्य का, पावनता और पवित्रता का भाव प्रकट करने वाला अधिक है। ' य' शाम' कविता में 'लपक उठीं लहू-भरी दराँतियाँ' का यह बिम्ब ग्वालियर के सामंती रियासत के मजदूर और किसान विरोधी चरित्र का उद्घाटन करने हेतु आया है। जिसमें जमींदारों द्वारा फसलों के अधिकतर हिस्से को कर-रूप में ले लिया जाता है और उन्हें भूखों मरने हेतु भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता है। एकजुट होकर रोटियों की मांग करने पर गोलियां चलाई जाती हैं। इसलिए ये जमींदार फसलों हेतु रक्त-रंजित हँसिया के

प्रतीक हैं। कवि ने भाव सघनता की वृद्धि हेतु मजदूरों के हृदय को धुआँ-धुआँ जलते दिखाया है। दरअसल, लौ के साथ जलने और धुआँ के साथ जलने में अंतर होता है। धीरे-धीरे धुआँ के साथ जलने को दिखाकर कवि ने किसानों के वेदना की तीव्रता और सघनता की अनुभूति को चित्रित किया है। इस तरह आकाश का जैसा चित्र परम्परागत रूप में खींचा जाता रहा है यह उससे भिन्न याकी नवीन है। यह श्रम और संघर्ष को नवीन भावबोध के साथ चित्रित करता है। इसे हम विपथन\विचलन (डेविएशन) कह सकते हैं। इसमें अनोखापन है क्योंकि बिम्बों, प्रतीकों और भाषाओं की जो चली आ रहीं काव्य की सरणियां हैं- यह उससे नया है। जो अपने नए स्वरूप में मौजूद हैं। इस सन्दर्भ में 'टूटी हुई बिखरी हुई' कविता में एक अनोखे बिम्ब को देखा जा सकता है –

"दोपहर-बाद की धूप-छाँह में खड़ी इंतजार की ठेलेगाड़ियाँ

जैसे मेरी पसलियाँ ...

खाली बोरे सूजों से रफू किये जा रहे हैं ...जो

मेरी आखों का सूनापन हैं।"[26]

यह इसलिए है क्योंकि कवि की काव्य-अनुभूति का स्वरूप ही नया है। नई अनुभूति भाषा के नवीन रूप में अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार शमशेर ने आकाश को जिस ढंग से मूर्त करने की कोशिश की है उससे पाठक का मन सहज ही किसानों और मजदूरों के संषर्ष से जुड़ जाता है। उनके प्रति संवेदना और सहानुभूति का भाव उमड़ने लगता है।

केदानाथ अग्रवाल की कविताओं में भी आसमान आया है। यहाँ यह धरती की सौन्दर्यवर्धन करने वाले कारक के रूप में चित्रित है-

"आसमान की ओढ़नी ओढ़े,

धानी पहने

फसल घंघरिया,

राधा बन कर धरती नाची,

नाचा हँसमुख

कृषक संवरिया ।"[27]

यहाँ आसमान किसान के ख़ुशी और उल्लास में भागीदार है। यहाँ किसान केवल श्रमिक बनकर नहीं आया है बल्कि वह राधा (धरती) का सांवरिया अर्थात् प्रेमी है। यहाँ आसमान संघर्ष और क्रांति का भाव नहीं पैदा करता बल्कि ख़ुशी, उल्लास और प्रेम का भाव जगाता है।

मुक्तिबोध के यहाँ भी नए तरह के बिम्ब और प्रतीक मिलते हैं लेकिन उनकी प्रकृति शमशेर, नागार्जुन, केदार तथा त्रिलोचन से अलग है। उनकी रचना-प्रक्रिया, भाषा, बिम्ब और प्रतीक के बारे में 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' की भूमिका में शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है कि- "कुछ कवि अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट शब्द की खोज करते हैं, मुक्तिबोध विशिष्ट बिम्ब, बल्कि उससे अधिक विशिष्ट प्रतीक की योजना लाते हैं। उनके प्रतीक भी 'कथा' (या 'गाथा', 'मिथ') सृष्टि की भूमिका बनाने लगते हैं। मुक्तिबोध की रचनात्मक प्रक्रिया में अद्‌भुत अनोखे का विद्युत्प्राण चमकता है। रूढ़ि और परंपरा से वितृष्ण, उनसे विद्रोह और नयी मानवता का साग्रह आह्वान उनकी शब्दावली को उत्तेजना से, रेटरिक से, भर देता है, और चित्र विद्रूप तक हो उठते हैं;

पर वस्तु-तथ्य के आधार पर वे कभी कष्टकर नहीं होते।"[28] मसलन, मुक्तिबोध की वैचारिक प्रतिबद्धता और वैज्ञानिक चिंतन से उनकी भाषा और शिल्प में नवीनता का संचार होता है। यह नवीनता कभी-कभी जटिलता की स्तर को बढ़ा देता है। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रतीकों का बहुतायत प्रयोग किया है। उनकी कविता 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' में 'पहाड़' पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है। 'इसी बैलगाड़ी को' कविता में बैलगाड़ी मार्क्सवादी विचारधारा का प्रतीक है। 'जिंदगी का रास्ता' कविता में– 'रामू' चेतनशील निम्नमध्यवर्गीय मजदूर का प्रतीक और 'रावण' पूँजीवादी शक्ति का प्रतीक तथा 'केकड़ा' मध्यवर्गीय अवसरवादी बुद्धिशील व्यक्ति का प्रतीक है। 'मुझे याद आते हैं' कविता में 'स्याह पहाड़' ह्रासशील पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है, 'लाल अंगार' क्रांति और, साहस का प्रतीक है। इसी प्रकार 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' कविता में प्रतीक एवं आसमान के बिम्ब का एक उदाहरण देखा जा सकता है-

"सूखे कठोर नंगे पहाड़ –

इनकी गहरी काली छाया के घेरे में

मानवीय सभ्यताओं पर धुंधली अंधियाली

रहती छाई।

अंतर्मन पर धुल के मटैले भार

(कि जो रोकते विकास की सहज साँस)

रहते जमते।

इनके ऊपर यह आसमान

जो चूने-सा कोरा सफ़ेद,

रहता ही है नित निराकार।

उसके (भीषण दाहक प्रकार से अर्थशून्य)

अवकाश-रिक्त

में तिरछा लटका ढीला-ढाला है एक ओर

टीन के गोल टुकड़े-सा यह सूरज सफ़ेद।"[29]

यहाँ 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' पूँजीवादी तंत्र के प्रतीक हैं। इसमें इस तंत्र के प्रति विरोध का स्वर अभिव्यक्त हुआ है। इस कविता में कवि ने श्रमिकों के नेता और जनक्रांति रूप महाश्रमिक से इन पहाड़ों को उखाड़कर इतिहास के समुद्र में फेंकने का आह्वाहन किया है। इसमें आसमान एवं उसके निवासी अर्थात चाँद, तारे, सूर्य सब प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हैं। ये सभी प्राकृतिक ग्रह और पिंड मिलकर एक नवीन सामाजिक यथार्थ का सृजन करते हैं। यहाँ आसमान के लिए 'चूने सा कोरा सफ़ेद' और 'निराकार', सूर्य के लिए 'ढीला-ढाला' टीन के गोल टुकड़े-सा सफ़ेद बिम्ब का प्रयोग किया है। यह भाषाई-नवीनता का उदाहरण है। इस सन्दर्भ में बोधिसत्व का कथन है कि –"मुक्तिबोध की गहन अंतर्दृष्टि और बौद्धिकता दोनों मिलकर हिंदी काव्य जगत में नवीन शिल्प, नवीन छंद विधान, नए प्रतीक, नए बिंब की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं।"[30] इस प्रकार ये सभी मिल एक विराट बिम्ब का निर्माण करते हैं। कवि की चेतना को विश्व चेतना से जोड़ देते हैं। कुल मिलकर मुक्तिबोध ने इस कविता में जिस आसमान का सृजन किया है वह अपने सन्दर्भ में शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल से बिल्कुल अलग है। यहाँ सूर्य अन्धकार को दूर करने और नयी उम्मीद के

प्रतीक रूप में नहीं चित्रित है। वह पूँजीवादी तंत्र में एक कमजोर पात्र के प्रतीक रूप में चित्रित है। जिससे इस तंत्र के प्रति व्यंग्य और मानसिक क्षोभ का भाव उभरता है।

त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की कविताओं में सूर्य अपने पारंपरिक अर्थ में मौजूद है। वह गर्मी के मौसम में मजदूरों के लिए कष्टकारी परिस्थितियों का निर्माण करता है तो सर्दी में सुखदायक। त्रिलोचन तपती दोपहरी में श्रम करते हुए श्रमशील दम्पत्ति का चित्रण इस प्रकार करते हैं-

"है धूप कठिन सिर–ऊपर

थम गयी हवा है जैसे

दोनों दूबों के ऊपर रख पैर खींचते पानी

उस मलिन हरी धरती पर

मिलकर वे दोनों प्राणी

दे रहे खेत में पानी"[31]

यहाँ कवि ने सादगीयुक्त और अलंकार रहित भाषा में भावपूर्ण शब्द-चित्र बनाया है। इस कविता की भाषा ऐसी है कि कविता पढ़कर शिल्प कम अंतर्वस्तु की संवेदना अधिक ध्यान आकर्षित करती है।

त्रिलोचन ने शब्दों में जीवन की हलचल को महसूस करते हुए बहुत ही सावधानी से शब्दों को बरता है। उन्होंने अपने शिल्प सम्बन्धी विचार को कमलाकांत द्विवेदी और दिविक रमेश को दिए एक साक्षात्कार में इस तरह साझा किया है-

"रचना देखत बिसरहिं रचनाकार

माने, शिल्प भूल जाय। रचना में ही रस आने लगे।

कौशल-वौशल पर ध्यान न जाय तब रचना केहि"

रूप होई उजियार"[32]

अर्थात 'रचना को देखकर जब रचनाकार खुद शिल्प को भूलकर रचना में ही रस लेने लगे, तब रचना को ठीक समझना चाहिए। अतः त्रिलोचन की कविताओं में शिल्प कम अंतर्वस्तु ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने जयशंकर प्रसाद, निराला और मुक्तिबोध की तरह संवेदना के विराट आयामों को रचने वाला ग्रंथ तो नहीं रचा है। लेकिन बिल्कुल सहज अंदाज में गाँव की ठेठ बोली-भाषा में भावाभिव्यक्त किया है। जटिल से जटिलतर मनःस्थितियों, मानसिक अंतर्द्वंद्वों को सुलझाकर गाँव की सरल और सहज भाषा में अभिव्यक्त किया है। उनकी काव्य-संवेदना का स्वरूप ग्रामीण चेतना से निर्मित है इसलिए उनकी श्रम सम्बंधी कविताओं की भाषा में भी दुरूह बिम्ब और प्रतीक नहीं हैं। कविता के गठन में अतिरिक्त सजाव, श्रृंगार और जटिलता नहीं है। प्रचलित शब्द ही अपनी जीवन्तता में प्रयुक्त होकर कविता का निर्माण करते हैं। इसे लक्षित करते हुए नामवर सिंह ने महत्वपूर्ण टिप्पणी किया है- "त्रिलोचन की शब्द-साधना यह है कि उन्होंने अपनी कविता के लिए नयी भाषा गढ़ी नहीं, बल्कि पहले से मौजूद जीवित भाषा को उसकी जीवन्तता में ग्रहण किया- उस भाषा में उन लोगों को अपने–आप बोलने दिया जिन्हें अभी तक बोलने का मौका नहीं मिला था।"[33] इस प्रकार त्रिलोचन रोजमर्रा के जीवन में प्रयुक्त शब्दों से ही ग्रामीण जन की जटिल मनःस्थितियों और संवेदनाओं को जीवंत रूप में अभिव्यक्त करते हैं। जैसे 'आरर डाल' कविता का श्रमिक अपने मन की व्यथा बताते हुए लिखता है कि-

"सचमुच इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,

झूठ क्या कहूं। पूरे दिन मशीन पर खटना,

बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई

का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना।

इस- उस पर मन दौड़ाना। फिर उठकर रोटी

करना। कभी नमक से कभी साग से खाना।

आरर डाल नौकरी है।"[34]

सॉनेट छंद में रचित इस कविता की भाषा न तो चटकीली है और न ही मटकीली और न ही बौद्धिकता से बोझिल। मनोभावों और जीवन स्थितियों को बिल्कुल पारदर्शी भाषा में बयां किया गया है। यह मजदूर की भाषा में एक मजदूर के मशीनी जीवन की कठिनाई भरे परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण है। परदेश में कमाने गए पति-पत्नी के वियोग की मनोदशा को लेकर बड़े-बड़े उपन्यास, खंडकाव्य, बारहमासा जैसी रचनाएँ हुई हैं, किन्तु मात्र चौदह पंक्तियों की कविता में कवि ने बड़े भाव को बांध दिया है।

त्रिलोचन की भाषा में बिम्बधर्मिता कम और चित्रमयता अधिक है। मसलन, उन्होंने प्रत्येक कविता में बिम्ब-सृजन करना अनुभूति के अनुकूल नहीं होता है। कविताओं के स्वास्थ्य के लिए बिम्बों की अधिकता भी अच्छा नहीं होता है। इसलिए बिम्बधर्मी भाषा का प्रयोग सदैव अनुकूल नहीं होता। इस संदर्भ में नामवर सिंह ने स्वीकार किया है कि 'कविता बिम्ब का पर्याय नहीं होती है। बिम्ब के बिना भी अच्छी कविताएँ सृजित की जा सकती हैं। कविता में बिम्बधर्मिता कभी-कभी वास्तविकता का अमूर्तन भी कर देती है।' बिम्बों की अतिशयता से हुए नुकसान को

बताते हुए वे लिखते हैं कि – "बिम्बों के कारण कविता बोलचाल की भाषा से अक्सर दूर हटी है, बोलचाल की सहज लय खंडित हुई है, वाक्य-विन्यास की शक्ति को धक्का लगा है, भाषा के अंतर्गत क्रियाएं उपेक्षित हुई हैं, विशेषणों का अनावश्यक भार बढ़ा है और काव्य-कथ्य की ताकत कम हुई है। इन कमजोरियों को ही दूर करने के लिए कविता में तथाकथित 'सपाटबयानी' अपनाई जा रही है, जिसमें फ़िलहाल काफी संभावनाएं दिखती हैं।"[35] इस दृष्टि से त्रिलोचन, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की काव्य-भाषा में बिम्ब कम चित्रमयता अधिक है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'आदमी का बेटा' में भी चित्रमयता मौजूद है। कड़ी धूप में अपनी पूरी ताकत और क्षमता से कुदाल चलाता मजदूर के बेटे का चित्र इस प्रकार है-

"आदमी का बेटा

गर्मी की धूप में भांजता है फडुआ।

हड्डी को, देह को तोड़ता है

खूब गहराई से धरती को खोदता है।

कांखता है, हांफता है, मिट्टी को ढोता है।

गन्दी आबादी के नाले को पाटता है ।"[36]

यह एक श्रमिक का यथार्थ चित्र है। इसमें 'बेटा', फडुआ, 'हड्डी', 'हांफना', 'गन्दी आबादी', 'नाला', 'मिट्टी ढोना' आदि श्रमिक जीवन के शब्दों और क्रियाओं से कविता सृजित की गयी है। इसमें कवि ने सरल और अलंकारहीन भाषा

का प्रयोग किया है। शैली ऐसी है मानो अपने देखे हुए अनुभव को किसी के सामने संजीदगी के साथ बयां किया जा रहा हो। श्रम करने की विभिन्न मुद्राओं को सहजता के साथ उद्घाटित किया जा रहा हो। कवि ने अपनी भाषा से एक गतिशील दृश्य-बिम्ब की रचना की है। इसे पढ़कर आँखों के सामने काम करते हुए मजदूर का दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसमें कवि ने श्रम के लय में रत श्रमिक को जीवंत कर दिया है। यहाँ निराला की 'रानी और कानी' कविता की श्रमशीला युवती 'कानी' की सहज स्मृति हो आती है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में बिम्ब और प्रतीक कृषक और मजदूर जीवन से आये हैं। जैसे उपर्युक्त कविता में 'फडुआ' अर्थात् कुदाल आया है। यह श्रमिक जीवन का प्रतीक है। उनके इन प्रतीकों के सन्दर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि- "केदार के यहाँ श्रम के प्रतीक हथौड़ा, हल, हँसिया, कुदाल प्रायः आते हैं। हँसिया-हथौड़ा कम्युनिस्ट पार्टी के लाल झंडे का चिह्न है। प्रगतिशील कवियों में केदारनाथ अग्रवाल ने हथौड़े को (और हँसिया को भी) कवि-कर्म में जितना सौन्दर्य-विधायक बनाया है उतना और किसी ने नहीं। हथौड़ा तो केदार का प्रिय विषय है। वे हथौड़े से उसी तरह कविता बनाते हैं जैसे लोहार हल का फाल।"[37] इस प्रकार केदारनाथ अग्रवाल ने श्रमिक जीवन के बिम्बों, प्रतीकों, मुहावरों और उक्तियों आदि से जीवंत काव्य-सृजन किया है।

4.2 - व्यंग्यधर्मिता:

प्रगतिशील कविता की एक प्रमुख विशेषता उसकी व्यंग्यधर्मिता है। चयनित कवियों के श्रम–सम्बंधी कविताओं के गठन में इसकी प्रमुख भूमिका है। मसलन व्यंग्य; कविता में भावानुभूति की प्रगाढ़ता को बढ़ा देता है। कहने की शैली में नवीनता आ जाती है। इस शैली में 'कहने वाला अपने अधरोष्ठों में मुस्कराता रहता है और सुनने

वाला तिलमिला जाता है।' नागार्जुन आधुनिक काल के बड़े व्यंग्यकारों में शामिल हैं। नागार्जुन की कविताओं में मौजूद व्यंग्यधर्मिता को लक्षित करते हुए नामवर सिंह ने लिखा है कि- "... यह निर्विवाद है कि कबीर के बाद हिंदी कविता में नागार्जुन से बड़ा व्यंग्यकार अभी तक कोई नहीं हुआ।"[38] उन्होंने नेताओं, पूँजीपतियों, राजनीतिक विडम्बनाओं और सामाजिक विसंगतियों इत्यादि पर बहुत ही मारक व्यंग्य किया है। इस दृष्टि से उनकी 'घिन तो नहीं आती है?', 'प्रेत का बयान' इत्यादि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। घिन तो नहीं आती है ? शीर्षक कविता में मध्यवर्गीय संस्कार से संपन्न व्यक्ति कलकत्ता के ट्राम में भूलवश मजदूरों के डिब्बे में चढ़ जाता है। नागार्जुन ने इस कविता में इस प्रकार व्यंग्य किया है-

"पूरी स्पीड में है ट्राम

खाती है दचके पै दचका

सटता है बदन से बदन

पसीने से लथपथ।

छूती है निगाहों को

कत्थई दांतों की मोटी मुस्कान

बेतरतीब मूँछों की थिरकन

सच सच बतलाओ

घिन तो नहीं आती है?

जी तो नहीं कुढ़ता है ?"[39]

दूध-सा सादा लिबास पहने मध्यवर्गीय व्यक्ति के बहाने कवि ने पूरे मध्यवर्गीय संस्कारों और मूल्यों पर व्यंग्य किया है, जिसमें मजदूरों और पिछड़ों के प्रति अमानवीय दृष्टिकोण रखा जाता है। इसी तरह उनकी 'तीनों बन्दर बापू के', 'मन्त्र' इत्यादि कविताओं में भी व्यंग्यात्मकता है।

केदारनाथ अग्रवाल ने भी अपनी कविताओं में व्यंग्य का प्रयोग किया है। उनके कविताओं में व्यंग्य की प्रकृति नागार्जुन से भिन्न है। नागार्जुन के व्यंग्य में जो मारकता और तीक्ष्णता है उसमें सामने वाले व्यक्ति को असहज कर देने की शक्ति है। नागार्जुन शासकों, प्रशासकों और राजनेताओं आदि पर सीधे-सीधे व्यंग्य करते हैं। केदारनाथ अग्रवाल के व्यंग्य लोकजीवन की मारक शक्ति से संपन्न हैं। ये ग्रामीण जन-जीवन में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं पर चोट करते हैं। उनकी व्यंग्यधर्मिता पूर्ववर्ती परम्परा को आगे बढ़ाया है। उनके व्यंग्य का विषय ज्यादातर समाज में मौजूद शोषणकारी व्यवस्था और उत्पीड़क वर्ग ही बने हैं। जैसे- 'गाँव का महाजन' कविता में गाँव के सूदखोर महाजन पर इस तरह व्यंग्य किया है-

"वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन,

गौरव के गोबर गनेश-सा मारे आसन,

नारिकेल-से सिर पर बांधे धर्म-मुरैठा,

ग्राम-बधूटी की गोरी-गोदी पर बैठा,

नागमुखी पैतृक संपत्ति की थैली खोले,

जीभ निकाले, बात बनाता करुणा घोले,

ब्याज-स्तुति में बाँट रहा है रुपया-पैसा,

सदियों पहले से होता आया है ऐसा !!"[40]

इस तरह सीधी और सरल भाषा में धारधार व्यंग्य प्रगतिशील कविता की विशिष्टता है।

त्रिलोचन शब्दों में जीवन के धड़कन को महसूस करने वाले कवि हैं। शब्दों के प्रति इतने संजीदा कम कवि रहे हैं। गाँव के लोग, लोक भाषा, उनके तीज-त्योहार, खेत-खलिहान, बाग- बगीचे, पेड़-पौधे इत्यादि सब उनकी चेतना में बसे हुए हैं। वे आम जनजीवन के बोली-भाषा, मुहावरे और शैली आदि को बहुत ही सजीव अर्थ में प्रयोग करते हैं। वे शब्दों में अन्तर्निहित जीवन की धड़कन को महसूस करते हैं। उनकी कविताओं में राजनीतिक मुखरता सबसे कम है। मसलन, त्रिलोचन नगरीय जीवन के चहल-पहल, चकाचौंध, भीड़-भाड़ से दूर स्थिर पड़े या कम गतिशील ग्रामीण जीवन-व्यापार के कवि हैं। उनकी कविताओं के सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि- "त्रिलोचन की कविता की दुनिया एकदम दूसरी है। उसमें गाँव की जिंदगी की वास्तविकताएं और आकांक्षाएं हैं, जनजीवन के चित्र हैं और गाँव की 'बोली-ठोली, लाग-लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा, इंगित' आदि हैं।"[41]

त्रिलोचन की कविताओं में व्यंग्यात्मकता कम है लेकिन जहाँ भी हुआ है भावानुरूप सटीक प्रयोग हुआ है। जैसे 'नगई महरा' कविता में महरिन जब पानी भरने आती है तो 'घेउरा बुआ' उसका मजाक उड़ाने आती हैं। उसे तथाकथित अभिजात्य वर्ग के द्वारा बनाये गए गाँव की सामाजिक मर्यादा तोड़ने के कारण जली-कटी बातें सुनाने आती है। महरिन ने लोकजीवन की व्यंग्यात्मक शैली में घेउरा बुआ को थोड़े से शब्दों में कुछ इस तरह जवाब दिया-

"बुआ, अपनी ओर ही निगाह करो

दूसरों की बूझने से अपना ही बूझना

कहीं अच्छा होता है।"[42]

यहाँ 'बुआ अपनी ओर निगाह करो' गंवई बोली का व्यंग्यात्मक तरीका है। महरिन की दो वाक्य सुन बुआ घर में चली जाती हैं। इस प्रकार त्रिलोचन की काव्य-भाषा में शक्ति लोकजीवन की भाषा से आती है। वे शब्दों के प्रति बहुत सजग कवि हैं। वे 'अपनी भाषा की समस्त गूँजों और अनुगूंजों को बखूबी जानने वाले रचनाकार' हैं। इस प्रकार ग्रामीण परिवेश में प्रचलित आंचलिक शब्द, व्यंग्य, मुहावरे और लोकोक्तियाँ आदि त्रिलोचन की श्रम-सम्बन्धी कविताओं में प्रयुक्त हुए हैं। उनकी कविताओं में शब्द अपने समस्त गूँजों और अनुगूजों के साथ प्रयुक्त होते हैं। इनमें सपाटबयानी का सौन्दर्य मौजूद है।

4.3 - नाटकीयता, संवादधर्मिता और फैंटेसी शिल्प:

कविताओं को श्रेष्ठ और प्रभावोत्पादक बनाने वाले कई तत्व होते हैं। संवेदना को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए काव्य में व्यंग्यात्मकता के अलावा नाटकीयता, संवादधर्मिता और फैंटेसी शिल्प का प्रयोग भी किया गया है। इस दृष्टि से चयनित कवियों की कविताओं में 'मजदूर का जन्म', 'जो शिलाएं तोड़ते हैं', 'भरा ठेला खींचता हूँ', 'छोटे हाथ' (केदारनाथ अग्रवाल), 'घिन तो नहीं आती है?', 'हरिजन गाथा', 'प्रेत का बयान', 'तेरी खोपड़ी के अन्दर', 'गुलाबी चूड़ियाँ'(नागार्जुन), 'चंपा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'कर्म की भाषा' (त्रिलोचन), 'सूखे कठोर नंगे पहाड़', 'उलट-पुलट शब्द', 'पीत ढलती हुई साँझ'(मुक्तिबोध), 'शाम होने को हुई',

'बैल' (शमशेर) इत्यादि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। नागार्जुन की 'हरिजन गाथा' कविता तीन भागों में विभक्त है। कविता की शुरुआत ही नाटकीय अंदाज में होती है –'ऐसा तो कभी नहीं हुआ था!'। उनकी 'प्रेत का बयान' कविता संवाद शैली में रचित है। इस कविता का शीर्षक ही अपने आप में नाटकीय भाव को दर्शाता है। शुरू में ही 'यमराज' मास्टर के प्रेत से कड़ककर पूछता है-

"ओ रे प्रेत-"

कड़क कर बोले नरक के मालिक यमराज

-"सच सच बतला !"

कैसे मरा तू ?

भूख से, अकाल से ?

बुखार कालाजार से ?

पेचिस बदहजमी, प्लेग महामारी से ?

कैसे मरा तू, सच सच बतला ।"[43]

संवाद शैली में रचित यह व्यंग्यात्मक कविता अपनी संवेदना और बुनावट में बेजोड़ है। स्वाधीन भारत के लोकतंत्र का नागरिक राष्ट्र निर्माता मास्टर (जिसके प्राण भूख से निकले थे) के प्रेत के बयान को नागार्जुन ने फैंटेसी शैली में अभिव्यक्त किया है।

मुक्तिबोध ने भी श्रम-सौन्दर्य वाली कविताओं के सृजन में फैंटेसी शैली का प्रयोग किया है। उनकी कविताओं में नागार्जुन जैसी नाटकीय और व्यंग्यात्मक भंगिमाओं का अभाव है। उनकी कविताओं में शोषण करने वाली पूँजीवादी शक्तियों को जड़ से समाप्त करने वाली आशाएँ और आकांक्षाएं हैं। अपने विचार और अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए वे नए बिम्ब और प्रतीक गढ़ते हैं। फैंटेसी शिल्प से विराट बिम्ब का निर्माण करते हैं। इन पूँजीवादी शक्तियों के विद्रूपताओं के उद्घाटन हेतु कभी-कभी भयंकर और वीभत्स बिम्ब का भी सृजन कर करते हैं। जैसे- 'जिंदगी का रास्ता' शीर्षक कविता का एक अंश द्रष्टव्य है-

"एक ओर जिंदगी की आंतें सब

अन्दर की उभरकर

विदारित उदर में से बाहर निकल

अति सोचनीय स्थिति में यों

गयी हैं फ़ैल-सी

ज्यों अति भीषण दुर्घटना का दृश्य हो

(जो रोज-रोज दिखता है)

पूँजीवादी गाड़ी के वेगवान

लोहे के पहियों ने

मानव का पेट चीर

विज्ञानोन्नति की।"[44]

बिम्बों का प्रयोग संवेदनाओं की अभिव्यक्ति और संप्रेषण को सुगम्य बनाने हेतु किया जाता है। मुक्तिबोध की कविताओं में प्रयुक्त बिम्ब नवीन हैं। उनकी कविताओं में कभी-कभी विचारों और संवेदनाओं की सघनता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि एक बिम्ब के भीतर दूसरा भी समाया रहता है। जिससे अर्थबोध की जटिलता बढ़ जाती है। पाठक को भाव ग्रहण में बाधा होने लगती है। जैसे- 'मेरे मित्र,सहचर' कविता का यह अंश द्रष्टव्य है-

"मेरे मित्र, सहचर

भारतीय गली के अँधेरे किसी कोने में

जिंदगी के दर्दों के केन्द्रों के चारों ओर

घूमते हैं विचारों के तेज पुंज ग्रह-गोल

विप्लवी दृष्टि की उल्काएं, तारादल

कृतियों के स्वप्नों के,

भव्य जन-संघर्षों के प्रदीप्त तेजोमय

मस्तक में घूमते हैं ज्वालामंडल प्रतिपल।"[45]

स्पष्ट है कि यहाँ भाषा गद्यात्मक और तत्सम युक्त है। विचार एवं लय की डोर में बंधे होने से प्रवाह बना हुआ है। बिम्ब जटिल बन पड़ा है। इतने कम पक्तियों में कई बिम्ब एक दूसरे में मिले हुए हैं। एक दूसरे में मिलने से अर्थबोध जटिल हो गया है।

मुक्तिबोध की कविताओं में अनुभूति के अनुरूप लम्बे-लम्बे वाक्य प्रयुक्त हुए हैं। कई बार काव्य-भाषा उलझी हुई प्रतीत होने लगती है। लेकिन यह उनके शिल्प

का हिस्सा है। इसे लक्षित करते हुए नंदकिशोर नवल ने टिप्पणी की है- "आमतौर पर यह समझा जाता है कि उनकी काव्य–भाषा लम्बे-लम्बे और जटिल वाक्यों से निर्मित उलझी हुई काव्य–भाषा है। इसमें कोई शक नहीं कि उसमें कभी-कभी लम्बे वाक्य मिलते हैं, लेकिन वे कवि के अभिव्यक्तिगत असमर्थता के परिणाम नहीं, बल्कि उसकी गहन चिन्तनशीलता, व्यापक संवेदना और विराट कल्पना शक्ति की देन होते हैं।"[46] इस प्रकार उपर्युक्त उद्धृत दोनों काव्यांशों में लम्बे वाक्य प्रयुक्त हुए हैं, लेकिन कवि की संवेदना को प्रभावशाली बनाने में समर्थ हैं।

वस्तुतः मुक्तिबोध की श्रम–सम्बन्धी कविताओं की भाषा गंभीर चिंतन और संवेदना को वहन करती है। अधिकतर जगह तत्सम शब्दों के प्रयोग से भाषा की सरलता और सहजता प्रभावित हुई है। जहाँ किसी श्रमिक का अथवा श्रमिक जीवन की संवेदना का चित्रण हुआ है वहाँ भाषा सरल, सहज और अभिधात्मक हो गयी है। उनकी कविता ऐसे जगहों पर रोजमर्रा के जीवन में बोलचाल में उपयोग किये जाने वाले अधिकांश शब्दों का सहारा लेती है। वह सहजता, सरलता का अंगुली पकड़ कर चलने लग जाती है। जैसे-'ज़िंदगी का रास्ता' कविता से उदाहरण द्रष्टव्य है-

"रास्ते के शोरोगुल औ' धूल के

छोटे-छोटे बादलों से घिरकर मलीन हो

(किन्तु निज मस्तक में चलते हुए चक्र-से

भावों में विलीन हो)

अपने काम पर से घर लौटते हुए

रामू, घिरी साँझ के सुदूरतम

गेरुए किनारे पर

मिल के काले धुएँ के बल खाते बादलों को देखता हुआ

बढ़ाता हुआ पैर, तै करता है

धूल भरा रास्ता !"[47]

एक और उदाहरण 'मुझे याद आते हैं' कविता से द्रष्टव्य है-

"आँखों में तैरता है चित्र एक

उर में संभाले दर्द

गर्भवती नारी का

कि जो पानी भरती है वजनदार घड़ों से,

कपड़ों को धोती है भाड-भाड,

घर के काम बाहर के काम सब करती है,

अपनी सारी थकान के बावजूद।"[48]

यह मुक्तिबोध की भाषा-शिल्प का दूसरा छोर है। ऐसी ही जगहों की काव्य-भाषा के लिए नंदकिशोर नवल ने लिखा है कि- "जहाँ मुक्तिबोध श्रमजीवी जनता के प्रति गहरा प्रेम प्रकट करते हैं वहाँ उनके शब्द अनाज के दूध भरे कच्चे दानों–जैसे

प्रतीत होते हैं।"[49] मेहनत करती गर्भवती मजदूर स्त्री और पार्ट टाइम अध्यापक 'रामू' का यह सजीव चित्रण है।

नाटकीयता और संवादधर्मिता त्रिलोचन और शमशेर की श्रम-सम्बन्धी कविताओं में भी है। शमशेर की कविता 'शाम होने को हुई' में एक मजदूर के श्रमशीलता का चित्रण है। दिनभर के श्रम से हुए शारीरिक थकान के बावजूद वह देर रात तक काम करता है। आराम करने की इच्छा होने पर भी उसका अंतर्मन आराम नहीं करने देता। उसके मन के अंतर्द्वंद्व को इस कविता में नाटकीय रूप में उद्घाटित किया गया है-

"शाम होने को हुई, लौटे किसान

दूर पेड़ों में बढ़ा खग-रव

धूल में लिपटा हुआ है आसमान :

शाम होने को हुई, नीरव।

तू न चेता। काम से थककर

फटे-मैले वस्त्र में कमकर

लौट आये खोलियों में मौन।

चेतने वाला न तू—है कौन ?"[50]

यहाँ मजदूर के मानसिक अंतर्द्वंद्व और अन्तर्मन के संवाद को मजदूर की भाषा में नाटकीय ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। इसी तरह त्रिलोचन की कविता 'कर्म की भाषा' में उपर्युक्त कविता के बहुत कुछ समान भावबोध को उद्घाटित किया गया है।

इसमें काव्य नायक को रात में जब नींद आने लगती है उसी समय चेतना में अचानक कोई कर्म करने की प्रेरणा देकर चला जाता है। इससे नींद गायब हो जाती है। अंतर्मन के इस संवाद को कवि ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है-

"रात ढली, ढुलका बिछौने पर,

प्रश्न किसी ने किया,

तूने काम क्या किया

नींद पास आ गयी थी

देखा कोई और है

लौट गयी

मैंने कहा, भाई तुम कौन हो ?

आओ। बैठो । सुनो।"[51]

यह कविता लोकप्रचलित भाषा और संवादधर्मी शैली में रची गयी है। इस प्रकार चयनित कवियों ने श्रम-सम्बन्धी कविताओं में नाटकीयता, संवादधर्मिता और फैंटेसी शिल्प के प्रयोग से काव्य का गठन किया है। ये विभिन्न काव्यानुभूतियों और विचारों के भावपूर्ण चित्रण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4.4 मुहावरे, लोकोक्तियाँ और अलंकार:-

कविता में मुहावरों, लोकोक्तियों और अलंकारों से काव्यगत-सौन्दर्य में वृद्धि होती है। ये अनुभूति और भावोदीप्ति को प्रगाढ़ बनाने और कविता को संप्रेषित करने

में भी सहायक हैं। प्रगतिशील कविता में चूंकि शिल्प उपेक्षित रहा, इसलिए शिल्प के कई तत्वों को जानबूझकर छोड़ देने की बात की गयी। संवेदना पक्ष को महत्त्वपूर्ण मानते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने 'युग की गंगा' की भूमिका में लिखा है कि- "अब हिंदी कविता न 'रस' की प्यासी है, न 'अलंकार' की इच्छुक है, और न 'संगीत' की तुकांत पदावली की भूखी है।...अब वह चाहती है- किसान की वाणी, मजदूर की वाणी और जन-जन की वाणी।"[52] इस तरह संवेदना पर अधिक और शिल्प पर कम बल दिया गया।

मुक्तिबोध ने कविताओं में कुछ जगहों पर मुहावरों का प्रयोग परम्परागत रूप में तो कुछ बिल्कुल नए सन्दर्भ में प्रयुक्त किया हैं। कुछ नए मुहावरे गढ़े भी हैं। इस दृष्टि से 'जिंदगी का रास्ता', 'उलट-पुलट शब्द', 'पीत ढलती हुई साँझ' इत्यादि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। कुछ परम्परागत मुहावरे इस प्रकार हैं- 'धूल भरा रास्ता तय करना', 'रावण के घर पहरा देना', 'प्राणों की भिक्षा मांगना', 'लकवा मार जाना', 'पीठ दागना', 'तहखानों में रत्न का खजाना ढूँढना', 'काठ मार जाना', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर चलना', 'आत्मा बेचना' इत्यादि। तो कुछ नवीन मुहावरे इस प्रकार हैं- 'हृदय में तूफानी भव्यतम संगीत जागना', 'सिद्धांतों और तर्कों के कुर्ते उतारना', 'नयी-नयी कुर्सियों का वार्निश सूंघना', 'विचारों के बुखार से ग्रस्त मस्तिष्क होना', 'जिंदगी में आपदा के ततैया लगना', 'कानों में अनहद नाद सुनना', 'पीली-भूरी मेहनती जिंदगी का होना' इत्यादि हैं। 'जिंदगी का रास्ता' शीर्षक कविता से एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"सुबह से तो शाम तक

चलते हुए काम की

पीली-भूरी मेहनती जिंदगी

में स्वाभाविक मृत्युंजय वीरता—

सहानुभूति-करुणा के, धीर व्यक्तित्व के

गंभीर चरित्र के दर्शन होते रहते थे,

पाकर जिन्हें रामू के नयनों में छा जाती

पलकों में आसुओं की पांतियाँ"[53]

यहाँ 'पीली-भूरी मेहनती जिंदगी होना', 'पलकों में आँसुओं की पांतियाँ छाना' जैसे नवीन मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं। ये रामू के जीवन-संघर्ष की वेदना को अभिव्यक्त करने में बखूबी भूमिका निभाते हैं। मुक्तिबोध ने कविता के गठन में विशेषणों का प्रयोग भी किया है। जैसे- 'क्षमता की हथेली', 'सुखों की चाँदनी', किरनिले सपने', 'सुविधा की डोर', 'अवसरवादी केकड़े', 'पाताली रेगिस्तान', 'काली नीली जीभ', 'काजली कम्बल', 'पीली–लाल लौ', 'काली-काली जीभ', 'विषैली चाँदनी', 'वक्ष का शैल-गर्भ', 'टूटे फूटे घर' आदि।

केदारनाथ अग्रवाल की श्रम-सौन्दर्य सम्बन्धी कविताओं की भाषा में यथार्थ का दबाव है। उनकी कविता में लोकजीवन की सुगंध है। उन्होंने कविता के गठन में जनजीवन में मौजूद मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। जैसे 'हाथ जोड़कर कमाना', 'पाँव पूजकर कमाना', 'दया की भीख मांगना', 'जिंदगी को गढ़ना', 'सलामत लाने वाला पैदा होना', 'पत्थर रगड़कर मरना', 'कौड़ी मोल न रखना', 'आँखें भरकर रोना', 'दिन छिपते लौटना', 'चना चबेना खाना', 'जीवन का श्रम

सफल होना', 'काठी का बलीन होना', 'अपराजित पट्ठा होना', 'फूलकर कुप्पा होना' इत्यादि। एक उदाहरण 'मजदूर का जन्म' शीर्षक कविता से-

"एक हथौड़े वाला घर में और हुआ!

माता रही विचार:

अँधेरा हरने वाला और हुआ!

दादा रहे निहार:

सबेरा करने वाला और हुआ!!"[54]

यहाँ 'अँधेरा हरने वाला' और 'सबेरा करने वाला' जनता के बीच प्रचलित मुहावरे हैं। इसी तरह केदारनाथ अग्रवाल ने श्रमिक जीवन का प्रतीक 'हँसिया', 'फड़ुआ', 'हल', 'हथौड़ा' इत्यादि का कई कविताओं में सर्जनात्मक प्रयोग किया है। 'मजदूर का जन्म' शीर्षक कविता के शिल्प को लेकर विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि- "कविता में दादी, दादा, पिता आदि को लेकर ऐसी मार्मिकता पैदा की गयी है जो वास्तविक तो है किन्तु प्रगतिशील कविता में भी आसानी से नहीं मिलती है।...ख़ुशी सिर्फ सम्पन्नों के हिस्से में नहीं है। किन्तु उस ख़ुशी का रूप भिन्न है। हथौड़ा चलाने वालों के यहाँ पुत्र जन्म का उल्लास उनके जीवनाधार कर्म-साधन से जुड़ा है। अधिक वास्तविक और जागतिक है। कविता में श्रम-सौन्दर्य-बोध को पारिवारिक सन्दर्भ देकर उस उल्लास को वास्तविक और मार्मिक बनाया गया है।"[55] इस तरह इस कविता की भाषा मजदूर की भाषा है। केदारनाथ अग्रवाल की भाषा में पानी की तेज धार है। भावनाओं और अनुभूतियों की सादगी तथा कर्मठता की शक्ति है। प्रवाहमयता और प्रांजलता है। कविताओं के गठन में लय, छंद, प्रवाह और लोक धुन

का प्रभाव है। जिसमें पाठक को बांध लेने की शक्ति है। इस संदर्भ में- 'बसंती हवा', 'चन्द्रगहना से लौटती बेर', 'छोटे हाथ', 'तेज धार का कर्मठ पानी', 'मजदूर का जन्म', 'मैंने उसको' इत्यादि कविताओं को देखा जा सकता है । 'छोटे हाथ' कविता से एक उदाहरण-

"छोटे हाथ

सवेरा होते

लाल कमल से खिल उठते हैं।

करनी करने को उत्सुक हो,

धूप हवा में हिल उठते हैं।"[56]

यहाँ तुकात्मक और बोलचाल के शब्दों का लयात्मक प्रयोग हुआ है। इस पूरी कविता में छोटे हाथों की जिस तरह कल्पना की गयी है वह इस इसे विशिष्ट बनाती है। श्रमशील हाथों के सुन्दरता की उपमा लाल कमल के खिलने से की गयी है। मसलन, ये छोटे-छोटे हाथ ही मनुष्य के लिए सौन्दर्य लोक को गढ़ते हैं। ये खेतों में नए बीज बोते हैं, ईंटों पर ईंट रखकर नये घर का निर्माण भी करते हैं। जोखिमों को झेलकर काँटों को भी चूमते हैं यही मौलिक ग्रंथों को भी रचते हैं। इस तरह ये मानव की सुन्दरतम कृतियों को उसे ही अर्पित भी करते हैं।

त्रिलोचन की श्रम-सम्बन्धी कविताओं की भाषा में ग्रामीण जीवन की सहजता है। ग्रामीण जन जिस तरह बोलते और समझते हैं वे उसी तरह कविता भी रचते हैं। वे बड़ी से बड़ी संवेदना को भी सहज और सरल ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उनकी कविताओं में अटूट वाक्य-विधान और सहज-सरल शब्द मिलते हैं। उन्होंने इसी प्रक्रिया से

ग्रामीण परिवेश के विविध जीवन प्रसंगों, स्थितियों, दृश्यों और घटनाओं आदि का चित्रण किया है। इसी से अधिकांशतः उनकी कविता पाठकों को प्रथम दृष्टया बांध नहीं पाती। पाठक कविता को बहुत गंभीरता से नहीं पढ़ता, आगे बढ़ जाता है। जबकि त्रिलोचन की कविताएँ ठहरकर, पूर्वाग्रह रहित होकर पढ़ने की मांग करती हैं। उनकी ज्यादातर कविताएँ सपाट प्रतीत होती है लेकिन यह उनकी रचनाओं की कमजोरी नहीं बल्कि ताकत है। शमशेर ने उन्हें सहजता का कवि एवं फणीश्वरनाथ रेणु ने 'शबदयोगी' कहा है। उन्होंने भाषा को तुलसी बाबा से सीखी है। उनके कविताओं की भाषाई गठन की आलोचना भी कम नहीं हुई लेकिन वे अपने मार्ग पर बने रहे। उनकी कविताओं के शिल्प के सम्बन्ध में नामवर सिंह का कथन है कि- "कविता में सपाटबयानी का यह आग्रह वस्तुतः गद्य-सुलभ जीवंत वाक्य विन्यास को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके मार्ग में बिम्बवादी रुझान निश्चित रूप से बाधक रहा। नई कविता के उत्कर्ष काल में भी प्रवाह-पतित होने का खतरा उठाकर एक कवि धारा के विरुद्ध वाक्य-विन्यास की रक्षा के लिए आवाज बुलंद करता रहा, लेकिन उसकी आवाज ना तब सुनी गयी ना अब – वह कवि है 'धरती' और 'दिगंत' का रचनाकार त्रिलोचन..."[57]

त्रिलोचन की कविताओं में जनता के बीच प्रचलित मुहावरेदार और लोकोक्तियुक्त भाषा मिलती है। भावाभिव्यक्ति में सहायक आंचलिक और देशज शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। जैसे- 'नगई महरा' कविता में कई लोकोक्तियाँ और देशज शब्द हैं। एक उदाहरण- नगई काव्य नायक को अपने घर भोज में आने का निमंत्रण देते हुए विनम्र भाव से कहता है कि-

"परसों आना

इज्जत मैं क्या दूंगा

फिर भी दसों नंह जोड़े

खड़ा ही मिलूंगा"

सेवक हूँ और सेवा करना मेरा काम है"[58]

यहाँ 'दसों नंह जोड़े खड़ा मिलना' लोकोक्ति और 'नंह' देशज शब्द का प्रयोग किया गया है। त्रिलोचन ने श्रमिकों के जीवन की विविध विशेषताओं और सांस्कृतिक पहलूओं को उनके ही भाषा में उद्घाटित किया है। जैसे 'चंपा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती' कविता में- 'हारे-गाढ़े काम सरना', 'पढ़-लिखकर झूठा होना' और 'कलकत्ते पर बजर गिरना'। इसी तरह 'नगई महरा' कविता में 'घरौवा करना', 'बात पर बात जड़ना', 'हाथ चलाना', 'बोलने बतियाने का सहूर होना', 'नीच जाति के मुँह लगना' आदि। इसी तरह 'भोरई केवट', 'सब्जी वाली बुढ़िया', 'तहदिल अब नहीं है', 'परदेशी के नाम पत्र' जैसी कविताएँ हों या 'मिलकर वे दोनों प्राणी', 'आरर डाल', 'युग दर्पण', 'ताप के ताए हुए दिन', 'पर्वत की दुहिता' इत्यादि में भी लोक प्रचलित मुहावरे और लोकोक्तियाँ देखी जा सकती हैं।

नागार्जुन के श्रम-सम्बन्धी कविताओं की भाषा लोक-रंग में रंगी हुई है। उनकी भाषा में शक्ति लोक के विविध अनुभवों, अनुभूतियों, शब्दों, विचारों, लोकोक्तियों और मुहावरों से आती है। वे अपनी कलात्मकता से पूरी कविता को जीवंत कर देते हैं। जैसे 'अक्किल फूटना' मुहावरे का प्रयोग 'तेरी खोपड़ी के अन्दर' कविता में देखा जा सकता है-

"बाबाजी, हम अब चुटैया भी रखेंगे

आठ-दस रोज की

भुखमरी के बाद

हमारे अन्दर

य' अक्किल फूटी है!"[59]

इसी तरह नागार्जुन ने 'आँखों में दूधिया वात्सल्य छलकना', 'धरती का अनहद फासला नापना', 'बिवाईयां फटना', 'जी कुढ़ना', 'घिन आना', 'धरती का धड़कन सुनना', 'सोहबत अखरना', 'अपने देश कोस की बात करना', 'भूख की भट्ठी में खाक होना', 'लोहा मानना', 'भभाकर हंस पड़ना', 'घुन लगना', 'गाँठ बांध लेना' इत्यादि जैसे मुहावरे और लोकोक्तियों से अपनी काव्य-भाषा को समृद्ध किया है। उनकी कविताओं में कहीं-कहीं क्रोध और नाराजगी का भाव इतना प्रबल हो जाता है कि गाली सूचक शब्द एवं लोकोक्ति भी प्रयुक्त हो गए हैं। जैसे 'तेरी खोपड़ी के अन्दर' कविता में- 'खोपड़ी के अन्दर गू भर जाना', 'खूसट', 'साले' जैसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

इन कवियों ने अलंकार का प्रयोग प्रसंगानुकूल और भावोदीप्ति में सहायक के रूप में किया है। मुक्तिबोध की कविताओं में अलंकार का प्रयोग नए रूप में हुआ है। जैसे 'ज़िंदगी का रास्ता' शीर्षक कविता में उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उदाहरण-

"सामंती घराने की जागीरदार

बूढ़ी सास ज्यों

स्वयं पिचाशिनी का प्रचंड रूप ले

विद्रोहिणी विधवा निज बहू की पीटी गयी

पीठ पर बैठकर

जबरदस्त हाथ में

गरम-गरम लोहे की शलाका ले

पीठ दागती है, त्यों

बौनी परिस्थिति ने

भयानक दु स्थिति ने

रामू के जन-जन का हिय भी

पल-पल से दागा है कि वैसे ही क्रुद्ध हो।"[60]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चयनित कवियों के श्रम-सम्बन्धी कविताओं की भाषा-शिल्प निजी विशेषताओं से युक्त है। प्रत्येक कवि के कविताओं की संवेदना और शिल्प की अपनी अलग पहचान है। इन कवियों की भाषा-शिल्प बदलते हुए युगीन बोध का परिणाम हैं। नए भाव-बोध की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का नवीन संस्कार समय की मांग थी, जिसे प्रगतिशील कवियों ने बखूबी निभाया है। प्रगतिवाद के भाषाई देयता को रेखांकित करते हुए डॉ. जगदीश गुप्त ने लिखा है कि- "प्रगतिवाद ने भाषा को गेय रोमांटिकता की परिधि से निकाल कर सड़कों और पगडंडियों पर चलने को विवश किया। इससे उसमें एक खुलापन आया, उसने आसपास की लोक-भाषाओं से अपना शब्द-भंडार समृद्ध किया।"[61] निश्चित तौर पर लोक भाषाओं में मौजूद शब्द, बिम्ब, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि के द्वारा इन कवियों ने हिन्दी-काव्य को समृद्ध किया। प्रगतिशील कवियों के सामने नई संवेदनाओं, विचारों और अनुभूतियों को बोलचाल की भाषा और लय में व्यक्त करना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। इस सन्दर्भ में रामविलास शर्मा ने लिखा है कि- "भावों

की गहनता, सूक्ष्मता या उच्चता के साथ भाषा सरल रहे, साथ ही, शिथिल भी न हो यह अत्यंत दुष्कर है।"[62] स्पष्ट है कि प्रगतिशील कवियों ने लोकजीवन से गहराई तक जुड़कर जन जीवन के विविध अनुभवों और संवेदनाओं को चित्रित किया है। कविता की भाषा को आंचलिक प्रभाव से समृद्ध किया। पाठक और कवि के बीच भाषा के कारण बनी दूरी को कम किया।

प्रगतिशील कविता में काव्य-भाषा के उद्देश्यों को लेकर अजय तिवारी का कथन उल्लेखनीय है, "...भाषा सम्बन्धी प्रगतिशील-विवेक का सम्बन्ध कविता और जन-जीवन के द्वंद्वात्मक संबंधों से है। भावात्मक स्तर पर प्रगतिशील कविता जनता से जुड़ी हुई है। यह कला को जनता से जोड़ने, अर्थात कवि और पाठक के बीच की खाई पाटने का उपक्रम करती है। विशिष्ट ऐतिहासिक और वैचारिक बोध के कारण वह जनता के अस्वाभाविक बिखराव को दूर करने, उसमें जुझारू सांस्कृतिक एकता लाने का प्रयत्न करती है। दूसरी तरफ सृजनात्मक धरातल पर उसका संघर्ष कला की स्वाभाविकता की रक्षा करते हुए भाव के अनुरूप उपयुक्ततम भाषा-संरचना की दिशा में है।"[63] स्पष्ट है कि प्रगतिशील कविता संवेदना एवं शिल्प दोनों ही स्तर पर चुनौतियों के बावजूद साहित्य को जन के और नजदीक लाने में सफल हुई।

अतः यह कहा जा सकता है कि चयनित कवियों में मुक्तिबोध के यहाँ श्रम-सौन्दर्य की कविताएँ सबसे कम हैं। सामान्यतः उनकी काव्य-संवेदना और भाषा का मिज़ाज कठिन है लेकिन श्रम करते हुए श्रमिक के चित्रण में उनकी भाषा बोलचाल की भाषा के काफी करीब आ जाती है। फिर भी वह नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन जैसी आमफहम और सादगीयुक्त नहीं है। उन्होंने कई भाषाओं के शब्दों, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषणों और प्रतीकों के प्रयोग से जटिल से साधारण स्तर तक के बिम्बों का सृजन किया है।

शमशेर बहादुर सिंह की भाषा बिम्बविधायनी है। उनकी श्रम-सम्बन्धी कविताओं के बिम्ब, प्रतीक और भाषा उन्हीं के प्रेम-सौन्दर्य वाली कविताओं से काफी अलग हैं। इन कविताओं में उनकी संवेदना, सहानुभूति एवं आत्मीयता झलकती है। इनका शिल्प थोड़ा भिन्न है यथा- वाक्यों की लम्बाई, एक वाक्य में कभी-कभी केवल एक या दो ही शब्द का प्रयोग, या दो शब्दों के बीच अधिक दूरी, वाक्यों की शुरुआत में कुछ खाली जगह, और प्रभाववादी पेंटिंग्स का प्रभाव इत्यादि। उनकी यह शैली अन्य कवियों से उन्हें अलग करती है। उनकी शैली की विशिष्टता के विषय में टिप्पणी करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है कि- "अपने स्वयं के शिल्प का विकास केवल वही कवि कर सकता है जिसके पास अपने निज का कोई ऐसा मौलिक विशेष हो; जो यह चाहता हो कि उसकी अभिव्यक्ति उसी के मनस्तत्वों के आकार की, उन्हीं मनस्तत्वों के रंग की, उन्हीं के स्पर्श और गंध की ही हो।"[64] जाहिर है शमशेर की कविताएँ कलात्मकता के स्तर पर अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

नागार्जुन, केदार एवं त्रिलोचन तीनों कवियों की संवेदना भाषा-शिल्प में अपनी अलग पहचान होने के बावजूद बहुत कुछ समानताएँ भी हैं। श्रम-सम्बन्धी जितनी कविताएँ केदारनाथ अग्रवाल ने सृजित किया उतनी न तो नागार्जुन, त्रिलोचन ने और न ही शमशेर और मुक्तिबोध ने। इनके श्रम-सम्बन्धी कविताओं के गठन में लोक जीवन के तत्त्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बातचीत की शैली, बोली की टेक, आंचलिक शब्द, व्यंग्य, बिम्ब, प्रतीक, लोकोक्ति और मुहावरे इत्यादि के प्रयोग से कविताओं का सृजन किया गया है। इनकी कविताएँ भाषाई दुरुहता, जटिल बिम्बात्मक और उलझाऊ चित्रमयता से दूर हैं। कुछ कविताओं में लोक धुन और संगीतात्मकता तथा गेयता का प्रभाव है। इन कवियों के भाषा-शिल्प की विशेषता है-

तुकांत शब्दों का प्रयोग और अटूट वाक्य संरचना के साथ व्यंग्यात्मकता, नाटकीयता और संवादधर्मिता। इस प्रकार इनका शिल्प श्रमजीवी जनता के जीवन-संघर्ष, हर्ष-उल्लास, राग-विराग इत्यादि से निर्मित हुआ है।

अतः यह कहा जा सकता है कि चयनित कवियों की श्रम-सम्बन्धी कविताएँ मजदूरों और किसानों के जीवन से गहराई से जुड़ीं हुई हैं। अपनी वैचारिकता में श्रमजीवी वर्ग के शोषण और असमानता का विरोध करती हैं। मजदूरों के जीवन के मूल्यों, मान्यताओं और संस्कारों के प्रति आस्था और विश्वास का सृजन करती हैं। उनके जीवन के विविध आयामों को रचकर मानवतावादी मूल्यों के नए आयाम गढ़ती हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची-

[1] मुक्तिबोध रचनावली भाग-1 : नेमिचंद्र जैन (संपा.), पृष्ठ 400-401, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपर बैक्स संस्करण 1985

[2] उत्तर आधुनिकतावादी साहित्य चिंतन (इकाई सं. एवं शीर्षक) : प्रो.एस.डी. कपूर (इकाई लेखक), इकाई टैग HND_P16 _M4, ई. पी. जी. पाठशाला

[3] जो शिलाएं तोड़ते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, अशोक त्रिपाठी (संपा.), पृष्ठ198, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[4] तारसप्तक, संकलन. एवं संपा. अज्ञेय, पृष्ठ 12, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, नौवा संस्करण 2005

[5] प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य : अजय तिवारी, पृष्ठ 245, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, आवृति संस्करण 2018

[6] मुक्तिबोध रचनावली भाग-2, संपा. नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ- 447, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 1986

[7] कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ.75, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरी आवृति संस्करण 2004

[8] प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन, संपा. केदारनाथ सिंह, सह-संपा. श्याम सुशील, पृष्ठ-14, राजकमल पेपरबैक्स, तीसरा संस्करण 2017

[9] भारतीय साहित्य के निर्माता त्रिलोचन : रेवती रमण, पृष्ठ 87, साहित्य अकादमी प्रकाशन नई दिल्ली, पुनर्मुद्रण संस्करण 2014

[10] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 201, साहित्य भण्डार इलाहाबाद 2009

[11] नागार्जुन रचना संचयन, संपा. राजेश जोशी, पृष्ठ 14, साहित्य अकादमी प्रकाशन, दूसरी आवृति संस्करण 2012

[12] काल तुझसे होड़ है मेरी : शमशेर बहादुर सिंह, चयन रंजना अरगड़े, पृष्ठ 20, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2002

[13] टूटी हुई, बिखरी हुई (चुनी हुई कविताएँ) : शमशेर बहादुर सिंह, संपा.अशोक बाजपेयी भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, दूसरी आवृत्ति संस्करण 2004

[14] राग-विराग : निराला, संपा. रामविलास शर्मा, पृष्ठ 119, लोकभारती प्रकाशन, संस्क. 2007

[15] जो शिलाएं तोड़ते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, संपा. अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 77, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2009

[16] इतने पास अपने : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 56, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011

[17] काल तुझसे होड़ है मेरी : शमशेर बहादुर सिंह, चयन रंजना अरगड़े (चयन), पृष्ठ 20, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्क. द्वितीय 2002

[18] जो शिलाएं तोड़ते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, संपा. अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 112, साहित्य भंडार, इलाहाबाद 2009

[19] नागार्जुन रचनावली भाग-1, संपा.-संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 301, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क-2003

[20] मुक्तिबोध रचनावली भाग-2, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 89-90, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 1986

[21] कहें केदार खरी-खरी : केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 39, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2009

[22] पुष्पदीप : केदारनाथ अग्रवाल, केदारनाथ अग्रवाल, संपा. अशोक त्रिपाठी, पृष्ठ 67, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2009

[23] बाँदा का योगी केदारनाथ अग्रवाल, संपा. विश्वरंजन, पृष्ठ.322, शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, 2011

[24] होड़ में पराजित काल : उद्भावना शमशेर बहादुर सिंह विशेषांक, संपा. विष्णु खरे, पृष्ठ 16, अंक 97 फरवरी 2012

[25] बात बोलेगी : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 29, संभावना प्रकाशन हापुड़ 1981

[26] कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 131, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरी आवृति संस्करण 2004

[27] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 31, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2009

[28] चाँद का मुंह टेढ़ा है : गजानन माधव मुक्तिबोध, भूमिका, पृष्ठ 25, भारतीय ज्ञानपीठ, चौबीसवां संस्करण 2018

[29] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 248, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स 1985

[30] तारसप्तक : सिद्धांत और कविता, कवियों के काव्य सिद्धांत और उनकी कविता : बोधिसत्व, पृष्ठ 78, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क. 2016

[31] धरती : त्रिलोचन शास्त्री, पृष्ठ 8, प्रदीप प्रेस मुरादाबाद, संस्क. 1945

[32] साक्षात् त्रिलोचन : कमलाकांत द्विवेदी, दिविक रमेश, पृष्ठ 159, सिद्धार्थ प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क.1991

[33] त्रिलोचन के बारे में, संपा. गोबिन्द प्रसाद, पृष्ठ 102-103, ईशा ज्ञानदीप प्रकाशन नई दिल्ली 2017

[34] प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन, संपा. केदारनाथ सिंह, सह-संपा. श्याम सुशील, पृष्ठ 43-44, राजकमल पेपरबैक्स, तीसरा संस्करण 2017

[35] कविता के नए प्रतिमान : नामवर सिंह, पृष्ठ 131, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, बारहवीं आवृति संस्करण 2014

[36] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 28, साहित्य भण्डार इलाहाबाद, संस्क 2009

[37] पेड़ का हाथ (केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का विवेचन) : विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 59, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क 2002

[38] नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, संपा. नामवर सिंह, भूमिका, पृष्ठ 9, राजकमल पेपरबैक्स प्रकाशन नई दिल्ली, चौदहवीं आवृति संस्करण 2014

[39] नागार्जुन रचनावली भाग-1, संपा.- संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 351, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2003

[40] फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 82, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2009

[41] त्रिलोचन के बारे में, संपा. गोबिन्द प्रसाद, पृष्ठ 172, ईशा ज्ञानदीप प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क. 2017

[42] प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन, संपा. केदारनाथ सिंह, सह-संपा. श्याम सुशील, पृष्ठ 47 राजकमल पेपरबैक्स, तीसरा संस्क. 2017

[43] नागार्जुन रचनावली भाग-1, संपा. संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 170, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2003

[44] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 266-267, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स 1985

[45] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 249, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स संस्क. 1985

[46] मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना : नंदकिशोर नवल, पृष्ठ 413, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क. 2010

[47] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 310, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स 1985

[48] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 239, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स 1985

[49] भारतीय साहित्य के निर्माता मुक्तिबोध : नंदकिशोर नवल, पृष्ठ 75, साहित्य अकादमी प्रकाशन, पुनर्मुद्रण संस्करण 2016

[50] कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 32, राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरी आवृति संस्करण 2004

[51] चैती : त्रिलोचन, पृष्ठ 9, वाणी प्रकाशन 1987

[52] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 198, साहित्य भण्डार इलाहाबाद, 2009

[53] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 274, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स 1985

[54] कहें केदार खरी-खरी : केदारनाथ अग्रवाल, अशोक त्रिपाठी (संपा.), पृष्ठ 113, साहित्य भंडार इलाहाबाद, संस्क. 2009

[55] पेड़ का हाथ (केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का विवेचन) : विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 60, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्क 2002

[56] गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 133, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009

[57] कविता के नए प्रतिमान : नामवर सिंह, पृष्ठ 127, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, बारहवीं आवृति संस्करण 2014

[58] ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन, पृष्ठ 76, संभावना प्रकाशन, हापुड़ 1980

[59] नागार्जुन रचनावली भाग-2, संपा., संयोजन शोभाकांत, पृष्ठ 329, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2003

[60] मुक्तिबोध रचनावली भाग-1, संपादक नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ 268, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स 1985

[61] मुक्तिबोध का साहित्य विवेक और उनकी कविता : लल्लन राय, पृष्ठ 54, मंथन पब्लिकेशंस रोहतक, 1982

[62] प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य : अजय तिवारी, पृष्ठ 239, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, आवृति संस्करण 2018

[63] वही, पृष्ठ 246

[64] होड़ में पराजित काल : उद्भावना शमशेर बहादुर सिंह विशेषांक, संपा. विष्णु खरे, पृष्ठ 3, अंक 97 फरवरी 2012

उपसंहार

उत्तर-छायावाद का दौर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक रूप से काफी उथल-पुथल और नए परिवर्तनों से भरा था। समाज में हो रहे बदलाव साहित्य में भी परिलक्षित हो रहे थे। आजादी की लड़ाई गाँधी जी के नेतृत्व में मुसलसल जारी थी। कांग्रेस के भीतर ही समाजवादी विचारधारा का उदय हो रहा था। सन् 1934 में 'कांग्रेस समाजवादी दल' के गठन से यह साफ हो गया था कि देश की आजादी की प्राप्ति हेतु जन-जन के भागीदारी के लिए नए सिद्धांतों, विचारों, तरीकों को अपनाना जरूरी है। ये बदलाव साहित्य में भी परिलक्षित हुए। छायावादी कवि अतिशय कल्पनाशीलता और वायवीयता को छोड़कर ठोस यथार्थ के धरातल पर रचना करना शुरू कर चुके थे। पन्त ने 'युगांत' लिखकर छायावाद के अंत की घोषणा की। सन् 1935 में 'सरोज स्मृति', 'कामायनी' लिखी गयी तो सन् 1936 में 'राम की शक्तिपूजा' और 'गोदान' का प्रकाशन हुआ। मनुष्य की मुक्ति की तरह कविता-मुक्ति की बात की गयी। इस तरह कविता छंदों के बंधन से मुक्त हुई। इसी वर्ष लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन हुआ। सन् 1936 ई. में ही कांग्रेस और 'अखिल भारतीय किसान सभा' का अधिवेशन भी हुआ। इस तरह उत्तर-छायावादी काल का वातावरण और परिस्थितियों से ही प्रगतिवाद या प्रगतिशील कविता का जन्म हुआ। भारतेंदु युग से ही साहित्य में इस नवीन प्रवृत्ति के आरंभिक लक्षण दिखाई देते हैं।

सन् 1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ ही प्रगतिशील साहित्य का आरंभ माना जाता है। प्रगतिवादी साहित्य को प्रगतिशील साहित्य के अंतर्गत मानने को लेकर विवाद रहा है। लेकिन अब उसे भी इसमें शामिल कर लिया गया है। कुछ विद्वान आलोचक आधुनिक काल के पूर्व रचित समस्त साहित्य को प्रगतिशील साहित्य के अंतर्गत नहीं मानते हैं। लेकिन मानव समाज और संस्कृति को

अपने ऐतिहासिक परिस्थितियों में विकास की प्रेरणा देने वाला और मानवतावादी मूल्यों, आदर्शों और मान्यताओं को स्थापित करने वाला समस्त प्राचीन साहित्य प्रगतिशील ही है ।

दरअसल, देश में बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में स्वतंत्रता की चेतना प्रमुख थी। तत्कालीन कांग्रेस में नए सिद्धांतों का खोज भी जारी था। इस दौर में नए विचारों के विकसित होने के लिए वैचारिक जमीन तैयार थी। ऐसे माहौल में मार्क्सवादी और समाजवादी वैचारिक चिंतन का विकास हुआ। जिससे नए मानवतावादी दृष्टिकोण से साहित्य सृजन शुरू हुआ। इस दृष्टिकोण के पीछे एक समतामूलक, शोषण विहीन और न्याय आधारित समाज के स्थापना की संकल्पना थी। इस तरह प्रगतिशील साहित्य में शोषित पीड़ित समाज केंद्र में आ गया। इस नवीन चेतना का प्रभाव उस समय समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य पर पड़ा।

प्रगतिशील कविता ने श्रम को एक सामाजिक मूल्य के रूप में स्थापित किया है। व्यक्ति जीवन भर श्रम करता है। इस प्रक्रिया में वह अपनी सौन्दर्यबोध और सृजनात्मक शक्ति से प्रकृति के समानांतर एक नया सौन्दर्य-लोक भी गढ़ता रहता है। जो अपनी सत्ता में वस्तुगत होता है। साथ ही इस प्रक्रिया में वह खुद भी सामान्य से श्रेष्ठ मनुष्य बनता रहता है। श्रम समाज के अन्य मूल्यों की तरह एक महत्त्वपूर्ण मूल्य है। जिसका सर्वोच्च मूल्य जिजीविषा से सम्बद्ध है। श्रम ही मानव समाज के विकास का आधार है। समाज के विकास के साथ श्रम विभाजन की प्रक्रिया शुरू हुई। इसी क्रम में श्रम पर कब्ज़ा करने वाले पूँजीपति वर्ग का विकास हुआ। विडम्बना है कि श्रमिक वर्ग का शोषण होता रहा। फलतः श्रमजीवी समाज की आर्थिक स्थिति कमजोर होती चली गयी। इससे उसकी सामाजिक और राजनैतिक स्थिति भी कमजोर हुई। फलस्वरूप वह शोषण का शिकार होने लगा।

आधुनिक काल में मार्क्सवादी, समाजवादी जीवन दर्शन ने मानव-समाज की संरचना को उसके ऐतिहासिक संदर्भों में समझने में मदद की। फलस्वरूप शोषण, दमन और अत्याचार पर आधारित शासन व्यवस्था के प्रति बौद्धिक वर्ग में विरोध का भाव उभरा। उसने मानवतावादी चिंतन को आगे बढ़ाया। एक शोषणरहित और समतामूलक समाज के स्थापना का स्वप्न देखा। इस स्वप्न को प्रगतिशील साहित्य ने रचनात्मक स्वरूप प्रदान किया। प्रगतिशील कविता में श्रम-शक्ति के प्रति आस्था एवं विश्वास को स्थापित किया गया। समाज में शोषण और अत्याचार को झेलने वाला किसान, मजदूर आदि के जीवन-संघर्ष, राग-द्वेष और हर्ष-उल्लास आदि का भावपूर्ण चित्रण किया गया है। अर्थात् अब तक हाशिये पर पड़े समाज को साहित्य के केंद्र में लाया गया।

प्रगतिशीलता एक मानवतावादी जीवन-दृष्टि है। यह दुनिया के प्रत्येक मानव-समाज में होती है। इसमें समाज को उत्तरोत्तर विकास के पथ पर ले जाने वाले मूल्यों, मान्यताओं और आदर्शों में विश्वास किया जाता है। इस दृष्टिकोण में 'मानव-समाज के सुख-दुःख की समझ होती है। जीवन की सहजता को रोकने वाले जर्जर हो चुके मूल्यों और मान्यताओं का विरोध होता है। रूढ़ और जड़ मनःस्थितियों का खंडन किया जाता है। राष्ट्र और विश्व के प्रति सजगतापूर्ण दृष्टिकोण के साथ जीवन मूल्यों की समझ होती है। अधिकारों की सुरक्षा हेतु संघर्षोंमुख बने रहने की प्रेरणा होती है। नयापन को अपनाने और पुरातन को छोड़ने में तार्किक समझ होती है। मनुष्य को और संवेदनशील और उसकी चेतना को उदात्त बनाती है। संकीर्णता युक्त सोच को अधिक उदार और मानवीय बनाती है। इस तरह समाज में मानवीयता, नैतिकता और परिवर्तन के प्रति चेतनशीलता बढ़ाना' इत्यादि प्रगतिशील दृष्टि के अंतर्गत शामिल है।

सौन्दर्य और प्रगतिशीलता एक दूसरे से परम्पराओं, सकारात्मक मूल्यों और मान्यताओं आदि से जुड़े होते हैं। ये कला तथा ज्ञान-विज्ञान की अन्य शाखाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते हैं। इस तरह श्रम का सौन्दर्य से अटूट सम्बन्ध है। गोर्की का यह मानना सही प्रतीत होता है कि है कि 'संसार के समस्त सुन्दर और श्रेष्ठ चीजों के पीछे श्रम है।' मसलन, श्रम ही सर्वोच्च मूल्य जिजीविषा को पोषित और पल्लवित करता है। इसलिए श्रम और सौन्दर्य के मूल्य को एक साथ जोड़कर देखने की जरूरत है। प्रगतिशील कविता में इस श्रम-सौन्दर्य की विराट उद्भावना की गयी है।

शोध-कार्य हेतु चयनित प्रगतिशील कवियों- शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन एवं मुक्तिबोध की कविताओं में श्रम-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें अंतर्वस्तु के स्तर पर किसान और मजदूर जीवन के विविध चित्र एवं चरित्र हैं। खेती-किसानी से जुड़ी हुई संवेदना के विभिन्न आयाम हैं। खेतों के जुताई-बुआई, निराई-गुड़ाई, कटाई और मड़ाई के समय होने वाला श्रम से जुड़ी श्रम गीत हैं। फसल काट कर घर में रखने के बाद किसान के उल्लसित और प्रसन्नचित मन का संगीत है। जैसे- ओसौनी का गीत, निरौनी का गीत, बुआई का गीत, कटुई का गीत आदि। महिलाओं के श्रम से सम्बन्धित कविताएँ भी कम नहीं हैं। ग्रामीण परिवेश में मेहनत करतीं, घर संभालती, छोटे से घर के घुटन में रहने की विवशता झेलतीं और सब्जी बेचने बाज़ार जाती इत्यादि उनके जीवन-संघर्षों और प्रसंगों का चित्रण है। इन कवियों ने मिथकीय चरित्रों को जीवन की वास्तविकताओं और यथार्थ परिस्थितियों में देखा है। किसानों को सम्पूर्ण मानव-समाज का आधार स्तम्भ मानकर चित्रण किया गया है। उनके द्वारा जीवन की आधारभूत जरूरतें पूरी न कर पाने की विवशता को रेखांकित किया है। लेकिन श्रम-सौन्दर्य उनके जीवन की कठिनाई या अभावभरी परिस्थितियों के चित्रण में जितना है उससे ज्यादा उनमें मौजूद संभावनाओं, सामर्थ्य

और क्षमताओं या उस अभाव में भी छिपी महानता, जीवन में आगे बढ़ते रहने का उत्साह, उमंग, उल्लास, अकुंठ प्रेम को पहचानने और उसे उजागर करने में है। इस दृष्टि से 'खेतिहर', 'कमकर', 'किसान से', 'किसान स्तवन', 'भगौता', 'चंदनवा चैती गता है', 'देबी के बैल', 'घर का अनुभव', 'चैतू', 'मछुआहे' 'गाँव की औरतें', 'सब्जी वाली बुढ़िया', 'तभी लोग जीते हैं' 'सीता मैया', 'भोगिला', 'भरोसा', 'अपने खेत में', 'झूमे बाली धान की', 'बार-बार हारा है', 'शाम होने को हुई', 'फसल', 'सिके हुए दो भुट्टे' इत्यादि शीर्षक कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

कारखानों और इतर क्षेत्रों में काम करने वाले श्रमिकों से जुड़ी हुई विविध संवेदनाओं को भी इन कविताओं में व्यक्त किया गया है। इसमें गावों, शहरों, नगरों, महानगरों में कारखानों, कार्यालयों और स्कूलों में काम करने वाले मजदूर तो हैं ही साथ ही रिक्शाचालक और बस ड्राइवर भी हैं । आदिवासी किसान, लुहार, मोची, बढ़ई, नौकर, दलित जन, महिलाओं के अलावा मानवेत्तर प्राणी खच्चर, बैल, गदहा इत्यादि के श्रम-चित्र हैं। इस तरह समाज के विविध क्षेत्रों में श्रम करने वाले श्रमिकों से जुड़ी हुई संवेदनाएँ हैं। मजदूर परिवार में पुत्र जन्मोत्सव से लेकर वृद्धावस्था तक के रहन-सहन और जीवन शैली के चित्र हैं। कारखानों में अमानवीय परिस्थिति में काम करने वाले श्रमिकों की दुर्दशा से जुड़ी संवेदना है। पूँजीवादी तंत्र में आदमी से मशीन बनते जाने की विवशता का उद्घाटन है। शहरों और नगरों के निर्माण में श्रमिकों के योगदान से जुड़ी हुई संवेदना है। इनमें अल्पकालिक नौकरी की समस्या, घटती मानवीय संवेदना आदि को व्यक्त किया गया है। इस सन्दर्भ में 'मजदूर का जन्म', 'कानपुर', 'जो शिलाएं तोड़ते हैं', 'हथौड़े का गीत', 'मजदूरिन', 'घंटा', 'दौआ

बेहाना रुई धुनकता' , 'मोची', 'तहदिल अब नहीं है' 'इक्के का घोड़ा', 'युग दर्पण', 'मजदूर', 'श्रम', 'कर्म पथ', 'ज़िंदगी का रास्ता', 'पीत ढलती हुई साँझ', 'उलट-पुलट शब्द', 'सूखे कठोर नंगे पहाड़', 'इसी बैलगाड़ी को', 'बैल', 'वाम वाम दिशा', 'य' शाम', 'सागर-तट', 'भारत की आरती', 'आरर डाल' इत्यादि कविताएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

इसके अलावा शमशेर और नागार्जुन ने कवियों ने जमींदारों, राजाओं और औपनिवेशिक शासन सत्ता के शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने वाले क्रन्तिकारी मजदूरों, आदिवासी किसानों और नौसैनकों के विद्रोहों के समर्थन में भी कविताओं का सृजन किया है। इन कविताओं में श्रमजीवियों पर होने वाले अत्याचार और शोषण के विरुद्ध चेतना का सृजनात्मक रूप चित्रित है। इसमें आह्वाहन परक ओजस्वी गीत भी है। किसानों-मजदूरों में क्रांति और आन्दोलनधर्मी चेतना को जगाने तथा शोषण आधारित व्यवस्था में बदलाव लाने वाले भावों को अभिव्यक्त किया गया है। इस दृष्टि से 'वाम वाम वाम दिशा', 'फिर वह एक हिलोर उठी', 'य' शाम है', 'स्वतन्त्रता दिवस पर– 1940', 'लाल भवानी', 'जन-वंदना' इत्यादि कविताएँ महत्वपूर्ण हैं।

चयनित प्रगतिशील कवियों में श्रम-सौन्दर्य से जुड़ी सबसे ज्यादा कविताएँ केदारनाथ अग्रवाल-नागार्जुन-त्रिलोचन त्रयी द्वारा रचित हैं। इनमें भी केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ ऐसी कविताएँ सर्वाधिक हैं। मुक्तिबोध ने पूँजीवादी शक्तियों के शोषण और अत्याचार को सहते कारखानों, कार्यालयों और स्कूलों, कॉलेजों में काम करने वाले श्रमिकों की संवेदना का मार्मिक चित्रण किया है। इन शक्तियों के नष्ट होने की उम्मीद और मजदूरों के उज्ज्वल भविष्य की आशाओं और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया है। इनके जीवन की समस्याओं के पीछे पूंजीवादी तंत्र के शोषण मूलक चरित्र

का उद्घाटन कलात्मक रूप में हुआ है। उनकी कविताओं का काव्य-नायक विवेकवान और चिन्तनशील श्रमिक चरित्र है। जिसे मजदूरों के शोषणमूलक तंत्र का बहुत बारीक़ समझ है। शमशेर के यहाँ श्रम-सम्बन्धी कविताएँ कम हैं। लेकिन जितनी भी हैं वे संवेदना के विस्तृत आयाम को धारण करती हैं। उनके यहाँ न तो निराला की 'तोड़ती पत्थर' जैसी कोई कविता है और न ही श्रमरत मजदूरनी जैसी जीवंत चरित्र। लेकिन श्रम-सौन्दर्य की चेतना मौजूद है। किसानों, मजदूरों की शोषण करने वाली शक्तियों के विरुद्ध आन्दोलनधर्मी चेतना का कलात्मक चित्रण है। इस सन्दर्भ में 'बैल' और 'य' शाम' जैसी कविताएँ उल्लेखनीय हैं। इस तरह उनकी कविताओं में किसानों और मजदूरों की संघर्ष चेतना को महसूस किया जा सकता है।

सभी कवियों के श्रम-सम्बन्धी कविताओं की भाषा निजी विशेषताओं से युक्त है। शमशेर और मुक्तिबोध की कविताओं की भाषा-प्रकृति केदार-नागार्जुन-त्रिलोचन से अलग है। शमशेर की भाषा पर प्रभाववादी कला का प्रभाव दिखता है। वे ज्यादातर विषयवस्तु की संवेदना को बिम्बों और चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। श्रम-सम्बन्धी कविताओं की भाषा का स्वरूप उनकी प्रेम और सौन्दर्य विषयक कविताओं की भाषा से अलग है। उसमें श्रमिक जीवन के संघर्षों, आशा-निराशाओं, बातचीत की लय के बीच जीवन के द्वंद्वों और अंतर्विरोधों का का चित्रण है। इस संदर्भ में 'बैल' कविता महत्त्वपूर्ण है। श्रमिक जीवन के भाव-व्यापार के अभिव्यक्ति हेतु उसी जीवन के शब्द, मुहावरे, बिम्ब और प्रतीक का प्रयोग करते हैं।

मुक्तिबोध की भाषा ज्यादातर श्रम-कविताओं में दुरूहता, जटिलता का दामन छोड़ सहजता, सरलता के साथ खड़ी दिखाई देती है। इन कविताओं की भाषा अपनी प्रकृति में उनकी अन्य प्रमुख कविताओं- 'अँधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस', 'भूल गलती' इत्यादि से अलग है। ज्यादातर जगहों पर न तो लम्बे-लम्बे वाक्य हैं, न कोई उलझाऊ बिम्ब।

यहाँ भाषाई उबड़-खाबड़पन कम है। हाँ, इतना जरूर है जहाँ गंभीर चिंतन, मनन, वैचारिक द्वंद्व को व्यक्त किया गया है वहां भाषा लम्बे-लम्बे वाक्य-विधान, जटिल या मिश्रित बिम्ब का सृजन करती है। लेकिन जहाँ किसी श्रमरत मजदूर, श्रमिक का वर्णन, चित्रण करना होता है वहां दुरुहता, जटिलता को त्याग कर कोमल शब्दों को धारण कर लेती है। अभिधात्मकता के रास्ते पर निकल सहज, सरल और सादगीपूर्ण हो जाती है। इस दृष्टि से 'पीत ढलती हुई साँझ', 'जिंदगी का रास्ता', 'उलट-पुलट शब्द', 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' इत्यादि कविताएँ देखी जा सकती हैं।

केदार-नागार्जुन-त्रिलोचन की भाषा में आमजन के बोलचाल की सादगी और सरलता है। ग्रामीण परिवेश में प्रचलित व्यंग्यधर्मिता, नाटकीयता और संवादधर्मिता है। ये अपनी रचनाओं के गठन में प्रभावशीलता ग्रामीण समाज के बातचीत में, काम-धाम में और किस्से-कहानियों में प्रयुक्त लोकोक्ति, मुहावरे और मिथकों के प्रयोग से बढ़ाते हैं। इनकी भाषा लोक में मौजूद देशज, तद्भव, तत्सम और अन्य आंचलिक शब्दों से साहित्य को समृद्ध किया है।

नागार्जुन की भाषा विविध आयामी है। उनमें कई भाषाओं के ज्ञान के बावजूद भाषाई आडंबर नहीं है। उनकी भाषा में मजदूरों के जीवन का खुरदुरापन महसूस किया जा सकता है। उनकी लोक-चेतना में पैठ गहरी है। ये अपनी कविता में प्रभावोत्पादकता बहुजन समाज की भाषा-शैली, कथात्मकता, सम्प्रेषणीयता, लोकोक्तियों और मुहावरों से लाते हैं। इस दृष्टि से 'गुलाबी चूड़ियाँ', 'खुरदुरे पैर', 'घिन तो नहीं आती है ?', 'तेरी खोपड़ी के अन्दर', 'प्रेत का बयान' इत्यादि शीर्षक कविताएँ उल्लेनीय हैं।

त्रिलोचन की भाषा श्रम-सम्बन्धी कविताओं में भी अपनी अलग पहचान रखती हैं। वे अटूट वाक्यों, बोलचाल के देशज शब्दों, बातचीत की लय और कथात्मक शैली के प्रयोग से कविता बुनते हैं। भावों की सटीक अभिव्यक्ति हेतु बोलचाल के सटीक शब्द, लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग उनकी कविताओं में देखा जा सकता है। उनकी भाषा बिल्कुल स्पष्ट और पारदर्शी है। कविता में कम से कम शब्दों के खर्च से भाव व्यंजित करना उनकी विशेषता है। भाषा के प्रति जितनी संवेदनशीलता और शब्दों के शक्ति का सही पहचान उनमें है कम कवियों में मिलता है। उनकी भाषा पाठक को रिझाती नहीं ठहर कर पढ़ने की मांग करती है। उनकी भाषा में किसानों और मजदूरों के जीवन की सादगी और सहजता दिखती है। इस संदर्भ में 'सब्जी वाली बुढ़िया', 'तहदिल अब नहीं है', 'आरर डाल' इत्यादि कविताएँ देखी जा सकती हैं।

केदारनाथ अग्रवाल के श्रम-सम्बन्धी कविताओं की भाषा में तुकांत शब्दों और गेयता के तत्त्व हैं। इससे उसमें लय और प्रवाह है। उनकी अधिकांश कविताओं में पाठक को बांधने की शक्ति है। उसमें यथार्थ का दबाव और विरोध के स्वर के साथ ही जीवन की रागात्मकता मौजूद है। किसान-मजदूर जीवन के महत्वपूर्ण औजार जैसे- हल, हँसिया, हथौड़ा, फावड़ा इत्यादि प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इनसे वे श्रमिक जीवन का चित्रण भी करते हैं तथा क्रांतिकारी भाव की कविताओं में प्रतीक की तरह इस्तेमाल भी करते हैं। केदारनाथ अग्रवाल की भाषा में श्रमजीवियों के जीवन-संघर्ष को हर्ष-उल्लास और राग-द्वेष को, सुख-दुःख आदि सभी अनुभव और अनुभूतियों को वहन करने वाले शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, व्यंग्यों इत्यादि को देखा जा सकता है। । इस दृष्टि से 'घन गरजे जन गरजे', 'पैतृक संपत्ति', 'चंद्रगहना से लौटती बेर', 'बसंती हवा', 'कानपुर', 'तेज धार का कर्मठ पानी', 'मैंने उसको', 'खेत का दृश्य', 'गेंहूं',

'कमकर', 'जो शिलाएं तोड़ते हैं', 'मजदूर का जन्म', 'हथौड़े का गीत', 'छोटे गीत' इत्यादि कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार चयनित सभी प्रगतिशील कवियों की कविताओं में मेहनतकश वर्ग किसानों, मजदूरों, आदिवासियों और महिलाओं का जीवन-संघर्ष पूरी वास्तविकता के साथ चित्रित है। उनके कर्म को एक मूल्य के रूप में अंगीकार किया गया है। जनता के मनोबल, आस्था, विश्वास और संकल्प को उद्घाटित किया गया है। उनके सामर्थ्य और क्षमता को उजागर किया गया है। अपने ऐतिहासिक और वैचारिक बोध से सामाजिक और सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। निश्चित तौर पर श्रम-संबधी कविताओं के संवेदना और शिल्प के इस विवेचन से कवियों के विस्तृत रचना लोक के नए आयाम उद्घाटित हुए हैं।

प्रगतिशील हिंदी कविता में अभिव्यक्त श्रम-सौन्दर्य (शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन एवं मुक्तिबोध के विशेष सन्दर्भ में) विषय पर शोध कार्य करने के दौरान मुझे उपर्युक्त वर्णित निष्कर्षों की प्राप्ति हुई है। यह तो विदित है कि किसी भी विषय पर शोध की संभावनाएं कभी ख़त्म नहीं होतीं। लेकिन प्रत्येक शोध बाद के शोध कार्य और शोधार्थियों के लिए सीढ़ी के एक पायदान और ऊपर पहुँचाने जैसा होता है। मेरा भी यह शोध कार्य उसी दिशा में एक कदम है। यह बिल्कुल साफ है कि मेरा यह शोध कार्य न तो अंतिम है और न ही उपलब्ध तथ्यों, जानकारियों के विवेचन-विश्लेषण से नये निष्कर्षों को निकालने की सम्भावना को समाप्त करने वाला। यह एक कोशिश की तरह है। एक गंभीर यात्रा की तरह है। इस उम्मीद के साथ कि आने वाले समय में सम्बन्धित शोध इस क्षेत्र में अपना कुछ योग दे सके। यही मेरे परिश्रम का पारितोषिक होगा। इसी आशा और उम्मीद के साथ मैंने इस यात्रा में कदम रखा था। यह कितना सफल हुआ है, इसका निर्णय आप सुधी पाठक जन करेंगे। सधन्यवाद।

ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ :

1. कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ, शमशेर बहादुर सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरी आवृति संस्करण 2004
2. चुका भी हूँ मैं नहीं, शमशेर बहादुर सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 1975
3. इतने पास अपने, शमशेर बहादुर सिंह, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011
4. उदिता- अभिव्यक्ति का संघर्ष, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1980
5. बात बोलेगी, शमशेर बहादुर सिंह, संभावना प्रकाशन हापुड़, 1981
6. काल तुझसे होड़ है मेरी, शमशेर बहादुर सिंह, डॉ. रंजना अरगड़े (चयन), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2002
7. कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ, शमशेर बहादुर सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 1995
8. प्रतिनिधि कविताएँ, शमशेर बहादुर सिंह, संपा. नामवर सिंह, राजकमल पेपरबैक्स प्रकाशन नई दिल्ली, आठवां संस्करण 2016
9. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भण्डार इलाहाबाद, 2009
10. फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
11. आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
12. पंख और पतवार, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
13. हे मेरी तुम, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
14. मार प्यार की थापें, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
15. आल्हा बम्बई का रक्तस्नान, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
16. कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
17. जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, 1984
18. अपूर्वा, केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
19. बोले बोल अबोल, केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, 1985

20. जो शिलाएं तोड़ते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
21. अनहारी हरियाली, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
22. आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
23. खुली आँखें खुले डैने, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
24. पुष्पदीप, केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
25. बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
26. कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, केदारनाथ अग्रवाल, संपा. अशोक त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद, 2009
27. प्रतिनिधि कविताएँ, केदारनाथ अग्रवाल, संपादक अशोक त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पांचवां संस्करण 2020
28. श्रम का सूरज (केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ), संपादक रामविलास शर्मा, परिमल प्रकाशन इलाहबाद 2007
29. नागार्जुन रचनावली भाग-1, संपादन-संयोजन शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2003
30. नागार्जुन रचनावली भाग-2, संपादन-संयोजन शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2003
31. नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, संपादन नामवर सिंह, राजकमल पेपरबैक्स प्रकाशन नई दिल्ली, चौदहवीं आवृत्ति संस्करण 2014
32. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, प्रदीप प्रेस मुरादाबाद, 1945
33. गुलाब और बुलबुल, त्रिलोचन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1985
34. दिगंत, त्रिलोचन, जगत शंखधर, पोस्ट बॉक्स - 22 वाराणसी, 1957
35. शब्द, त्रिलोचन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1980
36. ताप के ताए हुए दिन, त्रिलोचन, संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1980
37. उस जनपद का कवि हूँ, त्रिलोचन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति संस्करण, 1982

38. अरघान, त्रिलोचन, चयन एवं संपादन विष्णुचंद्र शर्मा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2015
39. अनकहनी भी कुछ कहनी है, त्रिलोचन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 1985
40. तुम्हें सौंपता हूँ, त्रिलोचन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 1985
41. फूल नाम है एक, त्रिलोचन, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1985
42. सबका अपना आकाश, त्रिलोचन, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1987
43. चैती, त्रिलोचन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1987
44. अमोला, त्रिलोचन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1990
45. मेरा घर, त्रिलोचन, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2002
46. जीने की कला, त्रिलोचन, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, 2004
47. त्रिलोचन संचयिता, संपादक ध्रुव शुक्ल, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2002
48. प्रतिनिधि कविताएँ, त्रिलोचन, संपादक केदारनाथ सिंह, सह-संपादक श्याम सुशील, राजकमल पेपरबैक्स, तीसरा संस्करण 2017
49. मुक्तिबोध रचनावली भाग-1, संपादक नेमिचंद्र जैन, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पेपर बैक्स पहला संस्क 1985
50. मुक्तिबोध रचनावली भाग-2, संपादक नेमिचंद्र जैन, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1986
51. प्रतिनिधि कविताएँ, गजानन माधव मुक्तिबोध, संपादक अशोक बाजपेयी, राजकमल पेपरबैक्स, सत्ताईसवां संस्करण 2019
52. अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), तारसप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ लोदी रोड नई दिल्ली, नौवा संस्करण 2005
53. अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ लोदी रोड नई दिल्ली, पहला पेपरबैक संस्क. 1999

सहायक ग्रन्थ :

1. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2015
2. अजय तिवारी, नागार्जुन की कविता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005
3. अजय तिवारी, भारतीय साहित्य के निर्माता, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य अकादमी, 2016
4. प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य, अजय तिवारी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृति संस्करण 2018
5. अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं संपादक), तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ लोदी रोड नई दिल्ली, दसवां संस्करण 2005
6. अरविन्द कुमार, सहज समान्तर कोश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
7. अरुण कमल, कविता और समय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
8. अरुण कमल, कविता और समय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
9. अरुण कमल, कविता और समय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृति संस्करण 2014
10. अवधेश प्रधान, काव्य और अर्थबोध, त्रिलोचन, साहित्य वाणी, इलाहाबाद, 1995
11. अशोक बाजपेयी (संपा.), कविता का जनपद, राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, 1992
12. अशोक चक्रधर, मुक्तिबोध की कविताई, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, दूसरी आवृति संस्करण 2012
13. एकान्त श्रीवास्तव, बढ़ई, कुम्हार और कवि, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
14. कमलकांत द्विवेदी दिविक रमेश, साक्षात् त्रिलोचन, सिद्धार्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990

15. कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव (संपादक), बृहत हिंदी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी, पुनर्मुद्रण संस्करण 2018
16. कुसुम कुमार, कविता और समय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
17. केदारनाथ अग्रवाल, समय-समय पर, साहित्य भंडार इलाहबाद प्रकाशन, 2010
18. केदारनाथ सिंह (संपादक), प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2014
19. कृष्णदत्त पालीवाल, नवजागरण देशी स्वच्छंदता और नयी काव्य धारा, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
20. गजानन माधव मुक्तिबोध, नई कविता का आत्मसंघर्ष, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1977
21. गजानन माधव मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 1976
22. गजानन माधव मुक्तिबोध, नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 1971
23. गोबिन्द प्रसाद, कविता के सम्मुख, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2015
24. गोबिन्द प्रसाद, आलाप और अंतरंग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
25. गोबिन्द प्रसाद (चयन एवं संपादन), त्रिलोचन के बारे में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
26. गोबिन्द प्रसाद, शमशेर का अभिनव राग, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, सहादरा दिल्ली, 2018
27. चंद्रकांत बांदिवडेकर, कविता की तलाश, विभूति प्रकाशन, दिल्ली, 1983
28. जयशंकर 'प्रसाद', काव्य और कला तथा अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, 2007
29. दिविक रमेश, नये कवियों के काव्य-शिल्प-सिद्धांत, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1991

30. देवराज, छायावाद उत्थान-पतन पुनर्मूल्यांकन, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, 1975
31. देवराज, नई कविता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
32. देवीलाल गोदारा, शमशेर का स्त्री-राग, ब्राउन बुक्स पब्लिकेशन, प्रा.लि. नई दिल्ली, 2017
33. धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान संपादक), धर्मवीर भारती, रामस्वरूप चतुर्वेदी, रघुवंश (संयोजक), हिंदी साहित्य कोश भाग-1(पारिभाषिक शब्दावली), ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी-1, द्वितीय संस्करण संवत् 2020
34. नंदकिशोर नवल, कविता : पहचान का संकट, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2006
35. नंदकिशोर नवल, मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2010
36. नंदकिशोर नवल, मुक्तिबोध की कविताएँ : बिम्ब और प्रतिबिम्ब, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2009
37. नंदकिशोर नवल, भारतीय साहित्य के निर्माता, मुक्तिबोध, साहित्य अकादमी प्रकाशन, पुनर्मुद्रण संस्करण 2016
38. नंदकिशोर नवल, कविता के आर-पार, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, 2003
39. नरेन्द्र मोहन (संपादक),बीसवीं शताब्दी : उत्कृष्ट साहित्य, अभिरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
40. नगेन्द्र (संपादक), हरदयाल (सह-संपादक), हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज नई दिल्ली, 61वां संस्करण, 2018
41. नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौंवा संस्करण, 2010
42. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तेरहवी आवृत्ति संस्करण, 2014
43. नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011

44. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तेरहवाँ संस्करण, 2014
45. नामवर सिंह (संपादक), गोरख पांडेय (अनुवादक), कला साहित्य चिंतन कार्ल मार्क्स, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, छठां संस्करण, 2018
46. निर्मला जैन, कविता का प्रतिसंसार (आलोचना), राधाकृष्ण प्रकाशन, 1994
47. निर्मला जैन, आधुनिक हिन्दी काव्य : रूप और संरचना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1984
48. प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय साहित्य के निर्माता, शमशेर बहादुर सिंह, साहित्य अकादमी, पुनर्मुद्रण संस्करण 2011
49. पुष्पेन्द्र कुमार, सौन्दर्यानुभूति एवं काव्य रचनाएँ, ईस्टर्न बुक लिंकर्स प्रकाशन, दिल्ली, 2012
50. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण, 2014
51. बलदेव वंशी, समकालीन कविता : विचार कविता, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1978
52. बिपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
53. बिपिन चंद्र, आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, अनामिका प्रकाशन दिल्ली, तीसरी आवृत्ति संस्करण, 2005
54. बिपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, पुनर्मुद्रण संस्करण 2015
55. बोधिसत्व, तारसप्तक : सिद्धांत और कविता, कवियों के काव्य सिद्धांत और उनकी कविता, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 2016
56. मलयज, कविता से साक्षात्कार, संभावना प्रकाशन, 1990
57. मधुछंदा, श्रम का सौन्दर्यशास्त्र और केदारनाथ अग्रवाल का काव्य, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, 1992

58. मोहन अवस्थी, आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प, हिन्दी परिषद प्रकाशन प्रयाग, 1962
59. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, प्रकाशन परिवार इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2010
60. मुजीब रिजवी, छायावाद के बाद, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड, 1978
61. योगेन्द्र प्रताप सिंह, रस छंद अलंकार, प्रकाशन परिवार इलाहाबाद, दूसरा संस्करण: 2010
62. रंजना अरगड़े, कवियों का कवि शमशेर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 1998
63. रमण सिन्हा, शमशेर का संसार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
64. राजेश जोशी, एक कवि की नोटबुक, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2014
65. रमेश चंद्रशाह, छायावाद की प्रासंगिकता, वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर, 2003
66. नागार्जुन रचना संचयन, राजेश जोशी(संपा.), साहित्य अकादमी प्रकाशन, संस्क. दूसरी आवृति 2012
67. रामकुमार कृषक(संपादक), जनकवि हूँ मैं, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली, 2012
68. रामचंद्र वर्मा शास्त्री, भारतीय काव्यशास्त्र (भारतीय काव्य सिद्धांत तथा काव्य रूपों का अध्ययन), अनीता प्रकाशन चरखेवालान दिल्ली, 1974
69. रामचंद्र तिवारी, हिन्दी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सातवाँ संस्करण 2009
70. रामचंद्र तिवारी (संपादक), श्रेष्ठ निबंध, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, छठा संस्करण 2005
71. रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, पुनरावृत्ति संस्करण 2017
72. राममूर्ति शुक्ल, सौन्दर्य का तात्पर्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, दूसरा संस्करण 1982

73. रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा छात्र संस्करण 2014
74. रामविलास शर्मा, भाषा युगबोध और कविता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1981
75. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी काव्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2012
76. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पच्चीसवाँ संस्करण 2011
77. रामस्वरूप चतुर्वेदी, आधुनिक कविता यात्रा, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, दूसरा संस्करण 2000
78. रेवतीरमण, भारतीय साहितय निर्माता, त्रिलोचन, साहित्य अकादमी दिल्ली, 2014
79. लल्लन राय, मुक्तिबोध का साहित्य विवेक और उनकी कविता, मंथन पब्लिकेशंस रोहतक, 1982
80. लक्ष्मीकांत वर्मा, नए प्रतिमान पुराने निकष, लोकभारती प्रकाशन दिल्ली, 1996
81. लीलाधर मंडलोई (संपादक), कविता के सौ बरस, शिल्पायन दिल्ली, 2015
82. लीलाधर मंडलोई, कविता का तिर्यक, प्रकाशन- मेधा बुक्स, 2003
83. विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन का रचना-संसार, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, आवृति संस्करण 2014
84. विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय काव्य-स्तबक, साहित्य अकादमी प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण 2012
85. विमल, सौन्दर्य चिंता : स्वरूप एवं समस्या, साहित्य सदन कानपुर प्रकाशन, 1991
86. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिन्दी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
87. विश्वनाथ त्रिपाठी, पेड़ का हाथ, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2002

88. विश्व रंजन (संपादक), बाँदा का योगी केदारनाथ अग्रवाल, शिल्पायन प्रकाशन, 2011
89. विष्णु चंद्र शर्मा, नागार्जुन: एक लंबी जिरह, वाणी प्रकाशन, दूसरा संस्करण 2009
90. विष्णुचन्द्र शर्मा(संपादक), दस विशिष्ट कवि, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, 2006
91. विष्णुचन्द्र शर्मा, मुक्तिबोध की आत्मकथा, संवाद प्रकाशन मेरठ, तीसरा संस्करण 2018
92. शिव कुमार मिश्र, साहित्य और सामाजिक संदर्भ संस्थान नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2012
93. सत्यप्रकाश मिश्र (संपादक), काव्यभाषा पर तीन निबंध रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन
94. सुधीर रंजन सिंह, कविता की समझ, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2018
95. सुरेन्द्रमोहन दास गुप्त, सौन्दर्य-तत्व, आनंद प्रकाश दीक्षित(अनुवादक), भारती भंडार लीडर प्रेस इलाहबाद,1960
96. हरदयाल, आधुनिक हिन्दी कविता, आर्य प्रकाशन मंडल गांधीनगर, नई दिल्ली, 2010
97. हरदयाल, आधुनिक हिंदी कविता का अभिव्यंजना शिल्प, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज नई दिल्ली, 1967
98. हरिश्चन्द्र वर्मा, भारतीय काव्यशास्त्र, हरियाणा ग्रंथ अकादमी पंचकूला, दूसरा संस्करण 2013
99. हरिनिवास पाण्डेय, प्रगतिशील काव्यधारा और त्रिलोचन, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2000
100. हरीश अरोड़ा, आधुनिक कवि : एक विमर्श, के.के. पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2007

पत्र-पत्रिकाएँ :

1. आलोचना (त्रैमासिक), संपादक अरुण कमल, प्रधान संपादक नामवर सिंह, सहस्राब्दी अंक तैंतालीस, नागार्जुन केन्द्रित, अक्टूबर-दिसम्बर 2011, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
2. आलोचना (त्रैमासिक), संपादक अरुण कमल, प्रधान संपादक नामवर सिंह, सहस्राब्दी अंक चालीस, शमशेर बहादुर सिंह केन्द्रित अंक, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
3. आलोचना, संपादक अपूर्वानंद, प्रधान संपादक नामवर सिंह, सहस्राब्दी अंक-55, मुक्तिबोध पर केन्द्रित, जुलाई-सितम्बर 2015, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
4. उद्भावना, होड़ में पराजित काल (शमशेर बहादुर सिंह विशेषांक), संपादक अजेय कुमार, अंक-97, फरवरी 2012
5. उद्भावना, संपादक अजेय कुमार, शमशेर बहादुर सिंह विशेषांक का शेषांश, अंक:100, जुलाई 2012
6. नया पथ, संपादक मुरलीमनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान, मुक्तिबोध जन्मशती अंक, अप्रैल-सितम्बर 2017(संयुक्तांत), जनवादी लेखक संघ की केन्द्रीय पत्रिका
7. नया पथ, संपादक मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चैहान, नागार्जुन जन्मशती विशेषांक, जनवरी-जून (संयुक्तांक): 2011, 42 अशोक रोड़, नई दिल्ली
8. नया पथ, संपादक मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चैहान, शमशेर, केदार व मजाज़ विशेषांक, जनवादी लेखक केन्द्रीय पत्रिका, जुलाई-सितंबर 2011, 42, अशोक रोड़, नई दिल्ली
9. नया पथ, संपादक मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान, प्रगतिशील आन्दोलन के 75 साल, जनवरी-जून :2012, 42 अशोक रोड नई दिल्ली
10. नया ज्ञानोदय, संपा.- लीलाधर मंडलोई, प्रकाशन, एकाग्र: साहित्य में मजदूर, अंक-मई 2017, भारतीय ज्ञानपीठ
11. पुस्तक वार्ता, विमल झा (संपा.), अंक 61, नवम्बर-दिसंबर, महात्मा गांधी अंतराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

12. बहुवचन, संपादक अशोक मिश्र, मुक्तिबोध कविता और अन्य, 44, जनवरी-मार्च 2015, महात्मा गांधी अंतराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
13. समकालीन चुनौती, संपादक सुरेन्द्र प्रसाद सुमन, जन्मशती वर्ष: फैज और शमशेर विशेषांक, समस्तीपुर, बिहार
14. साखी, संपादक सदानंद साही, मुक्तिबोध अंक, अंक-26, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, वाराणसी
15. सापेक्ष-38, महावीर अग्रवाल (संपा.), त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक, आदर्श नगर दुर्ग (म.प्र.)

इन्टरनेट :

1. www.kavitakosh.com
2. www.epustakalay.com
3. www Rekhta.com
4. www.digital library.com
5. www.hindawi.org
6. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/